विषय-सूची

दो शब्द — आरम्भ में

१ मराठो का उत्कर्ष — १

२. पेशवा बालाजी राव — १५

३. पेशवा माधवराव — ४२

४. नाना फडनीस — ५१

५. भारतीय समाज की दशा — ६४

६. ब्रिटिश आधिपत्य की स्थापना — ७६

७. उत्तर पश्चिम की ओर प्रसार — ९८

८. सडहरो की सफाई — ११२

९. स्वाधीनता का असफल सग्राम — [illegible]

१०. कपनी राज्य में भारत की आर्थिक और सामाजिक दशा — १२४

११. महारानी विक्टोरिया का राज्यकाल — १४८

१२. नवचेतनाका आरभ और भारतीय राष्ट्रीय महासभाकी स्थापना — १६२

१३. जाग्रत भारत — १७५

१४. गाधी का भारत — १८५

१५. स्वातत्र भारत — २१०

—o—

दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक उत्तर प्रदेश की सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा कक्षा ८ के लिए बनाये हुए पाठ्य क्रम के अनुसार सरल और रोचक भाषा में लिखी गयी है।

इंटरमीडियेट तथा हाई स्कूल परीक्षा बोर्ड के भूतपूर्व सचिव श्री परमानन्द, एम० ए० ने इस पुस्तक की पाडुलिपि पढ़कर यत्रतत्र अपने अमूल्य सुझाव देने की कृपा की थी जिसके लिये लेखक हार्दिक कृतज्ञता प्रकाश करता है।

—प्रकाशक

अध्याय—१
मराठों का उत्कर्ष
पेशवा बाजीराव (१७२०—४० ई०)
मुहम्मदशाह (१७१९—४८ ई०)

मुहम्मदशाह—औरंगजेब के उत्तराधिकारियों में कोई भी योग्य न निकला। उसकी मृत्यु के बाद १३ वर्ष के भीतर दिल्ली के तख्त पर पांच बादशाह आये और गये। उनमें से तीसरे बादशाह फर्रुखसियर के समय में सैयद भाई (वजीर अब्दुल्ला और मीर बख्शी हुसैनअली) ही सब कुछ हो गये। कुछ समय बाद सैयद भाइयों ने फर्रुखसियर को गद्दी से हटा कर उसकी हत्या करा दी (१७१९ ई)। उन्होंने तब अपने मन के दो मुगल शाहजादों को गद्दी पर बैठाया, पर कुछ ही महीनों के भीतर वे भी चल बसे। इसके बाद बहादुरशाह का एक पोता मुहम्मदशाह गद्दी पर बिठाया गया। मुहम्मदशाह भी सैयदों के चगुल से निकल जाना चाहता था। अत: उसने भी सैयद भाइयों के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा और हुसैन अली को मरवा कर उसके भाई अब्दुल्ला को कैद करा दिया (१७२० ई०)। दो वर्ष बाद अब्दुल्ला को भी जहर देकर मार डाला गया।

सैयद भाइयों से छुटकारा मिलने पर मुहम्मदशाह ने मुहम्मद अमीन को अपना वजीर बनाया। लेकिन मुहम्मद अमीन कुछ ही महीने बाद सन् १७२१ में मर गया। मुहम्मदशाह ने तब दक्षिण से आसफजाह निजाम-उल्मुल्क को दिल्ली बुलाया।

सैयद भाइयों को खत्म करके मुहम्मदशाह को शक्ति तो मिल गयी, लेकिन उसमें शक्ति का उपयोग करने की क्षमता न थी। जहाँगीर की नकल पर उसने फरियादियों के सुभीते के लिये अपने महल में एक घंटी भी लगवा दी थी, पर वास्तव में वह बड़ा ही विलासी, आलसी और निकम्मा था। वह राजकाज में

मन न लगा पाता था। महल के निकम्मे और अयोग्य व्यक्तियों से वह घिरा रहता और उन्हीं की सलाह पर काम भी करता था। परिणाम यह हुआ कि मुगल साम्राज्य दिनोंदिन गिरता चला गया और धीरे-धीरे अनेक प्रांत स्वतन्त्र होकर सल्तनत से निकल गये। बादशाह की कमजोरी से लाभ उठाकर दक्षिण में राजा शाहू और पेशवा बाजीराव ने भी मुगल प्रांतों को दबाकर मराठा राज्य को आगे बढ़ाना शुरू किया।

मुहम्मदशाह के समय की आरम्भिक घटनाएँ—बनियों की हड़ताल—मुहम्मदशाह के शासन के शुरू के दिनों में दिल्ली के हिन्दू बनियों ने 'जजिया' कर के विरुद्ध जबरदस्त हड़ताल की। हिन्दू जनता इस 'कर' को अपमानजनक समझती थी। इस अवसर पर राजा जयसिंह सवाई ने भी बादशाह से इस अपमानजनक कर को उठा देने के लिए जोर दिया। बादशाह ने राजा की बात मान ली और 'जजिया' हमेशा के लिए उठा दिया गया।

अजित सिंह राठौर का विद्रोह—अजित सिंह राठौर सैयद भाइयों के पक्ष में था। अत. उनके मारे जाने पर राठौर राजा ने विद्रोह कर अजमेर पर कब्जा कर लिया। मुहम्मदशाह ने वहां अपने सूबेदार को भेजना चाहा लेकिन अजित सिंह ने किसी को घुसने न दिया। चूड़ामन जाट ने अजित सिंह का पक्ष लिया और अपने लड़के को फौज देकर उसकी मदद को भेजा। राठौरों और जाटों ने मिल कर मुगलों को बहुत तंग किया। पर दक्षिण से निजाम के दिल्ली आने की खबर पाकर अजित सिंह ने अकस्मात् बादशाह से सुलह कर ली (१७२२)। पर एक साल बाद अजित ने फिर विद्रोह कर अजमेर पर अधिकार कर लिया। बादशाह ने तब राजा जयसिंह और मुहम्मद खाँ बंगश को अजित के विरुद्ध भेजा। अन्त में अजित सिंह ने अजमेर छोड़ दिया और बादशाह से फिर सुलह कर ली (१७२३)। सुलह के एक साल बाद अजित सिंह के छोटे लड़के बख्त सिंह ने उसे मार डाला।

चड़ामन जाट और बुन्देला छत्रसाल—जाट और बुन्देले अभी भी अपनी स्वतनता के लिए लड रहे थे। चूडामन को दवाने के लिए सन् १७२१ में आगरा के मुगल सूबेदार ने सेना भेजी लेकिन जाटो ने शाही सेना को बुरी तरह से पछाड दिया। किन्तु इसी समय घर के झगडो से ऊव कर चूडामन ने जहर खाकर आत्महत्या कर ली और उसका भतीजा बदन सिंह मुगलो से जा मिला। इन दो कारणो से जाटो की शक्ति टूट गई और सवाई जयसिंह ने बादशाह का पक्ष लेकर जाटो के गढ़ थन पर कब्जा कर लिया। चूडामन का लडका मुखाम सिंह तब भागकर जोधपुर के राजा अभयसिंह की शरण में चला गया और बदन सिंह जाटो का राजा बनाया गया।

इसी समय बुन्देलखड में राजा छत्रसाल भी मुगलो के विरुद्ध मोर्चा ले रहे थे। अत. सन् १७२१ में छत्रसाल को दवाने के लिए शाही सेना भेजी गयी, लेकिन बुन्देलो ने उसे मार भगाया। १७२४ में फिर इलाहाबाद के सूबेदार मुहम्मद खाँ बगश को छत्रसाल के विरुद्ध भेजा गया। उसके सामने छत्रसाल को दव जाना पडा। पर मराठों को रोकने के लिए बादशाह ने बगश को बुन्देलखड छोड़ कर ग्वालियर चले जाने को कहा। अत. बगश के लौटने पर छत्रसाल फिर पहले की तरह ही मुगल प्रदेशों पर आक्रमण करने लगा।

पेशवा बाजीराव की तैयारी— पेशवा बालाजी विश्वनाथ के मरने पर राजा छत्रपति शाहू ने १७२० में उसके लडके बाजीराव को पेशवा बनाया। बाजीराव तब केवल उन्नीस वर्ष का एक नौजवान लडका था। किन्तु बुद्धि और बल में वह असाधारण था। वह पढ़ा-लिखा तो न था, लेकिन व्यावहारिक राजनीति और युद्ध-कौशल में अद्वितीय था। घोडा दौडाने, तीर चलाने और तलवार के हाथ दिखाने में वह अत्यन्त कुशल और निपुण था। परिश्रम करने से वह कभी थकता न था। पेशवा बनने के समय से लगातार बीस वर्षों तक वह मराठा राज्य के भीतरी और बाहरी शत्रुओं से लडना रहा और विजयी हुआ।

उसके प्रयत्नों से मराठों की धाक दक्षिण से उत्तर, और पूरब से पश्चिम तक सारे भारत में फैल गई। मराठों के सामने मुगलों का सूर्य भी छिप गया और जो धाक पहले दिल्ली के दरबार की थी वह अब शाहू के दरबार की हो गई।

निःसन्देह, महाराष्ट्र को ऊँचा उठाने और मराठा-साम्राज्य को विकसित करने में बाजीराव ने बहुत काम किया। पेशवा होते ही उसने निश्चय कर लिया था कि वह मराठा फौज लेकर दक्षिण के अलावा मुगलों के उत्तरी प्रदेशों पर भी अधिकार करेगा। राजा के प्रतिनिधि श्रीपतराव ने तब पेशवा की इस नीति का विरोध करते हुए कहा था कि हमें ऐसे उतावलेपन से काम न लेकर पहले घर ही में अपनी शक्ति को मजबूत बना लेना चाहिये। पर बाजीराव ने श्रीपतराव की फूक-फूक कर कदम रखने की

बाजीराव

नीति को मराठा उत्कर्ष के लिए अहितकर बतलाया। नौजवान परन्तु बुद्धिमान और दूरदर्शी बाजीराव का कहना था कि यदि महान् शिवाजी औरंगजेब जैसे शक्तिशाली मुगल बादशाह से सफलता के साथ लड सके तो मुहम्मद शाह जैसे उसके निकम्मे और निर्बल उत्तराधिकारी से डरने का क्या काम है? उसका कहना था कि बडे-बडे काम डर से नहीं, साहस से ही हुआ करते हैं। अतः राजा शाहू को उत्साह दिलाते हुए युवक पेशवा ने कहा, "मुगल राज्य की जड पर चोटें करो, और शाखाएं स्वयम् गिर पडेंगी। यदि मेरी बात मानो तो मैं मराठा झंडे को अटक की दीवारों पर जाकर गाड दूंगा।" शाहू ने भी तब उत्तेजित होकर पेशवा का समर्थन करते हुए कह दिया—"उसे किन्नर-खंड पर जाकर गाडो!"

बाजीराव ने शाहू को मराठा विजय के लिए राजी करके सेना के संगठन पर ध्यान दिया। तब सन् १७२३–१७२४ में अपनी शक्ति को मजबूत पाकर बाजीराव तूफान की तरह मध्य-भारत पर टूट पड़ा। बाजीराव की विजय-यात्रा के मुख्य साथी और सेनापति उदाजी पँवार, मल्हारराव होल्कर और रानोजी शिन्दे या सिन्धिया थे। इन में से प्रत्येक ने क्रमश बाद में धार, इन्दौर और ग्वालियर में अपने स्वतन्त्र राज्य कायम किये।

निजाम का स्वतन्त्र होना, गुजरात, कर्णाटक, मालवा और बुन्देलखंड में युद्ध—हम पहले कह आये हैं कि मुहम्मदअमीन के मरने पर मुहम्मदशाह ने दक्षिण से निजाम को बुलाकर अपना वजीर नियुक्त किया था (१७२ ई०)। निजाम ने आकर बादशाह के दरबार को बहुत ही अव्यवस्थित पाया। शासन में अनेक बुराइयां देखकर बूढ़े और अनुभवी निजाम ने उसे सुधारना चाहा। उसने अकर्मण्य मुहम्मदशाह को समझाने-बुझाने की भी बहुत कोशिश की, लेकिन उसका उल्टा ही असर हुआ। बादशाह जल्दी ही निजाम की कड़ाई और सुधारों से ऊब गया और उसे मार डालने की सोचने लगा। निजाम तब वजीर पद छोड़कर दक्खिन को लौट गया। इस पर बादशाह ने निजाम से असंतुष्ट होकर हैदराबाद के हाकिम मुबारिजखां को
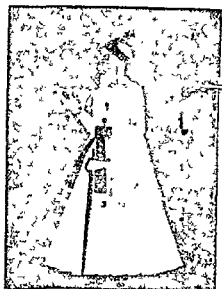
निजाम आसफशाह

दक्खिन का सूबेदार नियुक्त किया। परन्तु मुबारिज निजाम के सामने टिक न सका। जबरदस्त निजाम ने मुबारिज को युद्ध में हरा कर मार डाला (१७२४ ई०)। बादशाह ने तब विवश होकर निजाम को ही दक्खिन का सूबेदार स्वीकार किया। लेकिन निजाम इस समय से अपने को दक्खिन-हैदराबाद का स्वतन्त्र बादशाह समझने लगा, यद्यपि बाहरी तौर पर उसने न तो सिर पर ताज पहिना और न बादशाह से ही सम्बन्ध विच्छेद किया। दक्षिण की हैदराबाद रियासत का संस्थापक यही निजाम उल्-मुल्क आसफजाह प्रथम हैं। इसका वंश आसफ जाही वंश के नाम से प्रसिद्ध आ और उसके उत्तराधिकारी निजाम कहलाये। बादशाह ने निजाम की जगह अब मुहम्मद अमीन के लडके कमरुद्दीन को अपना वजीर बनाया।

गुजरात सन् १७२५ में बादशाह ने सर बुलन्दखाँ को गुजरात का सूबेदार बनाया। मराठो के आक्रमणो से तग आकर उसने मराठों को चौथ देना स्वीकार किया। सन् १७२७ में मराठा सरदार पिल्लाजो गायकवाड ने दाभोई और बडौदा पर अधिकार कर लिया।

इसी समय मराठा छत्रपति शाहू ने भी पेशवा बाजीराव को कर्णाटक पर चढाई करने को भेजा। १७२५ से १७२७ तक पेशवा के नेतृत्व में मराठो ने कर्णाटक में घुस कर चित्तल दुर्ग व श्रीरग-पट्टम् तक धावा किया और वहाँ के अनेक छोटे-बडे सरदारो से चौथ वसूल की।

निजाम कर्णाटक प्रदेश पर अपना अधिकार मानता था, इसलिए वह मराठो के न आक्रमणो से जल भुन उठा और बदला लेने के लिए मराठा राज्य पर छापा मारने लगा। उसने शाहू को छत्रपति मानने से इनकार किया और कोल्हापुर के मराठा राजा शम्भाजी को अपनी तरफ मिला लिया। शाहू ने तब बाजीराव को तुरन्त कर्णाटक से लौट आने को कहा। अत कर्णाटक विजय का कार्य अधूरा ही छोडकर बाजीराव निजाम से भिडने के लिए वापस चला आया।

कर्णाटक से लौटते ही बाजीराव ने तुरन्त निजाम के राज्य पर आक्रमण कर दिया। इस बीच निजाम शम्भाजी सहित पूना तक जा पहुँचा था, लेकिन पेशवा के आक्रमणों से घबड़ा कर उसे अब तुरन्त औरंगाबाद लौट आना पड़ा। औरंगाबाद के पास पालखेड में निजाम और बाजीराव में सामना हुआ। इस युद्ध में निजाम हार गया और उसने चौथ तथा सरदेश मुखी देना स्वीकार कर पेशवा से सुलह कर ली। निजाम ने शम्भाजी का साथ छोड़ कर शाहू को ही अब एकमात्र मराठा छत्रपति स्वीकार किया (१७२८)।

मालवा और बुन्देलखण्ड—पालखेड की विजय बाजीराव की पहली महत्त्वपूर्ण विजय थी। इस विजय से उत्साहित होकर बाजीराव ने अब मालवा तथा बुन्देलखंड में घुस कर उत्तर की ओर बढ़ने का निश्चय किया। मालवा में इस समय गिरधर बहादुर सूबेदार था। बाजीराव ने अपने भाई चिमाजी को मालवा पर आक्रमण करने के लिये भेजा। धार के पास अमझरा में गिरधर बहादुर और उसके भाई दया बहादुर ने चिमाजी और उदाजी पवार का सामना किया। चिमाजी विजयी हुआ और गिरधर बहादुर अपने भाई समेत मार डाला गया (१७२८ ई०)।

इसी समय बुन्देलखण्ड में छत्रसाल भी मुगलों से लड़ रहा था। लेकिन मुहम्मद खाँ बंगश द्वारा वह जैतपुर में बुरी तरह से घेर लिया गया। बंगश के लौह पंजे से आखिर बुड्ढा छत्रसाल किसी तरह जान बचा कर जैतपुर से निकल भागा। इस संकट-काल में छत्रसाल ने प्रार्थना करते हुए बाजीराव को लिखा कि बुन्देलों की लाज तुम्हारे ही हाथ में है, इसलिए जल्दी से आकर बंगश से हमें छुटकारा दिलाओ। बाजीराव तब गढ़ा मण्डला के रास्ते सेना लेकर तुरत बुन्देलखण्ड में घुस गया। उसने और छत्रसाल ने मिल कर अब उलटे बंगश को ही बुरी तरह से घेर लिया। बंगश से जब कुछ करते न बना तो उसने यह लिखित वचन दिया कि वह फिर बुन्देलखंड में घुसकर छत्रसाल को परेशान न करेगा। इस पर पेशवा ने बंगश को बुन्देलखंड से वापस लौट जाने की आज्ञा दे दी।

समझौता हो जाय। लेकिन मुगल बादशाह ने मालवा और गुजरात मराठों को देकर सुलह करने से अनिच्छा प्रकट की।

मुगल बादशाह की इस ऐंठ को तोड़ने के लिए बाजीराव ने दिल्ली पर आक्रमण करने का निश्चय किया। १७३७ के प्रारम्भ में बाजीराव ने होल्कर को आगे बढ़कर जमुना पार करने का आदेश दिया और स्वयं रानोजी सिंधिया के साथ बुन्देलखंड के मार्ग से पीछे-पीछे चला। होल्कर अपनी सेना सहित जमुना पार करके दोआब में घुस गया। लेकिन अवध के सूबेदार सआदत खां ने होल्कर को हरा कर उसके बहुत से सैनिकों को मार डाला। होल्कर तब भाग कर बाजीराव से सवाई मिला। सआदतखां ने समझा कि उसने मराठों की पूरी सेना और शक्ति को ही नष्ट कर दिया है। अपनी इस बहादुरी पर बहुत खुश होकर उसने बादशाह को भी यह खबर भेजी कि उसने मराठों को तहस-नहस कर उनकी जड़ खोद डाली है। इस खबर को पाकर बादशाह भी खुशी से फूल उठा। सआदत खां और उसके साथी मुगल सेनापति अब मथुरा में जम कर अपनी विजय पर खुशियां मनाने लगे।

जयसिंह

बाजीराव इस समय बुन्देलखंड में था। सआदतखां की गप्पें सुन कर बाजीराव मन ही मन हंस उठा। उनकी डींग का खोखलापन प्रकट करने के लिए उसने अब सीधे दिल्ली पर ही आक्रमण करने का निश्चय किया।

अतः मेवात होते हुए वह तुरन्त दिल्ली के पास आ पहुँचा । एक बार उसने सोचा कि दिल्ली को जलाकर मुगल ताज को ही धूल में मिला दूंगा; पर ऐसा करना ठीक न समझ कर उसने दिल्ली के आसपास के प्रदेश को उजाड़ करके ही संतोष कर लिया। इस प्रकार बादशाह को मराठों की शक्ति का परिचय देकर बाजीराव फिर अपने लश्कर के साथ तुरन्त दक्खिन को लौट गया।

बाजीराव के इस झपटे से घबरा कर बादशाह को निजाम लिया। आने लगा। अतः निजाम फिर दक्खिन से दिल्ली बुला लिया गया। बादशाह ने तब उसे तीस हजार सेना देकर मालवा और बुन्देलखंड से मराठों को निकाल बाहर करने को भेजा। चौकन्ना बाजीराव भी सेना लेकर उसे रोकने को आगे बढ़ा और भोपाल में उसने निजाम को बुरी तरह से घेर लिया। लाचार होकर अंत में निजाम ने बादशाह से मालवा और नर्मदा से जमुना तक का प्रदेश तथा ५० लाख रुपया हर्जाना दिलाना कबूल करके बाजीराव से अपनी जान छुड़ा कर सुलह कर ली (१७३८)।

नादिरशाह का आक्रमण–मुगल साम्राज्य जब इस हीनावस्था में था तभी ईरान से नादिरशाह ने भी भारत पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण ने मुगल-सत्ता की रीढ़ ही तोड़ दी और दिल्ली सल्तनत की जड़ें हिला दीं।

ईरान के सफावी वंश के अन्तिम बादशाह को हटा कर अफगानों ने वहाँ अपना कब्जा कर लिया था । लेकिन कुछ ही समय बाद नादिर कुली नाम के एक तुर्कमान सेनापति ने अफगानों को मार भगाया और ईरान को विदेशी शासन से स्वतंत्र कर दिया। उसके इस कार्य से उसका यश फैल उठा और १७३६ ई० में शाहंशाह नादिरशाह के नाम से वह स्वयं ईरान का बादशाह बन बैठा। दूसरे साल उसने अफगानों को हराकर उनसे कन्धार छीन लिया। बहुत से अफगानों ने तब भाग कर मुगल राज्य के काबुल आदि प्रदेशों में जाकर शरण ली। इस पर नादिरशाह ने

मुगल बादशाह मुहम्मदशाह को सूचित किया कि उसके अफगान शत्रुओं को अपने राज्य में न घुसने दो। लेकिन मुगल बादशाह ने नादिरशाह की बातों का जवाब तक न दिया। नादिर को तब भारत में घुसने का अच्छा बहाना मिल गया। नादिर के बढ़ाव से डर कर काबुल के मुगल सूबेदार ने दिल्ली से मदद की याचना की, लेकिन निकम्मे बादशाह और उसके बुद्धिहीन सलाहकारों ने सूबेदार की बातों पर ध्यान देने के बजाय नादिरशाह के हमले की खबर पर विश्वास तक नहीं किया।

सन् १७३८ की गर्मियों में नादिर भारत की ओर बढ़ा। आसानी से गजनी और काबुल पर अधिकार करके जाड़ों के प्रारम्भ में वह पेशावर और अटक होता हुआ सन् १७३९ के शुरू में लाहौर आ पहुँचा। अब तो दिल्ली में तहलका मच उठा और मुगल बादशाह अपने सेनापतियों खान दौरान, निजाम-उलमल्क और वजीर कमरुद्दीन के साथ नादिरशाह को रोकने के लिए कर्नाल पहुँचा। लेकिन नादिरशाह की सेना के सामने मुगल सेना किसी योग्य न थी। मुगल बादशाह और सेनानायक भी नादिर और सेनापतियों के मुकाबले में अयोग्य और अनिपुण थे। उनमें आपसी मेल भी न था। मुगल सेनापति सआदत खाँ जब पीछे से मदद लेकर आ रहा था, तो ईरानियों से उसकी झपट हो गयी। यह देखकर खानदौरान सआदत की मदद को आगे बढ़ा, लेकिन निजाम अपनी जगह से न हिला। सआदत खा हार कर बन्दी हुआ और खान दौरान घायल होने के कारण मर गया। मुगल बादशाह ने तब नादिरशाह को आत्म-समर्पण कर दिया। बादशाह की तरफ से निजाम ने ५० लाख रुपया देना स्वीकार कर नादिर को कर्नाल से वापस लौट जाने की प्रार्थना की। नादिर पहले तो राजी हो गया, लेकिन बाद में सआदत खाँ के बहकाने पर उसने इरादा बदल कर खुद दिल्ली जाने का निश्चय किया।

बादशाह, निजाम और वजीर आदि के साथ दिल्ली पहुँच कर नादिर ने शाहजहाँ के महल में अपना डेरा जमाया और अपनेको

भारत का बादशाह घोषित किया। दुर्भाग्य से नादिर के दिल्ली आने के दूसरे ही दिन कुछ गुडों ने दिल्ली वालों में यह खबर उड़ा दी कि नादिरशाह की महल में हत्या कर दी गई है। इस खबर से उत्साहित होकर कुछ गुण्डों और नागरिकों ने नादिर-शाह के कुछ सैनिकों को मार डाला। परिणामतः क्रोधित होकर दूसरे दिन नादिरशाह ने कत्ले-आम का हुक्म दे दिया। ईरानी फौज ने आज्ञा पाते ही दिल्ली के स्त्री-पुरुष और बच्चों को चुन-चुन कर मारना शुरू किया और घरों को जला कर राख कर दिया। इस नृशंसता से दिल्ली के लोगों में दारुण हाहाकार मच उठा। अन्त में मुहम्मद शाह के बहुत अनुनय-विनय करने पर नादिरशाह ने कत्ले-आम को रोक दिया।

लगभग दो महीने दिल्ली में रुकने के बाद नादिरशाह अपने देश को लौट गया। शाही खजाने और दिल्ली नगर को लूटकर नादिर करोड़ों रुपया और बहुत सा धन-माल, कोहनूर हीरा तथा शाहजहाँ का सिंहासन अपने साथ लेता गया। मुहम्मदशाह ने सिन्धु नदी के पश्चिम के प्रान्त भी नादिर को भेंट कर दिये।

पुर्तगालियों से युद्ध—बम्बई से गोवा तक के समुद्र-तट पर मराठा जल-सेनापति कान्होजी आंग्रे का अधिकार था। पुर्तगाली, अंग्रेज और डच सभी ने आंग्रे की शक्ति को तोड़ने का प्रयत्न किया था, लेकिन सफल न हो सके। पर आंग्रे के बाद उसके लड़कों में आपसी झगड़ा खड़ा हो उठा। इन झगड़ों में पुर्तगाली भी तब दखल देने लगे। इस पर आंग्रे के एक उत्तराधिकारी मानाजी ने बाजीराव से मदद माँगी। बाजीराव ने कोलाबा पहुँच कर पुर्तगालियों को हरा कर भगा दिया। लेकिन कुछ समय बाद पुर्तगाली और मराठों में फिर झगड़ा शुरू हो गया।

बाजीराव के भाई चिमाजी अप्पा ने सन् १७३७ में पुर्तगालियों से थाना छीन लिया और बेसीन पर भी धावा बोल दिया। पुर्तगालियों के साथ यह युद्ध दो वर्ष तक चलता ही रहा। अन्त में चिमाजी

के प्रबल आक्रमणों से दबकर पुर्तगालियों ने आत्मसमर्पण करके बेसीन मराठों को सौंप दिया (१७३९)।

बाजीराव का अन्त—नादिरशाह के दिल्ली पहुँचने पर यह खबर उड़ गयी थी कि ईरानी फौजें राजपूताना और दक्खिन में भी घुसेंगी। अत. बाजीराव ने नादिरशाह को भारत का शत्रु घोषित कर दक्खिन के तमाम हिन्दू और मुस्लिमों को एक होकर उसका मुकाबला करने को कहा। अपने आप भी वह मुगल बादशाह को मदद देने के इरादे से उत्तर के लिए रवाना हुआ, लेकिन तब तक नादिरशाह अपने देश को वापस हो चुका था।

बाजीराव के दिन भी अब पूरे होने पर आ गये थे। सन् १७४० में दुर्भाग्य से बाजीराव अकस्मात् बीमार पड़ा और दुनिया से सिधार गया। इसी साल बेसीन के विजेता पेशवा का यशस्वी भाई चिमाजी अप्पा का भी देहान्त हो गया। अकाल में ही इन दो महान् भाइयों की मृत्यु हो जाने से महाराष्ट्र को काफी धक्का पहुँचा।

अभ्यास के लिए प्रश्न—

(१) मुहम्मदशाह के शासन-काल की प्रारम्भिक घटनाओं पर प्रकाश डालिए।

(२) बाजीराव और निजाम के बीच जो संघर्ष हुए उन पर प्रकाश डालिए।

(३) त्र्यम्बकराव दाभाडे कौन था? उसका अन्त कैसे हुआ?

(४) बाजीराव ने दिल्ली पर कब और क्यों आक्रमण किया?

(५) नादिरशाह कौन था? उसके आक्रमण का हाल बतलाइए।

(६) मराठों और पुर्तगालियों में क्यों युद्ध हुआ और उसका क्या परिणाम हुआ।

—:००:—

अध्याय—२

पेशवा बालाजी राव
(१७४०–६१ ई०)
(१)

बालाजी राव—बाजीराव के मरने पर छत्रपति शाहू ने उसके जेठे लड़के बालाजी राव को पेशवा नियुक्त किया। पेशवा बनने के समय बालाजी की उम्र भी लगभग १९ वर्ष की थी। किन्तु वह योग्य पिता का योग्य पुत्र निकला। यद्यपि अपने पिता की तरह वह एक कुशल सेनानायक न था, पर राजनीति का वह पूरा पंडित था। उसने २१ वर्ष तक योग्यता के साथ शासन किया। सतारा के बजाय उसने पूना को शासन का केन्द्र बनाया और मराठा राज्य की सारी शक्ति अपने अधिकार में कर ली।

पेशवा बालाजी राव

आर्कट पर आक्रमण—इसी समय (सन् १७४० ई०) छत्रपति शाहू ने आर्कट के नवाब दोस्तअली के दामाद और त्रिचनापल्ली के शासक चन्दा साहब को दबाने के लिए नागपुर के मराठा सरदार रघुजी भोंसले को दक्षिण भेजी। आर्कट के नवाब दोस्त अली ने मराठों को रोकने का प्रयत्न किया लेकिन खुद लड़ाई में मारा गया। उसकी बेगमों और बच्चों ने भाग कर तब फ्रेंच गवरनर डूमा के पास पाँडिचेरी में शरण ली। दोस्तअली के बाद रघुजी ने त्रिचनापल्ली पहुँच कर चन्दा साहब

को भी हराया और कैद कर उसे सतारा भेज दिया। चन्दा साहब के परिवार ने भी तब भागकर पांडिचरी में शरण ली।

रघुजी और डूमा—रघुजी की विजयो से दक्खिन दहल उठा, लेकिन पाडिचेरी का फ्रासीसी गवरनर मराठो के आतक में न आया। फ्रासीसियो से पूर्व पुर्तगाली, डच और अग्रेज भारत के साथ व्यापार किया करते थे। इन सब यूरोपवालो को यहाँ के व्यापार से बहुत फायदा था। यह देख कर फ्रास के सम्राट लुई चौदहवें के मन्त्री कोल्बर्ट ने भी पूर्व के साथ व्यापार करने के लिए सन् १६६७ में एक फ्रासीसी कम्पनी स्थापित की। १६६८ में फ्रासीसी सूरत पहुँचे और उन्होने वहाँ अपनी पहली कोठी स्थापित की, एक साल बाद मसूलीपट्टम् में भी उन्होने कोठी बना ली। सन् १६७४ में फ्रासीसी गवरनर फ्रासीस मार्टिन ने बीजापुर के अधीन कर्णाटक के गवरनर से जिञ्जी प्रान्त में समुद्रतट के पास कुछ भूमि प्राप्त की। यहाँ पर मार्टिन ने एक नया नगर बसाया जो पाडिचेरी नाम से विख्यात हुआ। पूरब में फ्रासीसी हुगली तक पहुँचे और चन्द्रनगर (चन्दननगर) में भी उन्होने अपनी बस्ती कायम की। कालीकट, कारीकेल और माही में भी उन्होने अपनी कोठियाँ स्थापित कर ली। सन् १७०१ में भारत की सभी फ्रासीसी बस्तियाँ पाडिचेरी के फ्रासीसी गवरनर के अधीन कर दी गई। सन् १७४० में जब रघुजी भोसले ने कर्णाटक पर आक्रमण किया उस समय डूमा पाँडिचेरी का गवरनर था। डूमा ने रघुजी भोसले का जिस प्रबलता से विरोध किया उससे दक्खिन में उनकी शक्ति की धाक जम गयी।

अपनी विजयो से उत्साहित होकर रघुजी भोसले ने डूमा को वापिस कर देने तथा चन्दा साहब के परिवार को सौंप देने के लिए आदेश भेजा। डूमा ने दोनो बातें मानने से इन्कार कर दिया। उसने रघुजी को यह भी कहला भेजा कि फ्रासवासी सब अपने प्राण दे देंगे, लेकिन मराठो की धमकियो और माँगो के सामने सिर न झुकायेंगे। रघुजी डूमा के इस दभ को देखकर पहले तो बहुत

क्रोधित हुआ, लेकिन जब पांडिचेरी से उसके दूत ने आकर यह बतलाया कि डूमा ने युद्ध की पूरी तैयारी कर रखी है और उसके पास १२०० यूरोपियन और यूरोपियन ढग पर शिक्षित ५,००० भारतीय मुसलमानो की बन्दुकची-सेना है, तो उसने पांडिचेरी पर आक्रमण का विचार छोड दिया। डूमा के इस सफल प्रतिरोध से मुगल बादशाह मुहम्मदशाह ने खुश होकर 'नवाब' की उपाधि देकर डूमा का सम्मान किया। इस प्रकार डूमा के इस कार्य से फ्रासीसियो की दक्खिन में धाक जम गई।

भारतीय सिपाहियों की सेना--यूरोप वाले बन्दूकचियो की पैदल सेना का प्रयोग करने में बहुत कुशल थे। भारत आने पर उन्होने यहाँ के राजा और नवाबो की सेना को पुराने ढग पर पाया। सैनिक नियत्रण और सचालन का भी उन्होने यहाँ की सेनाओ में बहुत अभाव देखा। यह सब देख और समझ कर उन्हें विश्वास हो गया कि यदि यूरोप से नये ढग पर शिक्षित बन्दूकचियो की बीस-पच्चीस हजार भी पैदल सेना यहाँ ले आई जा सके तो वे एक छोर से दूसरे छोर तक देशी सेनाओ की भीड को कुचलते हुए सारे भारत पर अधिकार जमा सकते है। लेकिन यूरोप से तब इतने सैनिक लाना आसान काम न था। अत उन्होने यहीं के आदमियो से नयी यूरोपियन ढग की सेना बनाने का निश्चय किया। डूमा ने इस दिशा में पहला कदम उठाया। उसने देखा कि भारतीय सिपाही साहस और बहादुरी के साथ लडने-भिडने में दुनिया में किसी से कम नही होते। अपने अनुभव से उसने यह भी मालूम किया कि यूरोप के तरीके पर शिक्षित-दीक्षित करके भारतीय सिपाहियों को आसानी से अपने उपयोग और हित के लिए काम में भी लाया जा सकता है। अत यह सब सोच-समझकर ही उसने पांडिचेरी में ५००० भारतीय मुसलमानो को भर्ती करके उन्हें यूरोपियन ढग पर तैयार कर रखा था। उसका अनुकरण करते हुए अग्रेजो ने भी तब भारतीय सिपाहियो

की सेनाएँ खडी की और उन्ही के द्वारा भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया।

रघुजी भोंसले व पेशवा और बंगाल पर आक्रमण— कर्णाटक की विजय के बाद रघुजी भोसले ने बगाल पर आक्रमण करने का निश्चय किया। बगाल प्रान्त में तब बिहार और उड़ीसा भी शामिल थे और अलीवर्दी खाँ वहाँ का नवाब था।

रघुजी ने अपने सेनापति भास्कर पन्त को बगाल पर चढ़ाई करने भेजा। भास्कर पन्त ने बर्दवान के पास छावनी डाली और हुगली, मिदनापुर तथा राजमहल तक बढ गया। लेकिन अलीवर्दी खाँ ने उसे हराकर लौटा दिया (१७४३ ई॰)। तब रघुजी स्वयं सेना लेकर बगाल पहुँचा। इस अवसर पर मुगल बादशाह ने पेशवा को बगाल जाकर अलीवर्दी खाँ की मदद करने को कहा और इसके बदले में मालवा का सूबा उसे दे दिया। इस पर पेशवा ने बगाल पहुँच कर रघुजी को वहाँ से भगा दिया। छत्रपति शाहू ने अपने सरदारो के इस झगडे को अहितकर समझा और जल्दी ही पेशवा और रघुजी में मेल करा दिया। फलत. पेशवा ने अब रघुजी के विरुद्ध बगाल के नवाब को मदद देना छोड दिया।

पेशवा से मेल हो जाने के बाद रघुजी ने नागपुर के गोड राज्य को जीता और भास्करपन्त को फिर बगाल पर चढाई करने के लिए भेजा। नवाब ने इस बार धोखे से काम लिया और एक षडयन्त्र द्वारा भास्करपन्त को उसके २१ साथियो सहित कत्ल करवा डाला (१७४४ ई०)। पर रघुजी ने बगाल पर आक्रमण जारी ही रखे। अन्त में विवश होकर अलीवर्दी खाँ ने कटक का प्रान्त तथा सालाना चौथ देना स्वीकार कर रघुजी से सुलह कर ली (१७५१ ई०)। इस प्रकार मराठो ने उडीसा पर कब्जा पाया और गाल पर प्रभाव स्थापित किया।

राजपूताने के आंतरिक झगड़े—जयपुर के राजा सवाई जयसिंह और बाजीराव में बहुत मेल था। लेकिन इन दोनो की मृत्यु

के बाद राजपूत और मराठो में अनबन पैदा हो गई और दोना के बीच की पुरानी मैत्री टूट गई। सन् १७४३ में जयसिंह की मृत्यु होने पर उसके लड़के ईश्वरी सिंह और माधोसिंह में राज्य के बटवारे पर झगडा खडा हो उठा। मराठा सरकार ने उनके झगड में दखल दिया। पेशवा बालाजी राव जयपुर पहुँचा और उसने ईश्वरीसिंह को माधोसिंह के राज्य में हिस्सा देने और मराठा सरकार को हर्जाने का रुपया देने के लिए विवश किया (१७४८)। ईश्वरी सिंह रुपया न चुका सका और मराठो के आतंक से घबडा कर उसने दो वर्ष बाद जहर खाकर आत्महत्या कर ली। इस घटना से राजपूतो के दिल मराठो के प्रति रोष से भर गये। इसी कारण जब मराठ अब्दाली से भिडे, राजपूत दूर से ही तमाशा देखते रहे। ईश्वरीसिंह के मरने पर माधोसिंह जयपुर का राजा बना, लेकिन अब वह भी मराठा से घृणा करने लगा।

जोधपुर के राजा अभयसिंह के मरने पर वहाँ भी उत्तराधिकार के लिए झगडा हुआ (१७४९ ई०)। इस झगडे में भी मराठा ने दखल दिया। मराठा ने अभयसिंह के लडके रामसिंह का पक्ष लेकर अभयसिंह के भतीजे विजयसिंह से झगडा मोल लिया। विजयसिंह को मजबूर होकर चचेरे भाई को राज्य में हिस्सा तथा मराठा को हर्जाने का रुपया देना पडा (१७५६ ई०)।

शाहू का अन्त और महाराष्ट्र के झगड़े—१७४९ ई० में छत्रपति शाहू की मृत्यु हो गई। पेशवा ने शाहू के निर्देशानुसार बूढी रानी ताराबाई के पोते रामराजा को सतारा की गद्दी पर बिठाया। बूढी रानी ताराबाई पेशवा को दबा कर अपने पोते रामराजा के नाम पर स्वयं राज्य करना चाहती थी। पर रामराजा ने पेशवा के विरुद्ध चलने से इनकार कर दिया। ताराबाई ने तब क्रुद्ध होकर रामराजा को सतारा के दुर्ग में कैद कर दिया। रानी ताराबाई की इन कुचेष्टाओं से खिन्न होकर पेशवा ने सतारा छोड दिया और पूना को शासन का केन्द्र बनाया।

ताराबाई अपने षडयन्त्र में लगी ही रही। उसने गुजरात के दमाजी गायकवाड और यशवन्त राव दाभाडे को अपने पक्ष में कर के पेशवा के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया। पर पेशवा बालाजी ने सतारा के निकट दमाजी और दाभाडे को हरा कर कैद कर लिया (१७५१)। अन्त में दमाजी गायकवाड ने दाभाडे का साथ छोड़कर पेशवा की अधीनता स्वीकार कर आधा गुजरात तथा युद्ध का हर्जाना देना स्वीकार कर लिया। इस पर पेशवा ने उसे रिहा कर गुजरात लौट जाने दिया। इस समय से गुजरात पर दाभाडों का अब कोई अधिकार न रह गया और सेनापति यशवन्तराव दाभाडे को निर्वाह के लिए पेन्सन दे दी गई।

छत्रपति शाहू

गायकवाड और दाभाडे की हार से आतंकित होकर रानी ताराबाई ने भी पेशवा से सुलह कर ली (१७५१–५२), पर सतारा का जिला और छत्रपति रामराजा को अपने ही अधिकार में रखा।

रामराजा के इस प्रकार कैद में रहने से मराठा छत्रपति की शक्ति समाप्त हो गई और अब से पेशवा ही मराठा राज्य का सर्वे-सर्वा बन गया।

पठान, मुगल और मराठे—१७४७ ई० में नादिरशाह के मारे जाने पर उसका पठान सेनापति अहमदशाह अब्दाली कन्धार और काबुल का बादशाह बन गया। नादिरशाह की तरह उसने भी भारत को लूटने

और पंजाब को अधिकृत करने का निश्चय किया। रुहेला और बंगश अफगानों या पठानों के उत्तरी भारत में दो खास बस्तियाँ थी। रुहेले बरेली-क्षेत्र में और बंगश फर्रुखाबाद-क्षेत्र में रहते थे। मुगलों से वे घृणा करते और उनकी जगह पठान-राज्य स्थापित हुआ देखना चाहते थे। अतः वे चुपके-चुपके अफगानिस्तान के पठान बादशाह अब्दाली को दिल्ली का सारा हाल भेजते रहते और उसे भारत पर आक्रमण करने को उकसाते फिरते थे।

जनवरी १७४८ ई० में अब्दाली ने पंजाब पर पहला आक्रमण किया और लाहौर होता हुआ सरहिन्द के निकट तक आ पहुँचा। मुहम्मदशाह ने अपने बेटे शाहजादा अहमद और वजीर को अब्दाली को रोकने के लिए भेजा। अब्दाली हारा और अपने देश को लौट गया। वजीर कमरुद्दीन इस युद्ध में काम आया। इसी बीच मुहम्मदशाह भी परलोक सिधार गया और शाहजादा अहमद-शाह के नाम से बादशाह हुआ। अहमदशाह ने अवध और इलाहाबाद के सूबेदार सफदर जंग को अपना वजीर नियुक्त किया।

अहमदशाह के समय में मुगल सल्तनत का प्रभाव लगभग सारे भारत से हट कर केवल दोआब के कुछ हिस्सों और दिल्ली से अटक तक के उत्तर-पश्चिमी प्रदेश पर रह गया था। मुगल-राज्य की इस अवनति को रोकने की निकम्मे और विलासी अहमदशाह में कोई सामर्थ्य न थी। वजीर सफदर जंग ने इस बात का यत्न किया भी कि बादशाह अब्दाली के खतरे को समझे और सीमान्त को पठान-आक्रमणों से बचाने के लिए पंजाब जावे, किन्तु उसका सारा कहना व सुनना व्यर्थ गया। अतः भारत के दरवाजे खुले पाकर अहमदशाह अब्दाली सन् १७४९ में फिर पंजाब में घुस आया पंजाब के मुगल सूबेदार मीर मन्नू ने दिल्ली से मदद के लिए निष्फल चेष्टा की। अंत में लाचार होकर मीर मन्नू ने वार्षिक कर और नजर का रुपया देना स्वीकार करके अब्दाली से सुलह कर ली। अब्दाली तब वापस चला गया।

इधर फर्रुखाबाद के पठान अहमदखाँ बंगश ने भी वजीर सफदर जंग के विरुद्ध बगावत की और फर्रुखाबाद के पास उसे बुरी तरह हरा दिया (१७५०)। पठानों के आक्रमण से घबडा कर सफदरजंग ने तब मराठों और जाटों से मदद की याचना की।

वजीर ने मराठों की मदद के लिए उन्हें रोजाना २५ हजार और जाटों को १५ हजार रुपया देना स्वीकार किया। इस पर होल्कर और सिंधिया के नेतृत्व में मराठों और जाटों ने दोआब में घुस कर इटावा के पास बंगश पठानों और उनके मददगार रुहेलों को बुरी तरह पछाड कर भगा दिया। इस हार का बदला लेने के लिए पठानों के नेता नजीबखाँ ने अब्दाली को फिर पंजाब पर आक्रमण करने का न्योता दिया। निमंत्रण पाकर अब्दाली १७५२ में तुरंत पंजाब पर चढ़ आया। दिल्ली से मदद न मिलने पर वहाँ के सूबेदार मीरमन्नु ने लाहौर और मुल्तान के सूबे अब्दाली को सौंप कर सुलह कर ली। अब्दाली भी तब प्रसन्न होकर वापस लौट गया।

इस अवसर पर वजीर सफदरजंग लखनऊ में था। अतः बादशाह ने तब अब्दाली के आक्रमण से घबडा कर उसे मराठों सहित दिल्ली आने को लिखा। सफदरजंग ने बादशाह के कहने पर मराठों से अब्दाली तथा भारत के पठानों को दबाने के लिए मदद माँगी और बदले में पेशवा को ५० लाख रुपया, पंजाब, सिंध और दोआब की चौथ तथा आगरा और अजमेर की सूबेदारी देना स्वीकार किया। मराठों से संधि करने के बाद सफदरजंग सिंधिया और होल्कर के साथ तब दिल्ली पहुँचा। लेकिन उनके पहुँचने से पूर्व अब्दाली पंजाब से विदा हो चुका था। अतः खतरे को टला देख कर बादशाह मराठों के साथ हुई संधि को मानने से अब टालमटोल करने लगा। यह देखकर सिंधिया और होल्कर ने बादशाह से रुपया वसूल करने के लिए कुछ समय दिल्ली में ही रुकने का निश्चय किया, पर पेशवा से बुलाहट आने के कारण वे जल्दी ही दक्खिन लौट गये।

इधर बादशाह ने अप्रसन्न होकर सफदरजंग को हटा दिया और उसकी जगह इन्तिजाम-उद्दौला को अपना वजीर बनाया (१७५३ ई)। सफदरजंग तब लखनऊ चला गया। एक साल बाद उसकी मृत्यु भी हो गई और तब उसका लड़का शुजा-उद्दौला अवध व इलाहाबाद का सूबेदार बना (१७५४ ई०)।

(२)

दक्षिण में फ्रांसीसी और अंग्रेज शक्ति का उदय—पांडिचेरी के गवरनर डूमा ने जिस बहादुरी से रघुजी भोंसले का प्रतिरोध किया था, उससे फ्रांसीसियों की दक्षिण में बहुत धाक जम गई थी। १७४१ ई० में डूमा फ्रांस लौट गया और उसकी जगह डूप्ले पांडिचेरी का गवरनर बना। इससे पूर्व डूप्ले चन्द्रनगर का गवरनर रह चुका था, और वहाँ उसने बहुत योग्यता से काम किया था। अपने पूर्वाधिकारी डूमा की तरह उसने भी मुगल सम्राट की दी हुई नवाब की उपाधि को धारण किया। वह एक कुशल राजनीतिज्ञ और योग्य शासक था। उसने कम्पनी के शासन को सुधारा और दुश्मन के आक्रमणों से पांडिचेरी को सुरक्षित रखने के लिए उसकी किलेबन्दी मजबूत की। दूरदर्शी डूप्ले इस बात को समझता था कि भारतीय राजा व नवाबों की अपेक्षा अंग्रेज ही फ्रांसीसियों के लिए घातक हैं। अतः वह अंग्रेजों से पूरी तरह से सतर्क था और अवसर मिलने पर उनकी शक्ति को नष्ट करने

डूप्ले

के लिए उत्सुक था। इसी तरह अंग्रेज भी फ्रांसीसियों को अपने मार्ग का रोड़ा समझते थे और उनकी जड़ें खोद कर फेंक देना चाहते थे।

अंत सन् १७४४ में जब यूरोप में फ्रांस और इंगलैंड में लड़ाई छिड़ी तो एक दूसरे को उखाड़ने का यह उचित मौका समझकर भारत में भी फ्रांसीसी और अंग्रेज आपस में लड़ने लगे। डूप्ले ने आगे बढ़कर फौरन अंग्रेजों की मद्रास की बस्ती पर आक्रमण कर दिया। इस समय कर्णाटक में अनवरुद्दीन नवाब था। रघुजी के बाद कर्णाटक को निजाम ने फिर से जीत लिया था, और अनवरुद्दीन को उसी ने वहाँ का नवाब नियुक्त किया था। इस अनवरुद्दीन से अंग्रेजों ने फ्रांसीसियों के विरुद्ध मदद के लिए प्रार्थना की। लेकिन कूटनीतिज्ञ डूप्ले ने नवाब को यह कहकर बहका दिया कि जीत जाने पर मद्रास को वह उसे ही भेंट कर देगा। इस वायदे को पाकर नवाब ने अंग्रेजों से मुख मोड़ लिया और डूप्ले का पक्ष ग्रहण किया। डूप्ले ने तब आसानी से फोर्ट सेंट जार्ज और मद्रास पर अधिकार कर लिया (१७४६ ई०)।

फ्रांसीसियों के जीत होने पर कर्णाटक के नवाब ने डूप्ले से वायदानुसार मद्रास के लिए माँग की। चालाक डूप्ले ने नवाब की माँग को अनसुनी कर टाल दिया। इस पर नवाब ने क्रोधित होकर अपने लड़के को १० हजार फौज देकर मद्रास भेजा। पर अडायर नदी के तट पर सेंट टॉम किले के पास फ्रांसीसियों ने नवाब की फौज को बुरी तरह से पछाड़ दिया।

मद्रास लेने के बाद डूप्ले ने अंग्रेजों से फोर्ट सेंट डेविड के किले को लेने का भी प्रयत्न किया, लेकिन इसमें वह सफल न हो सका। इसी समय अंग्रेजों ने भी पांडिचेरी पर आक्रमण कर दिया, पर डूप्ले के प्रतिरोध से थक कर उन्हें भी घेरा उठा कर लौट जाना पड़ा। इस बीच यूरोप में फ्रांस और इंगलैंड में सन्धि हो गई और परिणामतः सन् १७४८ में डूप्ले ने मद्रास अंगरेजों को वापस कर दिया।

डूप्ले, चंदा साहब और निजाम—डूप्ले की ताकत अब काफी बढ़ गई थी और वह भारत में फ्रांसीसी राज्य स्थापित करने का सुख-स्वप्न देखने

लगा था। इस ध्येय की सिद्धि के लिए उसने दक्षिण के राज्यों के आन्तरिक मामलों में दखल देना शुरू किया। सन् १७४८ में कर्नाटक के नवाब चन्दा साहब ने सतारा में राजा शाहू की कैद से छुटकारा पाया। इसी समय बूढ़ा निजाम-उल्-मुल्क भी परलोक सिधारा और हैदराबाद में उत्तराधिकार के लिए झगड़ा होने लगा। निज़ाम आसफजाह के लड़के नासिरजंग ने अपने को दक्षिण का निजाम या सूबेदार घोषित किया। निजाम-उल्-मुल्क की लड़की के लड़के मुजफ्फरजंग ने उसका विरोध किया और डूप्ले से मदद माँगी। इसी समय चन्दा साहब ने भी डूप्ले से मदद की याचना की। डूप्ले ने दोनों को मदद देना स्वीकार किया। फ्रांसीसी सेना की मदद से मुजफ्फरजंग और चन्दा साहब ने कर्णाटक पर धावा बोल दिया। कर्णाटक का नवाब अनवरुद्दीन लड़ाई में मारा गया। नासिरजंग की मदद से तब अनवरुद्दीन के लड़के मुहम्मदअली ने फ्रांसीसियों को रोकने का प्रयत्न किया, लेकिन हार कर वह त्रिचनापल्ली भाग गया। इन विजयों से उत्साहित होकर डूप्ले ने समूचे दक्षिण को जीत लेने की योजना बनायी और सुप्रसिद्ध वीर फ्रेंच सेनापति बुसी को जिंजी के दुर्ग पर आक्रमण करने को भेजा जिसे उसने आसानी से ले लिया। नासिरजंग तब स्वयं सेना लेकर कर्णाटक पहुँचा। आर्कट के निकट फ्रांसीसियों और उसमें युद्ध हुआ। इसी बीच उसकी सेना के पठान विद्रोहियों ने उसे मार डाला और मुजफ्फरजंग को निजाम बना दिया। डूप्ले ने भी मुजफ्फरजंग को हैदराबाद का निजाम और चन्दा साहब को कर्णाटक का नवाब स्वीकार किया (१७५०–१७५१ ई०)। डूप्ले ने बुसी के नेतृत्व में फ्रांसीसी सेना के साथ मुजफ्फरजंग को पांडिचेरी से हैदराबाद के लिए रवाना किया। लेकिन रास्ते में वह भी पठानों के विद्रोह को दबाते समय मारा गया। बुसी ने तब उसकी जगह आसफजाह के एक दूसरे लड़के सलाबतजंग को सूबेदार व निजाम घोषित किया और उसे लेकर हैदराबाद की ओर बढ़ना जारी रखा। हैदराबाद में इन उलट-फेरों को देखकर पेशवा ने भी लाभ उठाना

चाहा। उसने आसफजाह के बड़े लड़के गाजिउद्दीन को निजाम बनने के लिए दिल्ली से दक्खिन चले आने का निमंत्रण दिया और अपने आप सेना लेकर सलाबतजंग को रोकने के लिए आगे बढ़ा। लेकिन सलाबतजंग ने १७ लाख रुपया देना ठहराकर पेशवा से सुलह कर ली (१७५१ ई०)। सलाबतजंग तब बुसी समेत सकुशल औरंगाबाद पहुँच गया। बुसी ने सलाबतजंग के शासन को व्यवस्थित किया और नई भर्ती करके भारतीयों की एक शक्तिशाली सेना खड़ी की। अपने व्यय के लिए उसने उत्तर-पूर्व के कुछ समृद्ध जिले प्राप्त किये जो उत्तरी सरकार कहलाये और उनका इन्तजाम फ्रांसीसी अधिकारियों द्वारा किया जाने लगा।

कर्णाटक में फ्रांसीसी और निजाम—अनवरुद्दीन का लड़का मुहम्मद अली भाग कर त्रिचनापल्ली चला आया था। कर्णाटक के नवाब और डूप्ले से भयभीत होकर उसने अंग्रेजो से सहायता के लिए प्रार्थना की। फ्रांसीसियों की शक्ति बढ़ती देखकर अंग्रेज इस समय खुद बेचैन हो रहे थे। उन्हें यह भय हो गया था कि यदि फ्रांसीसियों की ताकत इसी तरह बढ़ती चली गयी तो वे एक दिन उन्हें अवश्य ही भारत की भूमि से निकाल बाहर कर देंगे। अतः अपना हित सोच कर वे तुरन्त मुहम्मद अली की मदद को तैयार हो गये।

इस बीच चन्दा साहब और फ्रांसीसियों ने मिलकर त्रिचनापल्ली को घेर लिया (१७५१ ई०)। अंग्रेजो ने मुहम्मदअली की मदद को कुमुक भेजी, लेकिन आरम्भ में उन्हें सफलता न मिल सकी। स्थिति को गंभीर होता देखकर अंग्रेज चिंता करने लगे। इस अवसर पर एक होनहार अंग्रेज सैनिक युवक क्लाइव ने आगे बढ़ कर मद्रास के गवरनर को अपनी सरल और साहस भरी योजना बतलाई। उसने कहा कि चन्दा साहब की राजधानी आर्काट अरक्षित है, इसलिए अगर हम आर्काट पर आक्रमण कर दें तो चंदा साहब घबड़ा उठेगा और त्रिचनापल्ली का घेरा उठाकर वह आर्काट की रक्षा के लिए ...ड़ पड़ेगा। मदरास के गवर्नर ने क्लाइव की सलाह मानकर उसे

आर्कट पर आक्रमण करने की आज्ञा दे दी। डूमा और डूप्ले की नीति का अनुकरण करते हुए क्लाइव ने भी भारतीय सैनिकों की सेना
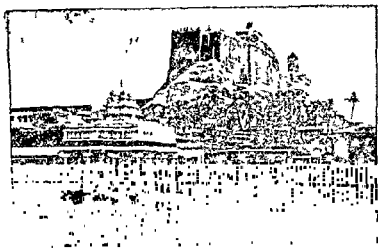
त्रिचनापल्ली किला

खड़ी की और तीन सौ भारतीय तथा दो सौ अंग्रेज सैनिकों को साथ लेकर वह आर्कट के लिए चल पड़ा। आर्कट पर अधिकार करने में क्लाइव को अधिक कठिनाई नहीं उठानी पड़ी (१७५१)। उधर आर्कट के पतन की खबर पाकर चन्दा साहब घबड़ा उठा। डूप्ले ने उसे धीरज बधाया और साहस के साथ त्रिचनापल्ली पर आक्रमण करते रहने की सलाह दी। परन्तु भयभीत चन्दा साहब ने डूप्ले की सलाह के विपरीत अपने लड़के राजू साहेब को एक बहुत बड़ी सेना देकर आर्कट भेज दिया। क्लाइव ने मराठों और मैसूरियों की मदद से राजू का मुकाबला किया और उसे हरा कर भगा दिया। इसके बाद क्लाइव और सेनापति लॉरेन्स अपने साथियों की मदद के लिये त्रिचनापल्ली चले आये। चन्दा साहब और फ्रान्सीसी अब अंग्रेजों के सामने टिक न सके और त्रिचनापल्ली छोड़कर श्रीरङ्गम् द्वीप में जा घुसे। लेकिन लारेन्स और क्लाइव ने उन्हें वहाँ भी जा घेरा। फ्रान्सीसियों और चन्दा

साहब से कुछ करते न बना और विवश होकर उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया। चन्दा साहब कैद हुआ और अंग्रेजों के इशारे पर तंजौर के राजा के सेनापति ने उसे मार डाला। अंग्रेजों ने अब मुहम्मदअली को कर्णाटक का नवाब घोषित कर दिया (१७५२)।

इस प्रकार आर्कट और त्रिचनापल्ली की विजय से क्लाइव और लारेन्स ने कर्णाटक में फ्रान्सीसियों के पैर उखाड़ दिये और डूप्ले के किये कराये पर पानी फेर दिया। बहुत परिश्रम करने से क्लाइव अब अस्वस्थ रहने लगा था, इसलिए सन् १७५२ में ही वह स्वास्थ्य लाभ के लिए इंग्लैंड वापस चला गया।

क्लाइव

डूप्ले की प्रतिभा और प्रभाव भी विशाल थे। लेकिन फ्रांसीसी कम्पनी के डाइरेक्टरों ने उसे अपने स्वार्थ में पड़कर कभी ठीक से मदद न पहुंचाई। ये डाइरेक्टर बड़े लालची थे और चाहते थे कि उल्टे डूप्ले ही उनको भारत से कमा-कमा कर बड़ी रकमें भेजा करे। यदि ये डाइरेक्टर डूप्ले की तरह राजनैतिक द्रष्टा और स्वदेश-प्रेमी होते तो वे आवश्यक संख्या में सैनिक और पर्याप्त व्यय तथा कुशल अधिकारी व सहयोगी भेजकर, उसे भारत में फ्रांसीसी शक्ति की स्थापना में मदद पहुंचा सकते थे। किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। फलतः डूप्ले अपनी असाधारण योग्यता और प्रतिभा के बावजूद सफलता न प्राप्त कर सका। १७५४ में डूप्ले वापस भी बुला लिया गया। डूप्ले के बाद नये फ्रांसीसी गवर्नर ने पांडिचेरी पहुंचने पर मद्रास

के अंग्रेजी गवर्नर से तुरन्त झुककर संधि कर ली और अंग्रेजों के मित्र मुहम्मदअली को कर्णाटक का नवाब मान लिया।

निजाम, बूसी और पेशवा—कर्णाटक के हाथ से निकल जाने पर भी दक्खिन में फ्रांसीसियों का प्रभुत्व कम न हुआ। डूप्ले का सबसे योग्य सेनापति बुसी औरंगाबाद में जमा हुआ था और दक्खिन का सूबेदार निजाम सलाबतजंग उसके हाथों में नाचा करता था।

निजाम के राज्य में फ्रांसीसियों का इस प्रकार प्रभाव बढ़ना देखकर पेशवा को भय होने लगा। अतः बुसी और सलाबतजंग को दबाने के लिए पेशवा ने १७५१ में निजाम के राज्य पर फिर चढ़ाई कर दी। बुसी भी तब सेना लेकर मराठा राज्य में घुस गया। उसका इरादा पूना जाकर गोलाबारी करने का था। लेकिन मराठों ने उसे राजधानी तक पहुँचने नहीं दिया।

पेशवा की मदद के लिए नागपुर से रघुजी भोंसले भी चला आया और उसने औरंगाबाद और गोदावरी के बीच के कई स्थानों पर कब्जा कर लिया। बुसी ने जब देखा कि मराठों से पार पाना कठिन है तो उसने सलाबतजंग और पेशवा में जल्दी ही सुलह करा दी (१७५२)। पर इस सुलह से निजाम और मराठों के बीच झगड़ा खतम नहीं हो सका। पेशवा ने अब फिर सलाबतजंग को उखाड़ने के लिए निजाम आसफजाह के बड़े बेटे गाजीउद्दीन का पक्ष लिया और उसे दिल्ली से औरंगाबाद बुलाया। लेकिन गाजीउद्दीन के औरंगाबाद पहुँचने पर उसकी एक सौतेली माँ ने उसे जहर देकर मार दिया (१७५२)। इस प्रकार सलाबतजंग के मार्ग का एक काँटा अपने आप ही दूर हो गया। पर पेशवा ने तब भी उसका पीछा न छोड़ा। अतः सलाबतजंग और बुसी ने मराठों के भय से हैदराबाद भाग जाने का प्रयत्न किया, लेकिन भालकी के पास मराठा सेना ने उन्हें बुरी तरह से घेर लिया। विवश होकर तब सलाबतजंग ने भालकी में पेशवा से संधि करके —बरार के पश्चिम के ताप्ती-गोदावरी के बीच का प्रदेश मराठों को दे दिया (१७५२)।

पेशवा की कर्णाटक पर चढ़ाई—निजाम से निपट कर पेशवा ने कर्णाटक की ओर ध्यान दिया। १७५६ में पेशवा ने सावनूर, बेदनूर, चित्रदुर्ग आदि के नवाबो और सरदारो को हराकर उनसे कर वसूल किया। दूसरे वर्ष पेशवा ने मैसूर की राजधानी श्रीरंगप म् पर चढाई की और वहाँ के राजा को कर देने के लिए बाध्य किया। पेशवा के लौटने के बाद भी उसके सरदारो ने कर्णाटक को जीतने का कार्य जारी रखा और कर्नूल और कडप्पा पर अधिकार कर लिया। आर्काट के नवाब मुहम्मदअली से भी मराठो ने चौथ वसूल की। इन विजयो से मराठा राज्य की सीमाएँ दक्षिण में कावेरी से पूर्वी समुद्र-तट तक पहुँच गयी और मराठा सैनिको ने गौरव के साथ पूर्वी समुद्र में पर्व-स्नान किया। किन्तु उत्तर में पानीपत की पराजय ने मराठो के इस गौरव को स्थायी न रहने दिया। कारण मराठा की इस पराजय स मौका पाकर मैसूर के सेनापति हैदरअली ने कर्णाटक में उनके किये कराये पर पानी फेर दिया।

उत्तर में मराठे—पेशवा जब दक्षिण में निजाम के खिलाफ बढ़ा तो उसी समय उसने अपने भाई रघुनायराव को भी उत्तरी भारतके लिए रवाना कर दिया था (१७५२ ई०)। अदूरदर्शी रघुनाथराव ने उत्तर में पहुँच कर राजपूत राजाओ से कसकर कर वसूल किया और भरतपूर के जाट राजा सूरजमल पर चढ़ाई कर दी (१७५४)। सूरजमल ने कुम्भेरगढ में डटकर मराठो का मुकाबला किया। मराठे कुम्भेरगढ को न ले सके और अन्त में सूरजमल से हर्जाना का रुपया तय करके समझौता कर लिया गया।

मराठो ने दिल्ली के झगडो में भी भाग लिया। रघुनायराव के सेनापति मल्हारराव होल्कर ने मीरबख्सी गाजीउद्दीन इमाद-उल्-मुल्क को बादशाह अहमदशाह को दबाने में मदद पहुँचाई। बादशाह ने तब विवश होकर इन्तिजाम-उद्दौला को हटाकर गाजीउद्दीन को वजीर बनाया। किन्तु गाजीउद्दीन ने निर्बल बादशाह को हटाकर उसकी जगह बहादुरशाह के एक पोते को आलमगीर द्वितीय के नाम

से तख्त पर बिठा दिया। कुछ दिन बाद क्रूर गाजीउद्दीन ने बेचारे अहमदशाह को मरवा भी दिया। इस तरह निकम्मे और क्रूर गाजीउद्दीन का साथ देकर मराठों की बदनामी ही हुई और लाभ कुछ न हुआ।

इस प्रकार जहाँ तहाँ मराठों की बदनामी करके दो वर्ष बाद रघुनाथ राव पूना वापस चला आया (१७५५ ई०)।

आंग्रे का विनाश—इधर पेशवा ने भी एक ऐसी भूल की जिससे मराठा शक्ति को काफी धक्का पहुँचा। कान्होजी आंग्रे का पश्चिमी समुद्र-तट पर बहुत प्रभाव था। उसका जहाजी बेडा बहुत शक्तिशाली था। दुर्भाग्य से कान्होजी आंग्रे का एक उत्तराधिकारी तुलाजी आंग्रे बडा अत्याचारी निकला। पेशवा बालाजीराव से यह शत्रुता रखता था। अत उसे दबाने के लिए पेशवा ने बबई के अंग्रेज गवर्नर से मदद माँगी। मराठा और अंग्रेजो ने मिलकर तब सन् १७५५ में तुलाजी को परास्त कर सुवर्णदुर्ग और विजयदुर्ग ले लिये और उसके जहाजी बेडे को जलाकर नष्ट कर दिया। पर तुलाजी की शक्ति का विनाश होने से पेशवा के बजाय अंग्रेजो को ही अधिक लाभ हुआ, क्योकि आंग्रे की वह जहाजी शक्ति जो पश्चिमी तट में उन्हें बढने से रोके हुए थी अब समाप्त हो गयी।

अब्दाली की दिल्ली, मथुरा आदि पर चढ़ाई—अब्दाली पजाब पर अपना अधिकार समझता था। लेकिन बादशाह के वजीर गाजीउद्दीन इमाद-उल्-मुल्क ने अब्दाली का यह अधिकार न माना और लाहौर में अपना सूबेदार नियुक्त कर दिया (१७५६ ई०)।

अब्दाली गाजीउद्दीन के इस व्यवहार से चिढ गया। अत उसने अपने लडके और सेनापति को भेजकर पजाब पर फिर अधिकार कर लिया। इसके बाद सन् १७५७ में अब्दाली भी स्वय ५० हजार सेना लेकर दिल्ली पर आ टूटा। बादशाह और वजीर अब्दाली को दिल्ली में घुसने से न रोक सके। अब्दाली ने दिल्ली में घुसकर नादिरशाह की तरह ही बुरी तरह से नगर

को लूटा और वहाँ के निवासियों को कत्ल किया। एक महीने तक अब्दाली दिल्ली को तहस-नहस करने में व्यस्त रहा। अफगानों की नृशंसता और अत्याचारों से महल से लेकर झोपडियों तक काप उठीं। मुगल शाहजादियां और साधारण नागरिकों की बहू-बेटियाँ सब को अफगानों ने सम भाव से अपमानित और अपहृत किया। उनके अत्याचारों से पीडित होकर अनेक स्त्रियों ने आत्महत्या करके अपनी लाज और प्रतिष्ठा बचाई।

अहमदशाह

यही हाल अब्दाली और उसके अफगानों ने मथुरा, वृन्दावन और गोकुल का भी किया। क्रूर अफगान सैनिकों ने जी भर कर इन स्थानों को लूटा और हजारों की संख्या में वहाँ के निवासियों को तलवार के घाट उतारा। लेकिन गोकुल के चार हजार नगे गोसाई साधुओं ने पठानों पर प्रत्याघात किया और हजारों अफगानों को यमपुरी पहुचा दिया। इस घटना से आतकित होकर अब्दाली ने गोकुल से आगे बढने का इरादा त्याग दिया और दिल्ली वापस लौट आया। रुहेला सरदार नजीब-उद्दौला से उसे बहुत मदद मिली थी, इसलिए नजीब को उसने अब आलमगीर का मीरबख्शी बनाया और गाजीउद्दीन को वजीर पद पर कायम रखा। पजाब को उसने अपने अधीन रखा और वहाँ का शासन अपने बेटे तैमूर को सौंपा। इसके बाद करोडो की लूट लेकर वह भारत से वापस चला गया।

रघुनाथराव उत्तर में—अब्दाली के आक्रमण की खबर जब दक्षिण पहुँची तो पेशवा बालाजी ने अफगानों को रोकने के लिए रघुनाथराव को सेना देकर फिर उत्तर-

भारत भेजा । लेकिन इस बीच अब्दाली लौट चुका था । मराठों ने दिल्ली पहुँच कर मीर-बख्शी बने गद्दार रुहेला सरदार नजीबखाँ को वहाँ से भगा दिया । पंजाब से भी रघुनाथराव ने अब्दाली के बेटे और पठान अधिकारियों को मार भगाया (१७५८ ई०) और तब अटक तक पहुँच कर वहाँ महाराष्ट्र का झंडा गाड़ दिया । इसके बाद रघुनाथराव दक्षिण लौट गया । अटक पर झंडा गाड़ने की बाजीराव और शाहू की महत्वाकांक्षा इस प्रकार पूरी हो गयी । पर यह विजय क्षणिक और अस्थायी साबित हुई । मराठा सरकार पूना से पंजाब व अटक तक की रक्षा का समुचित प्रबन्ध करने में असमर्थ थी । परिणामतः अब्दाली ने पुनः भारत में घुसकर अटक से मराठा झंडे को उखाड़ फेंका और पानीपत के मैदान में उनकी शक्ति को भी कुचल दिया। पानीपत के इस घातक संघर्ष का वर्णन स्थगित करके हम यहाँ पर पहले बंगाल के नवाब और अंग्रेजों के बीच के झगड़े का उल्लेख कर देना चाहते हैं ।

सिराजुद्दौला और अंग्रेज—बंगाल में कासिमबाजार और कलकत्ता आदि में अंग्रेजों का बहुत व्यापार चलता था। कलकत्ते में उन्होंने अपनी बस्ती पूरी तरह से बसा ली थी। इसी तरह चन्द्रनगर में फ्रांसीसियों की भी बस्ती थी। जब तक बंगाल का योग्य और प्रभावशाली नवाब अलीवर्दीखाँ जीवित रहा, अंग्रेज चुपचाप व्यापार करते रहे। लेकिन सन् १७५६ में अलीवर्दी खाँ परलोक सिधार गया। उधर कर्णाटक में फ्रांसीसियों को तथा पश्चिमी तट में तुलाजी आंग्रे को कुचल कर अंग्रेज प्रबल हो उठे। अतः अब व्यापार के साथ वे भारत पर अधिकार पाने की कामना भी करने लगे। अपनी अबतक की विजयों से उन्हें यह विश्वास भी हो गया कि देशी नवाबों व राजाओं तथा फ्रांसीसियों को वे छल और बल द्वारा परास्त करने में चूक नहीं सकते । फलतः बंगाल के नये नवाब अलीवर्दी खाँ के पोते और उत्तराधिकारी सिराजुद्दौला के साथ कलकत्ते के अंग्रेज बड़ी ढिठाई का व्यवहार करने लगे। नवाब का मानो वे

अपने ऊपर कोई अधिकार ही न समझने थे और उसके दुश्मनों की उकसाते थे। नवाब सिराजुद्दौला का एक अधिकारी भागकर अंग्रेजों की शरण में कलकत्ता चला गया था। इस पर नवाब ने कलकत्ते के अंग्रेज गवर्नर ड्रेक से उसे वापस भेजने को कहलाया, लेकिन उसने धृष्टतापूर्वक ऐसा करने से इन्कार कर दिया। इसी समय फ्रांसीसियों से युद्ध छिड़ने का बहाना करके अंग्रेजों ने नवाब से बिना पूछे कलकत्ते की किलेबन्दी भी शुरु कर दी। इससे उत्तेजित होकर नवाब ने उन्हें ऐसा न करने का हुक्म दिया। पर अंग्रेजों ने इस हुक्म की भी परवाह न की। नवाब को अब मालूम हो गया कि कर्णाटक की तरह अंग्रेज बंगाल को भी दबोच लेना चाहते हैं। अतः नवाब ने उनकी इस ढिठाई से चिढ़ कर सन् १७५६ में कासिमबाजार की अंग्रेजी कोठी छीन ली और फिर कलकत्ते के फोर्ट विलियम किले पर भी अधिकार कर लिया। गवर्नर ड्रेक और बहुत से अंग्रेज फल्ता (कलकत्ते के पास एक गाँव) भाग गये। नवाब सिराजुद्दौला ने बन्दी अंग्रेजों के साथ युद्धबन्दियों का सा व्यवहार किया, लेकिन हालवेल नाम के एक अंग्रेज अधिकारी ने यह अफवाह उड़ाई कि नवाब ने बहुत से अंग्रेज बन्दियों को एक कोठरी में ठूस कर मार डाला।

काल-कोठरी—हालवेल ने काल-कोठरी की घटना का बहुत ही हृदय विदारक वर्णन किया है। उसने लिखा है कि फोर्ट विलियम को लेने पर नवाब ने १४६ अंग्रेजों को बन्दी बना कर (जिनमें वह भी शामिल था) एक छोटी सी कोठरी में भर दिया। जून का महीना था अतः रात में गरमी तथा प्यास से तड़प-तड़प कर १४६ अंग्रेजों में से १२३ आदमी मर गये।

नहीं मिल सके हैं। हालवेल के सिवा उस समय के किसी दूसरे लेखक ने इस घटना का उल्लेख भी नहीं किया है। जान पड़ता है कि अंग्रेजों को उकसाने और नवाब को बदनाम करने तथा उसे अत्याचारी साबित करने के लिए ही हालवेल ने यह घटना गढ़ी थी।

कालकोठरी की घटना का समाचार जब मदरास पहुँचा तो हालवेल की इच्छानुरूप अंग्रेज नवाब से बदला लेने के लिए उत्तेजित हो उठे। इस बीच क्लाइव भी इंग्लैंड से लौट आया था और वही तब मदरास का गवर्नर था। क्लाइव और सेनापति वाटसन तुरन्त ही जलमार्ग से हुगली पहुँचे और उन्होंने आसानी से कलकत्ता पर फिर अधिकार कर लिया (१७५७ ई०)। सिराजुद्दौला ने अब अंग्रेजों की शक्ति से घबड़ा कर उनसे सन्धि कर ली और उनके व्यापार सम्बन्धी सब अधिकार स्वीकार करके उन्हें किले की मरम्मत करने की भी अनुमति दे दी।

लेकिन इस सन्धि का अंग्रेजों ने वहीं तक पालन किया जहाँ तक उन्हें उससे लाभ हो सकता था। अतः संधि हो जाने से अंग्रेजों के रुख में नवाब के प्रति कोई परिवर्तन न हुआ; लेकिन उसे नष्ट करने के पूर्व उन्होंने पहिले फ्रांसीसियों से निपट लेना निश्चित किया। फलतः अवसर पाकर क्लाइव ने पहले चन्द्रनगर पर धावा किया और फ्रांसीसियों को हराकर उसपर अधिकार कर लिया। चन्द्रनगर के पतन से कर्णाटक की तरह बंगाल से भी फ्रांसीसियों के पैर उखड़ गये।

फ्रांसीसियों से निश्चिन्त होकर अंग्रेज अब सिराजुद्दौला को नष्ट करने का षड्यन्त्र रचने लगे। अंग्रेजों ने विख्यात व्यापारी अमीनचन्द के जरिये रिश्वत देकर नवाब के बहुत से अधिकारियों को अपनी तरफ मिला लिया। नवाबी का लोभ देकर क्लाइव ने नवाब के सेनापति मीर जाफर को भी फोड़ लिया। षड्यंत्र पूरा करके क्लाइव ने नवाब से युद्ध छेड़ दिया और चलकर वे प्लासी जा पहुँचा। सिराजुद्दौला ने भी मुर्शिदाबाद से बढ़कर अंग्रेजों का सामना किया; पर उसके सेनापति मीरजाफर ने युद्ध में कोई भाग न लिया और
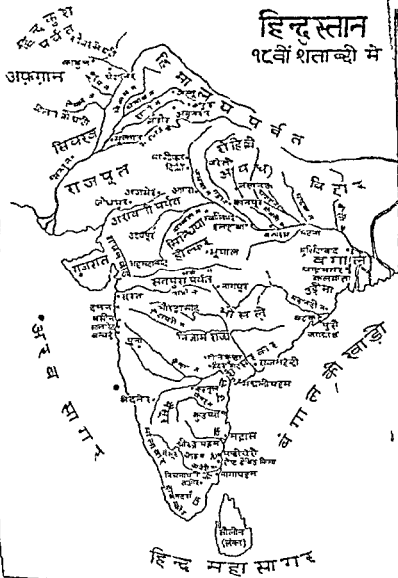
खड़ा खड़ा तमाशा देखता रहा। उसकी धोखेबाजी देखकर सिराज अंत में हताश हो उठा और भाग कर मुर्शिदाबाद चला आया। नवाब के भागते ही उसकी सारी सेना भी तितर-बितर हो गयी। इस प्रकार बिना किसी कठिनाई और कठिन संघर्ष के अंग्रेज बंगालके विजेता बन बैठे और क्लाइव के नाम की धूम मच गयी। अभागे सिराज के शत्रुओं ने उसका पीछा न छोड़ा और पकड़ कर उसे मार डाला।

अंग्रेजों ने अब मीरजाफर को बंगाल का नवाब बनाया और इसके बदले में उसने कम्पनी को चौबीस परगने का प्रान्त तथा बहुत-सा रुपया देना स्वीकार किया। क्लाइव आदि कम्पनी के प्रधान कर्मचारियों को भी मीरजाफर ने बड़ी-बड़ी रकमें भेंट कीं। अकेले क्लाइव को ३० लाख रुपया मिला।

प्लासी के युद्ध का सबसे बड़ा परिणाम यह हुआ कि नवाब अब अंग्रेजों के हाथ का खिलौना बन गया और इस तरह बंगाल का धनी प्रान्त उनके अधिकार में चला आया। इस प्रकार प्लासी की विजय ने भारत में अंग्रेजी राज्य की नींव डाल दी। फलतः इस समय से अंग्रेज अब साधारण व्यापारी न रह गये और भारत की प्रभुता के लिए मराठों के प्रतिद्वन्द्वी हो गये।

फ्रांसीसी शक्ति का अन्त—सन् १७५८ में लैली सेनापति और अध्यक्ष होकर फ्रांस से पांडिचेरी पहुँचा। वह पांडिचेरी के शासन में आन्तरिक सुधार करने और अंग्रेजों को समुद्र में ढकेलने का संकल्प करके आया था। किन्तु फ्रांसीसी अधिकारी अपने स्वार्थ में इतने डूबे हुए थे कि लाख प्रयत्न करने पर भी लैली शासन में समुचित सुधार न कर सका और न अंग्रेजों को भारत से निकालने में फ्रेन्च अधिकारियों का समुचित सहयोग पा सका।

पांडिचेरी की कौंसिल के मेम्बरों और फ्रांस की व्यापारिक कम्पनी ने भी लैली का ठीक से साथ न दिया। पांडिचेरी के अधिकारी अपने लाभ और आराम को छोड़ कर अब लड़ाई-झगड़ों में पड़ने से घबराने लगे थे। इस स्थिति में भी लैली ने अंग्रेजों से

हिन्दुस्तान
१८वीं शताब्दी में
अफ़ग़ान
सिक्ख
राजपूत
अजमेर
जोधपुर
आगरा
अरावली पर्वत
रोहिले
अवध
बिहार
सिन्धिया
होल्कर
भूपाल
गुजरात
अहमदाबाद
सतपुरा पर्वत
नागपुर
बंगाल
मुर्शिदाबाद
कलकत्ता
उड़ीसा
सूरत
दमन
बम्बई
औरङ्गाबाद
भोंसले
निज़ाम राज्य
पूना
पुरी
राजमहेन्द्री
मद्रास
पांडीचेरी
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
सीलोन
(लंका)
हिन्द महा सागर

और मराठों में फिर युद्ध छिड़ गया। पेशवा ने सदाशिव को निजाम के विरुद्ध भेजा। बीदर के पास उदगिर में निजाम की सेना बुरी तरह से हार गयी। निजाम को तब विवश होकर अहमदा नगर, दौलताबाद, बीजापुर और बुरहानपुर के किले तथा ६२ लाख की आमद का प्रदेश पेशवा को दे देना पड़ा (१७६० ई०)। पर इस विजय के एक वर्ष बाद ही अब्दाली के हाथों मराठों को पानीपत के मैदान में भारी पराजय उठानी पड़ी जिससे उनकी बढ़ती हुई शक्ति और प्रभाव को बहुत धक्का पहुंचा।

मराठा-अफगान संघर्ष, पानीपत का घातक युद्धः—सन् १७६० तक मराठे अपने उत्कर्ष के शिखर पर पहुँच गये थे। उत्तर में रघुनाथ राव ने अटक तक विजय-पताका फहराकर अब्दाली के प्रतिनिधियों को लाहौर से भगा दिया था और उदगिर में निजाम को पछाड़ कर दक्षिण में भी मराठा सर्वशक्तिमान बन गये थे। मालूम पड़ता था कि अब सारे भारत में ही मराठा राज्य स्थापित हो जायगा। पर पानीपत के मैदान में यह आशा सदा के लिए विलीन हो गयी।

सेंट डेविड का दुर्ग छीन कर मदरास पर चढाई कर दी। लैली ने हैदराबाद से बुसी को भी अपनी मदद के लिए बुला लिया।

लेकिन पांडिचेरी क अधिकारियो ने इस अवसर पर भी लैली का साथ न दिया। फ्रांसीसियो के चरित्र का इस समय नितान्त पतन हो चला था। वे मदिरा और सोने क गुलाम बन गये थ और देश भक्ति तथा प्रतिष्ठा के भाव भी खो बैठे थे। परिणामत लैली नकम्मे फ्रेंच साथी और सहयोगियो के कारण मदरास को न ले सका और उसे घेरा उठाकर पांडिचेरी लौट जाना पडा (१७५८–५९)। इस बीच बगाल से अग्रेज सेनापति कर्नल फोर्ड ने आकर विजगापट्टम् और मछलीपट्टम् के किले (उत्तरी सरकार) फ्रासीसियो से छीन लिये।

पांडिचेरी के अधिकारियो का सहयोग न मिलने पर भी लैली ने जैसे-तैसे अग्रेजो से युद्ध जारी रखा। लेकिन सन् १७६० में वाडवाश के पास अग्रेज सेनापति आयरकूट ने लैली को बुरी तरह से पछाड दिया। सेनापति बुसी अग्रेजों द्वारा कैद हुआ और अन्त में हार मान कर लैली ने भी अग्रेजो को आत्म-समर्पण कर दिया (१७६० ई०)। लैली को कैद करके अग्रेजो ने उसे इग्लैंड भेज दिया जहाँ से वह फिर पेरिस चला गया। कहते है, लैली के कैद होने पर पांडिचेरी के बहुत से फ्रासीसी बडे खुश हुए, मानो उनके सेनापति का पराभव उनका पराभव न था। जिस देश के व्यक्ति इस तरह से ईर्ष्यालु और प्रतिस्पर्धी थ, उसे देश के निवासियो की विजेता का मुकुट मिल ही कैसे सकता था?

वाडवाश की पराजय से फ्रासीसियो की शक्ति बिल्कुल टूट गयी। परिणामत अग्रेजो ने उनकी लगभग सभी बस्तिया छीन-ली, पर १७६३ में सुल्ह हो जाने पर पांडिचेरी, चन्द्रनगर और माही फ्रासीसियो को वापस लौटा दिये।

उदगिर की सन्धि—सन् १७५८ में बुसी हैदराबाद स पांडिचेरी बुला लिया गया था। इस अवसर का लाभ उठाकर पेशवा बालाजीराव न मराठा सेना भेजकर अहमदनगर पर कब्जा कर लिया। इसपर निजाम

और मराठों में फिर युद्ध छिड गया। पेशवा ने सदाशिव को निजाम के विरुद्ध भेजा। बीदर के पास उदगिर में निजाम की सेना बुरी तरह से हार गयी। निजाम को तब विवश होकर अहमदा नगर, दौलताबाद, बीजापुर और बुरहानपुर के किले तथा ६२ लाख की आमद का प्रदेश पेशवा को दे देना पडा (१७६० ई०)। पर इस विजय के एक वर्ष बाद ही अब्दाली के हाथों मराठों को पानीपत के मैदान में भारी पराजय उठानी पडी जिससे उनकी बढती हुई शक्ति और प्रभाव को बहुत धक्का पहुंचा।

मराठा-अफगान संघर्ष, पानीपत का घातक युद्धः—सन् १७६० तक मराठे अपने उत्कर्ष के शिखर पर पहुँच गये थे। उत्तर में रघुनाथ राव ने अटक तक विजय-पताका फहराकर अब्दाली के प्रतिनिधियों को लाहौर से भगा दिया था और उदगिर में निजाम को पछाड कर दक्षिण में भी मराठा सर्वशक्तिमान बन गये थे। मालूम पडता था कि अब सारे भारत में ही मराठा राज्य स्थापित हो जायगा। पर पानीपत के मैदान में यह आशा सदा के लिए विलीन हो गयी।

मराठों के उत्कर्ष से रुहेला सरदार नजीबुद्दौला खाँ और अवध का नवाब वजीर शुजाउद्दौला बहुत जलने लगे थे। दूसरी तरफ मराठों की पंजाब विजय से अब्दाली भी चिढ उठा था। अतः १७५९ में अब्दाली ने फिर पंजाब पर चढाई की और मराठों के प्रतिनिधि को वहाँ से मार भगाया।

इसी समय दिल्ली में वजीर गाजीउद्दीन ने आलमगीर द्वितीय को मारकर एक दूसरे शाहजादे को तख्त पर बिठाया। आलमगीर द्वितीय का लडका अलीगौहर तब बिहार में था। पिता की मृत्यु की खबर पाकर अलीगौहर ने भी अपने को शाहआलम द्वितीय के नाम से बादशाह घोषित कर दिया। इस गडबडी से लाभ उठा कर और रुहेला नजीबखां की मदद पाकर अब्दाली फिर दिल्ली पर चढ आया और मराठों को पछाड कर उसने मुगल राजधानी पर

माधवराव सन् १७६१ में पेशवा के पद पर आसीन हुआ। तब वह नाबालिग था इसलिए उसका चाचा रघुनाथराव संरक्षक बनकर शासन करने लगा। रघुनाथराव बड़ा ही महत्वाकांक्षी और दुश्चरित्र व्यक्ति था। वह पेशवा को ठुकराकर सारी शक्ति अपने हाथों में कर लेना चाहता था। अत चाचा और भतीजे में इस कारण मन-मुटाव पैदा हो गया।

माधवराव प्रथम

निजामअली से युद्ध—इस समय हैदराबाद में निजाम सलावत जंग का भाई निजाम अली सर्वेसर्वा बना हुआ था। उसने मराठों के घरेलू झगड़ों से लाभ उठाकर मराठा राज्य पर आक्रमण कर दिया। पर पूना के पास मराठा सेना ने निजामअली को बुरी तरह से पछाड़ दिया (१७६२ ई०)। मराठे इस अवसर पर निजाम को पूरी तरह से कुचल सकते थे, पर रघुनाथराव ने पेशवा और निजामअली में सुलह करा दी। निजामअली तब दक्खिन लौट गया और स्वयं निजाम बन कर उसने अपने भाई सलावतजंग को मरवा डाला (१७६३ ई०)।

इधर माधवराव ने रघुनाथराव की मनमानी से चिढ़ कर शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली। रघुनाथराव ने तब निजाम से मिलकर माधवराव को दबाने का षड्यन्त्र रचा, इस पर माधवराव ने आपसी झगड़े को मिटाने के हेतु अपने चाचा को आत्मसमर्पण कर दिया। रघुनाथ-राव तब फिर सर्वेसर्वा बन गया। पर निकम्मे रघुनाथराव में सर्वेसर्वा

(२) शाहू के मरने पर महाराष्ट्र में आन्तरिक झगड़े क्यों पैदा हुए और पेशवा बालाजीराव ने किस तरह उनका दमन किया ?
(३) डूप्ले की पराजय के क्या कारण थे ?
(४) निजाम, बुसी और पेशवा में जो संघर्ष हुआ उस पर प्रकाश डालिए।
(५) पेशवा ने आंग्रे का विनाश क्यों किया और उसका क्या परिणाम हुआ ?
(६) अब्दाली कौन था ? दिल्ली, मथुरा और गोकुल पर उसने कब आक्रमण किया था ? उसके आक्रमण का वर्णन कीजिए।
(७) काल-कोठरी की गाथा पर अपनी राय दीजिए।
(८) प्लासी का युद्ध किसम हुआ था। उसके परिणामो पर प्रकाश डालिए।
(९) लैली की पराजय के क्या कारण थे ?
(१०) उदगिर की सन्धि कब और किसमें हुई थी ?
(११) अब्दाली और मराठो में पानीपत का जो युद्ध हुआ उसक कारणो और परिणामो पर प्रकाश डालिए।

अध्याय—३

पेशवा माधवराव (१७६१—७२ ई०)

माधवराव और उसकी कठिनाइयाँ—पानीपत की हार से मराठा शक्ति को जो आघात लगा उससे मराठा साम्राज्य के टूट जाने का भय पैदा हो गया था। पर बालाजीराव के लड़के और उत्तराधिकारी माधवराव ने बड़ी योग्यता के साथ स्थिति को सभाल लिया और दस वर्ष के भीतर मराठो की फिर वही धाक स्थापित कर दी जो पानीपत से पहले थी

माधवराव सन् १७६१ में पेशवा के पद पर आसीन हुआ। तब वह नाबालिग था इसलिए उसका चाचा रघुनाथराव संरक्षक बनकर शासन करने लगा। रघुनाथराव बड़ा ही महत्वाकांक्षी और दुश्चरित्र व्यक्ति था। वह पेशवा को ठुकराकर सारी शक्ति अपने हाथों में कर लेना चाहता था। अतः चाचा और भतीजे में इस कारण मनमुटाव पैदा हो गया।

माधवराव प्रथम

निजामअली से युद्ध—इस समय हैदराबाद में निजाम सलाबत जंग का भाई निजाम अली सर्वेसर्वा बना हुआ था। उसने मराठों के घरेलू झगड़ों से लाभ उठाकर मराठा राज्य पर आक्रमण कर दिया। पर पूना के पास मराठा सेना ने निजामअली को बुरी तरह से पछाड़ दिया (१७६२ ई०)। मराठे इस अवसर पर निज़ाम को पूरी तरह से कुचल सकते थे, पर रघुनाथराव ने पेशवा और निजामअली में सुलह करा दी। निजामअली तब दक्खिन लौट गया और स्वयं निजाम बन कर उसने अपने भाई सलाबतजंग को मरवा डाला (१७६३ ई०)।

इधर माधवराव ने रघुनाथराव की मनमानी से चिढ़ कर शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली। रघुनाथराव ने तब निजाम से मिलकर माधवराव को दबाने का षड्यन्त्र रचा, इस पर माधवराव ने आपसी झगड़े को मिटाने के हेतु अपने चाचा को आत्मसमर्पण कर दिया। रघुनाथराव तब फिर सर्वेसर्वा बन गया। पर निकम्मे रघुनाथराव में सर्वेसर्वा

बनने की क्षमता न थी। अत. कुछ ही समय बाद सारी शक्ति फिर माधवराव के हाथ में चली आई।

किन्तु इस आपसी झगड़े से मराठा राज्य को काफी ठेस पहुँची। इस स्थिति का लाभ उठाकर निजामअली ने मराठा राज्य पर फिर चढ़ाई कर दी। पर वीर पेशवा माधवराव ने गोदावरी के किनारे राक्षसभुवन में निजाम को पुन. बुरी तरह से हराकर सुलह करने को विवश किया (१७६३ ई०) और जो प्रदेश निजाम ने दबा लिये थे, उन्हें फिर प्राप्त कर लिया।

इस विजय से माधवराव का यश और मान बहुत बढ़ गया। उसने अब शासन अपने हाथ में लेकर योग्य पुरुषों को अपना सहायक और मंत्री बनाया। उसके मंत्री और सहायकों में प्रमुख बालाजी जनार्दन (नाना फड़नीस) और महादजी सिंधिया थे जो मराठा इतिहास में बहुत विख्यात हो गये हैं।

अफगान–सिक्ख संघर्ष–अब्दाली के आक्रमणों से पंजाब में जो अस्तव्यस्तता फैली उससे सिखों ने भी खूब लाभ उठाया। पानीपत के युद्ध के उपरान्त अब्दाली के लौट जाने पर सिखों ने अफगान-अधिकारियों को हराकर सरहिन्द और लाहौर पर कब्जा कर लिया और जगह-जगह पंजाब में अपने गढ़ कायम कर लिये। सिखों को दबाने के लिए अब्दाली ने कई बार फिर पंजाब पर आक्रमण किया, पर वह सिखों को दबाने में सफल न हो सका। फलत १७६७ तक सिखों ने सारे पंजाब पर दखल कर लिया और उनके छोटे-छोटे बारह दलों ने वहाँ अपने बारह राज्य कायम कर दिये। ये राज्य 'मिसल' कहलाते थे और उनके मुखिया सिख सैनिकों के दलों द्वारा चुने जाते थे।

सिखों में एक दल ऐसा भी था जो किसी मिसल में शामिल न था। इस दल के लोग—'अकाली' (अमर व्यक्ति व 'ईश्वर के सैनिक') नाम से प्रसिद्ध थे और अमृतसर के गुरुद्वारा के पुजारी व अधिकारी थे।

हैदरअली से युद्ध—हैदरअली मैसूर के हिन्दू राजा का सेनापति था, पर सन् १७६१ में सेना की मदद से वह मैसूर राज्य का सर्वेसर्वा बन बैठा। उसने तब मैसूर राज्य की सीमाओं को बढ़ाना शुरू किया और कृष्णा तथा तुङ्गभद्रा नदी के प्रदेश पर, जो मराठों का अधिकार-क्षेत्र था, आक्रमण करने लगा। उसके इस बढ़ाव को रोकने के लिए पेशवा माधवराव सेना लेकर कर्णाटक पहुँचा। हैदरअली बुरी तरह से पराजित हुआ और तुंगभद्रा के उत्तर के प्रदेश मराठा को सौंप कर उसने सुलह कर ली (१७६४–६५ ई०)

नागपुर और बरार के मराठा सरदार जनोजी भोंसला और पेशवा का चाचा रघुनाथराव (राघोबा) शत्रुओं से मिलकर षडयंत्र करते जाते थे। इसलिए कर्णाटक से लौटने पर माधवराव ने इन दोनों को परास्त कर दबा दिया। इन घरेलू झगडों का लाभ उठाकर हैदरअली फिर बढ़ने लगा, पर पेशवा ने उसे फिर बुरी तरह से हरा दिया (१७६७ ई०)। इस पर भी हैदरअली मराठों के विरुद्ध बढ़ने से बाज न आया। अत पेशवा ने उसे दबाने को फिर सेना भेजी। सन् १७७२ में मराठों ने हैदरअली को पुन. श्रीरंगपट्टम् में बुरी तरह से पछाड़ दिया। पर इसी समय माधवराव भी दुनिया से चल बसा और हैदर पेशवा के हाथों पूरी तरह नष्ट होने से बच गया।

अंग्रेजों का बढ़ाव, मीरकासिम और बक्सर का युद्ध—पानीपत के युद्ध में फसे रहने से पेशवा बालाजीराव बगाल में अंग्रेजों की हलचल पर ध्यान न दे सका था। इसी तरह पेशवा माधवराव भी निजाम और हैदरअली से युद्धों में फसे रहने के कारण बहुत समय तक उत्तरी भारत की ओर ध्यान न दे सका। अत मराठों से निरापद होकर इस बीच अंग्रेजों को बगाल-बिहार में जमने तथा गगा के दुआब म घुसने का सुअवसर मिल गया।

सिराजुद्दौला को नष्ट करके अंग्रेजो ने मीरजाफर को बगाल का नवाब बनाया था। इसके बदले में मीरजाफर ने अंग्रेजों को इतना रुपया देना कबूल किया, जितना कि वह दे न सकता था।

१७६० में क्लाइव इग्लैंड लौट गया और वैनिसटार्ट गवरनर हुआ। उसने असतुष्ट होकर मीरजाफर को गद्दी स उतार दिया और उसके दामाद मीरकासिम को नवाब बनाया। मीरकासिम ने बर्दवान, मिदनापुर और चटगाँव के जिले अग्रजो को दे दिये और अग्रेज अधिकारियो को भी बहुत-सा रुपया रिश्वत में भेंट किया।

मीरकासिम ने मुगेर को राजधानी बनाया। उसने शासन और सेना में सुधार किया और बन्दूकें बनाने का कारखाना खोला। कम्पनी के आयात निर्यात के माल को छोड कर उसने कम्पनी के अग्रज नौकरो के निजी आन्तरिक व्यापार पर चुगी वसूल करने के लिए अपने फौजदारो को कडी ताकीद दी। ये अग्रेज व्यापारी भारतियो से कपडा, नमक, सुपारी, तमाखू, घी, चीनी, तेल, चावल और शोरा आदि सस्ते दाम पर खरीद कर मनमाने भाव से बेचते थे और एक पैसा भी महसूल न देना चाहते थे। अत नवाब की उन्होने कोई बात न चलने दी। अग्रेजो के इस व्यवहार से खीझ कर नवाब ने भारतीय और अग्रेजी व्यापारियो का भेद हटाकर कुल व्यापार से चुगी उठा दी। इस पर अग्रेजो और मीरकासिम में झगडा बढ चला, और कलकत्ता की कौसिल ने ५० लाख रुपया घूस लेकर मीरजाफर को फिर से नवाब बना दिया (१७६३ ई०)। मीरजाफर ने अग्रेजी फौज के खर्चे के लिए ५ लाख रुपया माहवार देना और अग्रेजी रेजीडेण्ट रखना स्वीकार किया।

अग्रेजो की ज्यादती के विरुद्ध मीरकासिम बहादुरी से लडा, लेकिन हारकर अवध भाग गया। अवध के नवाब शुजाउद्दौला और मुगल बादशाह शाहआलम से मिलकर उसने फिर अग्रेजों पर चढाई की। लेकिन सन् १७६४ मे इन तीनो को अग्रजी सेनापति मेजर हेक्टर मुनरो ने बक्सर में बुरी तरह से हरा दिया। मीरकासिम और शुजाउद्दौला तब भाग निकले, पर बादशाह शाहआलम अग्रेजो की शरण में चला आया। शुजाउद्दौला का पीछा किया गया और अग्रेजो ने इलाहाबाद तथा लखनऊ पर अधिकार कर लिया।

अन्त में विवश होकर शुजाउद्दौला ने भी अंग्रेजो को आत्मसमर्पण कर दिया (१७६५ ई०)। इन विजयों के फल से गगा के दोआब में भी अब अंग्रेजो का प्रभाव स्थापित हो गया। उनके इस बढ़ाव पर पेशवा माधवराव ही रोक लगा सकता था, पर वह तब दक्षिण म हैदरअली से उलझा हुआ था।

शुजाउद्दौला और शाहआलम से संधि—इस बीच (१७६५) क्लाइव भी फिर बगाल का गवरनर होकर लौट आया। उसने बनारस पहुँच कर ५० लाख रुपया लड़ाई का हर्जाना लेकर अवध का राज्य शुजाउद्दौला को लौटा दिया, पर कोड़ा और इलाहाबाद के जिले वापस नहीं किये। शुजाउद्दौला और अंग्रेजो ने एक दूसरे की रक्षा करने का भी वचन दिया। नवाब ने बनारस के राजा को कम्पनी के अधीन कर दिया और अंग्रेजों को अवध में बिना महसूल के व्यापार करने की भी स्वीकृति दे दी।

इलाहाबाद में क्लाइव ने शाहआलम से भी सधि की। उसने बादशाह को कोड़ा और इलाहाबाद के जिले दिये, और बदले में ईस्ट इंडिया कम्पनी को बादशाह से बगाल बिहार और उड़ीसा की दीवानी अर्थात् कर वसूल करने का अधिकार मिला। कम्पनी ने बगाल प्रान्त की आमदनी से २६ लाख रुपया बादशाह को देना स्वीकार किया। बगाल के नवाब से कर वसूल करने के सब अधिकार छीन लिये गये और उसे भी बदले में ५३ लाख रुपया सालाना दिया जाने लगा। इस तरह बगाल का वह प्रान्त जिसे पेशवा अधिकृत करना चाहता था वह अंग्रेजों के हाथ में चला आया। इस तरह प्रबन्ध करके दो वर्ष बाद सन् १७६७ में क्लाइव पुन इंग्लैंड लौट गया।

दोहरा प्रबन्ध—दीवानी मिलने से कर वसूल करने का अधिकार तो कम्पनी के हाथ में चला आया, पर शासन प्रबन्ध नवाब के ही जिम्मे रहा। किन्तु सेना और अर्थ पर अधिकार न रहने से नवाब प्रजा में शान्ति और व्यवस्था कायम रखने में असमर्थ था। फलत इस दोहरे प्रबन्ध से प्रजा को अत्यन्त कष्ट मिलने लगा। धन और बल पर अधिकार कर लेने पर भी कम्पनी अपने को प्रजा के प्रति किसी तरह जिम्मेदार

न समझती थी। वह तो जिस किसी तरह कर वसूल करने और रुपया बटोरने पर लगी थी और नवाब असहाय बना हुआ था। कम्पनी के अधिकारी लोगों से घूस में खूब रुपया भी ऐंठते और मनमाने ढग से व्यापार करते थे। इन कारणों से प्रजा की आर्थिक दशा बिगड गयी और देशी व्यापार तथा उद्योग धन्धे चौपट हो गये। परिणामत सन् १७७० में बगाल में ऐसा भीषण अकाल पडा जिसमें लगभग १ करोड आदमी भूख से तडप-तडप कर मर गये।

रेग्यूलेटिंग ऐक्ट–इस कुशासन और राजनैतिक दुरवस्था से अग्रेजी व्यापार का भी धक्का लगा। व्यापार की घटती और निरतर युद्धा के कारण कम्पनी की आर्थिक हालत बिगड गयी। फलत कम्पनी को इग्लैंड की सरकार से कर्ज लेने की आवश्यकता हुई। इधर कम्पनी की शक्ति और राज्य बढने से इग्लैंड की सरकार भी कम्पनी के जीते हुए प्रदेशो पर अपना नियत्रण रखने की सोच रही थी। अत कम्पनी को कर्ज देने के साथ, उसके कार्यों पर नियत्रण रखने के लिए इग्लैंड की सरकार ने सन् १७७३ में रेग्युलेटिंग ऐक्ट के नाम से एक कानून भी पास किया।

इसके अनुसार बगाल का गवरनर सभी अग्रेजी इलाको का गवरनर-जनरल माना गया। उसकी आज्ञा के बिना मद्रास और बम्बई के गवरनरो का युद्ध तथा सधि करने का अधिकार न रहा। गवरनर-जनरल को शासन में सहायता पहुँचाने के लिए चार मेम्बरो की एक कौसिल नियुक्त की गई। गवरनर-जनरल कौंसिल का सभापति हुआ। गवरनर-जनरल और कौंसिल अपने कार्यों के लिए इगलैंड की पार्लियामेंट के प्रति जिम्मेदार माने गये। न्याय के लिए कलकत्ते में एक 'सुप्रीम कोर्ट' या प्रधान अदालत स्थापित की गई, जिसमें एक प्रधान जज (चीफ जस्टिस) तथा तीन अन्य जज रखे गये। कम्पनी के डाइरेक्टरो को अब भारत के शासन सबधी सभी कागजात इगलैंड की सरकार के सामने पेश करना आवश्यक हो गया। इस तरह कम्पनी

के ऊपर इंगलैंड की सरकार का नियंत्रण स्थापित हो गया। इस ऐक्ट में गवरनर-जनरल, कौंसिल तथा सुप्रीम कोर्ट के अधिकार ठीक से निश्चित नहीं थे, जिस कारण उनमें आपस में संघर्ष होता रहता था। यह दोष बाद में १७८१ के कानून द्वारा ठीक कर दिया गया।

उत्तरी भारत में साम्राज्य-स्थापना का पुनः प्रयत्न और माधवराव की मृत्यु—पानीपत की हार से उत्तरी भारत में मराठों का प्रभाव बहुत शिथिल पड़ गया था। अतः युवक पेशवा माधवराव उत्तर में पुनः मराठा साम्राज्य स्थापित करने के लिए उत्सुक हो उठा। पर घरेलू झगड़ों तथा निजाम और हैदरअली के साथ युद्ध में फँसे रहने के कारण वह जल्दी कुछ न कर सका। इस बीच जैसा कि वर्णन किया जा चुका है अंग्रेजों ने बंगाल-बिहार से लेकर बनारस तक अपना प्रभाव स्थापित कर लिया था। परिणामतः अवध का नवाब अंग्रेजों से दब कर उनका मित्र बन गया था और मुगल बादशाह शाहआलम इलाहाबाद में उनकी शरण में रह रहा था।

अंग्रेजों के इस प्रसार से पेशवा माधवराव को काफी चिन्ता हो रही थी। इसलिए घरेलू झगड़ों और दक्षिण के युद्धों से अवकाश पाते ही पेशवा ने सन् १७६९ में उत्तरी भारत में पुन. मराठा प्रभुत्व स्थापित करने के लिए रामचन्द्र गणेश और महादजी सिंधिया आदि के नेतृत्व में एक सेना उत्तर के लिए रवाना की। इस मराठा दल ने उत्तर भारत में घुसकर मालवा और बुन्देलखंड पर कब्जा किया, राजपूत और जाटों से कर वसूल किया तथा रुहेलों व अफगानों को पछाड़ कर दिल्ली पर पुन. अधिकार स्थापित कर लिया।

इस जीत से उत्तरी भारत में मराठों की धाक अब फिर जम गयी और शाहआलम इलाहाबाद से उनकी मदद के लिए याचना करने लगा। अतः महादजी सिंधिया ने इलाहाबाद से शाहआलम को

बुला लिया और उसे पुनः दिल्ली के तख्त पर बिठा दिया (१७७१-७२ ई०)। इस प्रकार पानीपत की हार से मराठों का जो प्रभाव उत्तरी भारत से उठ गया था, वह दस वर्ष के भीतर पुनः स्थापित हो गया।

किन्तु इसी समय दुर्भाग्य से महान् पेशवा माधवराव केवल २८ वर्ष की अवस्था में ही सहसा परलोक सिधार गया (१७७२ ई०)। उसकी अकाल मृत्यु से महाराष्ट्र में फिर घरेलू कलह शुरू हो गया, जिस कारण उत्तर में साम्राज्य-स्थापना का कार्य अधूरा ही छोड़कर मराठे सेनापतियों को दक्षिण लौट जाना पड़ा। निःसन्देह, महान् सेनापति, राजनीतिज्ञ और कुशल शासक पेशवा माधवराव की मृत्यु से मराठा राज्य को ऐसा गहरा आघात पहुँचा जो पानीपत की हार से भी न पहुँचा था।

अभ्यास के लिए प्रश्न—

(१) माधवराव को पेशवा होने पर किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था?

(२) अफगान-सिख संघर्ष पर प्रकाश डालिए।

(३) माधवराव और हैदरअली के बीच क्यों लड़ाई हुई और उसका क्या परिणाम हुआ।

(४) मीर कासिम और अंग्रेजों के बीच झगड़ा क्यों हुआ और उसका परिणाम क्या हुआ?

(५) 'दीवानी' दुहरी प्रबन्ध और 'रेग्यूलेटिंग ऐक्ट' को समझाइए।

(६) माधवराव ने उत्तरी भारत में साम्राज्य स्थापना के लिए क्या प्रयत्न किया और उसका परिणाम क्या हुआ?

— ० —

अध्याय—४

नाना फड़नीस

(१७७३–१७९९ ई०)

वारेन हेस्टिंग्ज और अंग्रेजी शासन की स्थापना—सन् १७७२ ई० में वारेन हेस्टिंग्ज बंगाल का गवरनर नियुक्त हुआ और रेग्युलेटिंग ऐक्ट के अनुसार वह पहला गवरनर-जनरल बना। बंगाल के दोहरे प्रबन्ध से बंगाल की तब बहुत बुरी दशा हो रही थी। इसलिए हेस्टिंग्ज ने सबसे पहले शासन में सुधार करने और दोहरे प्रबन्ध को हटाने का निश्चय किया। उसने सारे प्रान्त को कई जिलों में बाटा और प्रत्येक जिले के लिए एक अंग्रेज कलक्टर नियुक्त किया। कलक्टर मालगुजारी वसूल करता और शासन
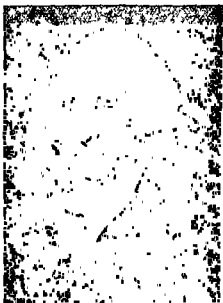
वारेन हेस्टिंग्ज

का कार्य भी करता था। प्रत्येक जिले के लिए दीवानी और फौजदारी अदालतें स्थापित की गयी। ये दोनों अदालतें कलक्टर के अधीन थी। मुसलमानों और हिंदुओं का न्याय उनके नियमों के आधार पर होता था। फौजदारी की अदालतों के लिए भारतीय अधिकारी नियुक्त किये गये। कलकत्ते में दो बड़ी अदालतें खोली गई, जो 'सदर-दीवानी अदालत' और 'सदर निजामत अदालत' के नाम से कहलाईं। इन प्रान्तीय अदालतों में जिला अदालतों की अपील सुनी जाती थी। हेस्टिंग्ज ने शासन कार्य से भारतीयों को अलग

सब जगह अग्रजा को रगा। रुदिा कम्पनी के डाइरेक्टरो ० कहने पर उसे अपना नियम वद-कर फौजदारी का शासन नवाव को सौंपना पडा और सदर निजामत अदालत मुर्शिदाबाद भेज दी गयी (१७७५ ई०)। कम्पनी की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए हेस्टिग्ज न नवाव की पेन्शन भी ३२ लाख से घटा कर १६ लाख कर दी।

पेशवा नारायणराव की हत्या और 'बाराभाई समिति' की स्थापना—पेशवा माधवराव की मृत्यु महाराष्ट्र के लिए बहुत दुखदायी और विनाशकारी साबित हुई। उसके बाद उसका छोटा भाई नारायणराव, १७ वर्ष की उम्र में पेशवा हुआ। पर ९ महीने के बाद ही उसके दुष्ट चचा रघुनाथराव ने एक षडयन्त्र द्वारा उसकी हत्या करा दी और स्वयं पेशवा बन बैठा। हत्यारों से घिरने पर अभागे नारायणराव ने रघुनाथराव से चिपट कर कहा था कि पेशवाई ले लो लेकिन उसके प्राण छोड दो, परन्तु दुष्ट रघुनाथराव का दिल न पसीजा और हत्यारों ने नारायणराव के टुकडे-टुकडे कर डाले।

पेशवा रघुनाथराव

इस हत्या से सारा महाराष्ट्र रघुनाथराव से घृणा करने लगा और बहुत से शक्तिशाली मराठे सरदार उसके विरोधी हो गये। नारायणराव की मृत्यु के समय

उसकी पत्नी गर्भवती थी । अत. कुछ समय बाद सन् १७७४ में उसकी विधवा पत्नी गगाबाई ने एक पुत्र को जन्म दिया। इस बीच अवसर पाकर नाना फडनीस, हरिपन्त फड़के और सखाराम बापू आदि १२ मराठा सरदारों ने 'बारा भाई' नाम से एक शासन-समिति बनाई और मृत पेशवा के बच्चे के नाम पर शासन अपने हाथो में ले लिया । नारायणराव के नवजात बच्चे का नाम सवाई माधवराव रखा गया और ४० दिन का होने पर उसे पेशवा बना दिया गया । इस तरह पदच्युत रघुनाथराव भाग कर सूरत चला गया और वहाँ अग्रेजो से मिलकर अब मराठा राज्य के विरुद्ध पडयन्त्र रचने लगा । रघुनाथराव ने सूरत म अग्रेजो से सन्धि कर उनसे मदद मागी और बदले में थाना, बेसिन और सालसेट (साष्टी) द्वीप अग्रेजो को देना स्वीकार किया (१७७५ ई०) । इस प्रकार महाराष्ट्र के विभीषण रघुनाथराव ने अग्रेजो को स्वय ही मराठा मडल पर चोटें मारने का स्वर्ण अवसर प्रदान किया और उनके लिए भारत-विजय का मार्ग सुगम बना दिया ।

अवध और रुहेलखण्ड पर अंग्रेजों का प्रभुत्व—वारेन हेस्टिंग्ज किसी भी तरह छल और बल से अग्रेजी राज्य को फैलाने के लिए उत्सुक होकर मौका देखता रहता था । इलाहाबाद की सधि के बाद बादशाह शाहआलम द्वितीय से अग्रेजो का आश्रित बनकर इलाहाबाद में रहने लगा था । कम्पनी को बगाल की दीवानी देने पर क्लाइव ने तब बादशाह को बगाल प्रात की आमदनी में से २६ लाख रुपया सालाना देना भी मजूर किया था । पर १७७२ ई० में शाहआलम जब मराठों के सरक्षण में दिल्ली चला गया तो हेस्टिंग्ज ने बहाना पाकर बादशाह को सालाना २६ लाख की रकम देना बन्द कर दिया और इलाहाबाद तथा कोडा के जिले भी उससे छीन लिये। हेस्टिंग्ज ने तब १७७३ में अवध के नवाब-वजीर के साथ नई सधि की और ५० लाख पय में उक्त जिले उसके हाथ बेच दिये ।

सन्धि के अनुसार अवध के नवाब को अपने खर्चे पर कम्पनी की कुछ सेना भी रखनी पडी। इस प्रकार अवध के नवाब वजीर शुजाउद्दौला को अग्रेजो ने बिलकुल अपनी मुट्ठी में कर लिया। इससे अग्रेजो को यह लाभ हुआ कि पश्चिम से बगाल पर मराठो या अफगानो के आक्रमणो को रोकने के लिए अवध का राज्य बीच में धब ढाल का काम देने लगा। अवध के नवाब ने भी अग्रेजो की मित्रता से लाभ उठाने का प्रयत्न किया। उसने हेस्टिग्ज से रुहेलखड पर आक्रमण करने के लिए सहायता मागी और बदले में ४० लाख रुपया देना स्वीकार किया। हेस्टिग्ज ने अग्रेजी प्रभाव और शक्ति को बढाने तथा रुपया बटोरने का यह अवसर हाथ से न जाने दिया और सैनिक सहायता देना स्वीकार कर लिया। अवध के नवाब-वजीर और अग्रेजो ने मिलकर तब रुहेलखड पर चढाई कर दी (१७७४ ई०)। वीर रुहेला सरदार हाफिज रहमत खा ने मीरनपुर कटरा में आक्रमणकारियो का वीरता से सामना किया, लेकिन वह हारा और मार डाला गया। रामपुर को छोडकर बाकी रुहेलखड को अब अवध में मिला लिया गया, पर शुजा अपने अत्याचारो के कारण वही मार डाला गया। कम्पनी को भी इस युद्ध से बहुत-सा रुपया हाथ लगा और हेस्टिग्ज ने अवध के नये नवाब-वजीर आसफुद्दौला को अपने यहा अब पहले से अधिक अग्रेजी सेना रखने पर विवश किया और फौज के खर्चे के लिए गोरखपुर-बहराइच के जिले ले लिये। इस तरह अवध का राज्य पूरी तरह से अग्रेजो का आश्रित बन गया।

मराठो से पहला युद्ध—दक्षिण और पूरब में अग्रेज बढते ही जा रहे थे, अब मराठों की आपसी फूट से लाभ उठाकर बम्बई की अग्रेजी सरकार ने पश्चिमी तट को भी हडप लेना चाहा। इसीलिए सन् १७७५ में दुष्ट रघुनाथराव (राघोबा) भाग कर जब सूरत पहुँचा तो अग्रेज उसे मदद देने को झट तैयार हो गये। पर शर्त यह थी कि युद्ध का व्यय रघुनाथराव उठावे और सालसेट तथा बेसीन अग्रेजो को सौंप दे। इस प्रकार राघोबा की मदद का बहाना लेकर बम्बई सरकार ने मराठा

सरकार से युद्ध छेड़ दिया (१७७५ ई०)। पर गवर्नर-जनरल हेस्टिंग्ज ने बम्बई सरकार के इस कार्य को पसन्द न किया और युद्ध रोक देने की आज्ञा भेजी। इसके साथ ही उसने मराठा सरकार से सन्धि करने के लिए कर्नल उपटन को पूना भेजा। इस पर पुरन्दर में उप्टन और बारा भाइयां की मंत्री-सभा के बीच एक सन्धि हुई जिसके अनुसार अंग्रेजों ने राघोबा का साथ न देने का वादा किया और मराठों ने थाना तथा सालसट पर अंग्रेजों का अधिकार स्वीकार कर लिया (१७७६ ई०)।

बम्बई की सरकार को यह सन्धि पसन्द न आई। अतः कम्पनी के संचालकों या डाइरेक्टरों से लिखा पढ़ी करके बम्बई सरकार ने सूरत की सन्धि के अनुसार राघोबा की सहायता करने के लिए स्वीकृति प्राप्त कर ली। इस पर गवर्नर-जनरल हेस्टिंग्ज ने भी अब बम्बई सरकार की नीति को उचित ठहराया। इस प्रकार अंग्रेजों ने अपनी साम्राज्य लिप्सा को पूरा करने के लिए बिना कारण पूना की सरकार से फिर युद्ध छेड़ दिया। पर मराठों ने पूना की ओर बढ़ती हुई बम्बई की अंग्रेजी सेना को रौंद कर बडगाँव में उसे बुरी तरह घेर लिया। विवश होकर अंग्रेजी सेना ने अपनी जान छुड़ाने के लिए बडगाँव में मराठों से सन्धि कर ली और जीते हुए मराठा इलाकों को लौटा कर राघोबा को उनके सुपुर्द कर देना स्वीकार किया (१७७९ ई०)। सेनापति महादजी सिंधिया ने तब घिरी हुई अंग्रेजी सेना को बम्बई लौट जाने दिया और राघोबा को अपनी कैद में ले लिया। पर देश-द्रोही राघोबा फिर भाग कर सूरत में अंग्रेजों से जा मिला। घिरी हुई अंग्रेजी फौज के बम्बई लौट आने पर बम्बई सरकार और हेस्टिंग्ज ने भी अब बडगाँव में हुई सन्धि को मानने से इन्कार कर दिया और युद्ध जारी रखा। हेस्टिंग्ज ने बम्बई सरकार की मदद के लिए कप्तान गोडर्ड की अध्यक्षता में एक सेना भी भेजा जो बुन्देलखंड और मध्य भारत होती हुई सूरत पहुँची। इधर

अब बारा-भाइयों की समिति समाप्त हो गयी और नाना का मराठा शासन में एकाधिपत्य हो गया। नाना ने मैसूर हैदरअली को अपनी ओर मिलाकर अंग्रेजों के विरुद्ध मोर्चा लेने को प्रेरित किया। इस तरह हैदरअली, निजाम और मराठे सरदारों को मिलाकर नाना ने एक शक्तिशाली अंग्रेज-विरोधी संघ बनाने का प्रयत्न किया। किन्तु हेस्टिंग्ज ने इनमें से नागपुर के भोंसला सरदार मुधोजी और निजाम निजाम-अली को नाना के गुट से फोड कर अपनी तरफ कर लिया।
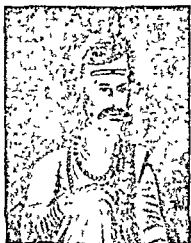
नाना फडनीस

केवल हैदरअली अपने वादे पर डटा रहा। इस प्रकार सन् १७८० में अंग्रेजों, मराठों तथा हैदरअली के बीच लडाई शुरू हो गयी।

कप्तान गौडर्ड ने गुजरात से कोंकण में उतर कर बेसीन दबा लिया। इसके बाद उसने पूना की तरफ बढने की कोशिश की, पर मराठों ने उसे तंग कर बम्बई लौट जाने को विवश किया (१७-८१ ई०)। इस बीच हेस्टिंग्ज ने मालवा में भी मराठा-शक्ति को तोडने के लिए कप्तान पोफम को भेजा। उसने महादजी सिंधिया का ग्वालियर दुर्ग छीन लिया। पर सिरोंज के पास अंग्रेजों को स्वयं महादजी से बुरी तरह हारना पड़ा। उधर कर्नाटक में भी अंग्रेजों को हैदरअली से बुरी तरह पराजय उठानी पडी। इस हार तथा गौडर्ड की असफलता से घबडा कर हेस्टिंग्ज ने ग्वालियर का दुर्ग महादजी सिंधिया को लौटा कर उसकी मध्य-स्थता से सालबाई में मन मारकर पूना सरकार से सन्धि कर ली (१७८२–८३)। सन्धि के अनुसार अंग्रेजों को थाना और सालसेट

मिला और उन्होंने राघोबा का साथ छोड़ कर बेसीन मराठा सरकार को वापस लौटा दिया।

यह सन्धि मराठों ने हैदरअली से बिना पूछे की थी, इसलिए उसने मराठों के मेल कर लेने पर भी कर्णाटक में अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध जारी रखा। उसके मरने (१७८२) पर उसके वीर लड़के टीपू ने भी अंग्रेजों का पीछा न छोड़ा। अंत में टीपू के आक्रमणों से मद्रास सरकार बहुत परेशान हो उठी और उन्होंने झुककर मंगलोर में उससे सुलह कर ली (१७८४ ई०)।

चेतसिंह और अवध की बेगमों पर अत्याचार—युद्धों में बहुत-सा रुपया व्यय हो जाने से कम्पनी को रुपये की कमी रहने लगी। खर्चे को पूरा करने के लिए हेस्टिंग्ज ने तब बनारस के राजा चेतसिंह और अवध के नवाब को सताना शुरू किया। बनारस का राजा पहले अवध के अधीन था, लेकिन १७६५ में नवाब ने उसे अंग्रेजों के अधिकार में कर दिया था। बनारस के राजा चेतसिंह ने कम्पनी को २२॥ लाख रुपया देना स्वीकार किया। पर इतने से सन्तुष्ट न होकर हेस्टिंग्ज ने अकारण उससे जबर्दस्ती और भी रुपया वसूल किया। १७८० में हेस्टिंग्ज ५० लाख रुपया वसूल करने के लिए स्वयं बनारस पहुँचा और चेतसिंह को अपनी कैद में डाल दिया। इस घटना से राजा की सेना भड़क उठी और उसने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। यह विद्रोह दबा दिया गया, पर चेतसिंह भाग कर महादजी सिंधिया की शरण में चला गया। हेस्टिंग्ज ने अब बनारस के राज्य पर कब्जा करके उसे चेतसिंह के एक भानजे को दे दिया और उससे सालाना ४० लाख रुपया लेना निश्चित किया।

चेतसिंह की तरह रुपये के लिए हेस्टिंग्ज ने अवध के नवाब वजीर आसफउद्दौला को भी बहुत तंग किया। नवाब-वजीर ने कम्पनी सरकार का पेट भरने के लिए हेस्टिंग्ज के दबाव से अपनी माँ और दादी के खजाने को लूट कर १ करोड़ रुपया भेंट किया

(१७८२ ई०)। हेस्टिंग्ज के इन अनैतिक कार्यों से उसकी बहुत बदनामी हुई, लेकिन कम्पनी सरकार को खर्चे का साधन मिल गया। सन् १७८५ में हेस्टिंग्ज वापस चला गया।

पिटका इंडिया ऐक्ट और कार्नवालिस का शासन—रेग्यूलेटिंग ऐक्टको पास करके इगलैंड की सरकार ने कम्पनी के ऊपर नियंत्रण स्थापित कर लिया था, लेकिन यह नियंत्रण अधूरा था। ऐक्ट में गवरनर-जनरल और कौंसिल तथा प्रान्तीय सरकारो की अधिकार-सीमाएँ स्पष्ट रूप से निर्धारित नही की गयी थी, जिस कारण उनमें आपस में झगडा होता रहता था। अत सन् १७८४ में इगलैंड के प्रधान-मंत्री पिट ने पालियामेंट में एक नया कानून पास कराया जो 'पिट का इडिया ऐक्ट' के नाम से प्रसिद्ध है। इस कानून के अनुसार इगलैंड की सरकार ने भारत में कम्पनी के शासन की देख-भाल करने के लिए ६ सदस्यो की एक 'निरीक्षण-समिति' नियत की जो 'बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल' के नाम से प्रसिद्ध है। कम्पनी के डाइरेक्टर अब कोई सीधी आज्ञा भारत में अपने कर्मचारियों के पास नहीं भेज सकते थे। भारत के शासन सम्बन्धी सारे कागजात बोर्ड के सामने पेश करना और उन पर आज्ञा लेना जरुरी हो गया। बोर्ड के सामने कागजात पेश करने और उसकी आज्ञाओ को भारत भेजने के लिए कम्पनी के तीन डाइरेक्टरो या सचालको की एक 'गुप्त समिति' भी बनाई गई। गवरनरो और सेनापतियो को नियुक्त करने का अधिकार कम्पनी के डाइरेक्टरो से ले लिया गया पर कम्पनी के अन्य कर्मचारियो को नियुक्त करने और निकालने का अधिकार डाइरेक्टरो के हाथ में ही रहने दिया गया। गुप्त समिति की आज्ञा के बिना गवरनरो को युद्ध या सन्धि करने का अधिकार न रहा। गवरनर-जनरल के कौंसिल के सदस्यो की सख्या ४ से घटाकर ३ कर दी गयी और मद्रास तथा बम्बई प्रान्त पूर्ण रूप से उसके अधीन कर दिये गये।

लार्ड कार्नवालिस—वारेन हेस्टिंग्ज के बाद लार्ड कार्नवालिस गवर-नर-जनरल नियुक्त हुआ। सन् १७८६ में वह भारत पहुँचा। वह एक चतुर और कुशल राजनीतिज्ञ था। उसने भारत में मराठों और मैसूर के सुलतान को तब बहुत शक्तिशाली पाया। अतः ब्रिटिश-राज को बढ़ाने के लिए इन दो की शक्ति को तोड़ना उसने आवश्यक समझा। लेकिन इसमें उसने उतावली न दिखायी और अवसर तथा समय को देख कर काम करने का निश्चय किया।

विजय के कठिन कार्यों को हाथ में लेने से पूर्व उसने पहले अपना ध्यान अंग्रेजी शासन को सुधारने और सुव्यवस्थित करने में लगाया। उसने घूस और रिश्वतखोरी को रोकने के लिए कलक्टरों तथा अन्य बड़े-बड़े अफसरों का वेतन बढ़ा दिया। कलक्टरों के अधिकार में उसने केवल माल का महकमा रखा और न्याय के लिए न्यायाधीश या जज नियुक्त किये। कम्पनी के कर्मचारियों को निजी व्यापार करने से रोकने का प्रयत्न किया गया। उसने पुलिस विभाग का भी संगठन किया और थाने खुलवा कर उनके लिए भारतीय दारोगा नियुक्त किये। परन्तु ऊँचे पदों पर कार्नवालिस ने भारतीयों को रखना बन्द कर दिया। इस प्रकार भारतीयों को अपने ही देश के शासन से अलग कर दिया गया।

लार्ड कार्नवालिस

इस्तमरारी बंदोबस्त—कम्पनी सरकार मालगुजारी वसूल करने के लिए ठेका दिया करती थी। जो सबसे अधिक बोली बोलते उन्हें

जी बादशाह से मिले। बादशाह ने सारा शासन-भार महादजी को सौंप दिया। महादजी ने मथुरा के निकट अपना शिविर स्थापित किया। उसने पहले बहुत से विद्रोही मुगल सरदारों और राजाओं को दबाने का प्रयत्न किया। पर वह उदयपुर, जोधपुर व जयपुर के राजा को दबाने मे असफल रहा (१७८७ ई०)। इस असफलता से महादजी की शक्ति को काफी आघात पहुँचा और उसके शत्रु प्रबल हो उठे। परिणामत कुछ समय के लिये उसे दिल्ली-

द-व्याय

मथुरा से हट जाना पडा। इससे मौका पाकर नजीबुद्दौलके पोते रुहेला सरदार गुलाम कादिर ने चढाई कर दिल्ली पर अधिकार कर लिया। निर्दयी और क्रूर गुलाम कादिर ने शाहआलम को कैद म डालकर उसकी आँखें फुडवा दी, और शाही परिवार पर तरह-तरह के अत्याचार किये। दुष्ट रुहेला ने महल के बहुत बच्चों और स्त्रियों को भूख से तडपा-तडपा कर मार डाला। उसने शाहजादाओं पर भी कोडे लगवाये और शाहजादियों की प्रतिष्ठा धूल में मिला दी। कादिर के अत्याचारों की खबर पाकर महादजी ने नाना फडनीस की मदद पाकर फिर दिल्ली पर चढाई की और बादशाह व उसके परिवार को रुहेलों के चगुल से छुडा लिया। गुलाम कादिर अपने बहुत से साथियों समेत पकड लिया गया और शाह आलम की आज्ञा से उनकी

सतान न थी। अत नाना फडनीस की इच्छा के विरुद्ध, देशद्रोही रघुनाथ राव का निकम्मा लडका बाजीराव द्वितीय, पेशवा का निकट वशज होने से पेशवा बनाया गया (१७९६ ई०) और नाना उसका प्रधान मत्री नियुक्त हुआ। अयोग्य और उद्धत बाजीराव नाना फडनीस से घृणा करता था और उससे स्वच्छद होकर शासन करना चाहता था। इस पर नाना फडनीस और पेशवा में झगडा शुरू हो गया। इस झगडे से मराठा शासन शिथिल पड गया और चारो तरफ अशाति ही अशाति फैल उठी। मराठो का

पेशवा सवाई माधवराव

सितारा अब तेजी से अस्ताचल की ओर बढने लगा। बाजीराव ने महादजी सिंधिया के उत्तराधिकारी दौलतराव सिंधिया से षडयन्त्र करके नाना को कैद में डाल दिया। बाजीराव और सिंधिया के अत्याचारो से महाराष्ट्र की दुर्दशा हो चली और राज्य की दीवारें टूटती नजर आने लगी। शासन चलाने में अपने को असमर्थ पाकर बाजीराव ने पुन खुशामद करके नाना फडनीस को प्रधान मत्री बनने को राजी किया। नाना ने तब फिर प्रधान मत्री का पद ग्रहण किया (१७९८ ई०)। पर इसके दो वर्ष बाद ही सन् १८०० में मराठा राज्य को भवर में छोड कर नाना परलोक सिधार गया। पेशवा अब मनमानी करने के लिये बिल्कुल स्वतत्र हो गया। इस प्रकार नाना की मृत्यु और पेशवा के निकम्मेपन तथा मनमानी ने मराठा राज्य के पतन में अब देर न लगने दी।

मराठा राज्य की इस आतरिक दुर्दशा को अग्रेज ध्यान से देखते जाते थे। पर सर जॉन शोर ने देशी राज्यो के मामलो में हस्तक्षेप न करने की नीति धारण कर रक्खी थी, इसलिये जबतक वह रहा

आपस में बांट लिया। इस युद्ध के परिणाम से टीपू की शक्ति बहुत घट गई और अग्रेज प्रबल हो चले।

सन् १७९३ में कार्नवालिस वापस चला गया और उसकी जगह सर जान शोर गवर्नर-जनरल बना। इसी समय कपनी को एक नया आज्ञापत्र मिला, जिसमें पिट के इडिया ऐक्ट पर निर्धारित नीति को स्पष्ट करते हुये यह कहा गया कि भारत मे राज्य बढाने के लिये युद्ध करना अग्रेज 'राष्ट्र की नीति,' प्रतिष्ठा तथा इच्छा के विरुद्ध है। अत सर जॉन शोर ने इस घोषणा के अनुसार देशी राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप न करने की नीति को अपनाया।

खर्दा का युद्ध—निजाम और मराठो में हमेशा झगडा चलता रहता था। निजाम ने बहुत दिनों से मराठो को चौथ न दी थी। इस पर नाना फडनीस चौथ का हिसाब चुकाने के लिये निजाम पर जोर देने लगा। लेकिन चौथ देने के बजाय निजाम के मत्री ने यह कहला भेजा कि हम पूना को जला कर खाक कर देंगे और नाना को कैदी करके हैदराबाद पकड लायेंगे। निजाम ने अग्रेजो की मदद के भरोसे पर ही इस तरह की धमकी दी थी। पर हस्तक्षेप न करने की नीति का अनुसरण करते हुए सर जोन शोर ने निजाम और मराठों के झगडा मे पडने से बिल्कुल इन्कार कर दिया।

अग्रेजो से निराश होकर निजाम तब अकेले ही मराठो से जा भिडा। पर पूना और बिदर के बीच खर्दा नामक स्थान के निकट निजाम हार गया और उसने चौथ का ३ करोड रुपया, युद्ध का हर्जाना तथा दौलताबाद का किला मराठा को देना स्वीकार करके पेशवा से सधि कर ली (१७९५ ई०)।

मराठा राज्य का पतन—खर्दा की विजय मराठो की अतिम विजय थी। इस विजय के कुछ ही महीने बाद पेशवा सवाई माधवराव महल की छत से गिर कर मर गया। उसके मरते ही पूना में फिर गडबड मच उठी और आतरिक झगडो में फस कर मराठा राज्य की दुर्दशा हो चली। पेशवा सवाई माधवराव की कोई

सनान न थी। अत नाना फड़नीस की इच्छा के विरुद्ध, देशद्रोही रघुनाथ राव का निकम्मा लड़का बाजीराव द्वितीय, पेशवा का निकट वंशज होने से पेशवा बनाया गया (१७९६ ई०) और नाना उसका प्रधान मंत्री नियुक्त हुआ। अयोग्य और उद्धत बाजीराव नाना फडनीस से घृणा करता था और उससे स्वच्छंद होकर शासन करना चाहता था। इस पर नाना फड़नीस और पेशवा में झगड़ा शुरू हो गया। इस झगड़े से मराठा शासन शिथिल पड़ गया और चारो तरफ अशांति ही अशांति फैल उठी। मराठा का

पेशवा सवाई माधवराव

सितारा अब तेजी से अस्ताचल की ओर बढ़ने लगा। बाजीराव ने महादजी सिंधिया के उत्तराधिकारी दौलतराव सिंधिया से षडयन्त्र करके नाना को कैद में डाल दिया। बाजीराव और सिंधिया के अत्याचारों से महाराष्ट्र की दुर्दशा हो चली और राज्य की दीवारें टूटती नजर आने लगी। शासन चलाने में अपने को असमर्थ पाकर बाजीराव ने पुन खुशामद करके नाना फड़नीस को प्रधान मंत्री बनने को राजी किया। नाना ने तब फिर प्रधान मंत्री का पद ग्रहण किया (१७९८ ई०)। पर इसके दो वर्ष बाद ही सन् १८०० में मराठा राज्य को भवर में छोड़ कर नाना परलोक सिधार गया। पेशवा अब मनमानी करने के लिये बिल्कुल स्वतंत्र हो गया। इस प्रकार नाना की मृत्यु और पेशवा के निकम्मेपन तथा मनमानी ने मराठा राज्य के पतन में अब देर न लगने दी।

मराठा राज्य की इस आंतरिक दुर्दशा को अंग्रेज ध्यान से देखते जाते थे। पर सर जॉन शोर ने देशी राज्यो के मामलो में हस्तक्षेप न करने की नीति धारण कर रक्खी थी, इसलिये जबतक वह रहा

अंग्रेजो ने महाराष्ट्र के मामलो में दखल न दिया। लेकिन १७९८ ई० में जब रिचार्ड वेलेजली गवर्नर जनरल होकर भारत पहुँचा तो उसने हस्तक्षेप न करने की नीति को त्याग दिया और देशी राज्यो के आतरिक झगडो से भरपूर लाभ उठाने की कोशिश की। अत वेलेजली ने अवसर पाकर मैसूर, हैदराबाद तथा पूना के राज्यो पर अंग्रेजी प्रभुत्व स्थापित करके देशी शक्तियो को ठिकाने लगा दिया।

अभ्यास के लिए प्रश्न—

(१) वारेन हेस्टिग्ज ने शासन में क्या-क्या सुधार किये और अंग्रेजी राज्य को बढाने मे कहाँ तक सफलता प्राप्त की ?

(२) बारा भाई समिति की स्थापना क्यो और कैसे हुई ?

(३) पहला मराठा युद्ध के कारणो और परिणामो पर प्रकाश डालिये।

(४) चेतसिह और अवध की बेगमो के साथ हेस्टिग्ज ने क्यो दुर्व्यवहार किया ?

(५) पिट का इडिया ऐक्ट और इस्तमरारी बन्दोबस्त क्या थे ?

(६) टीपू और कार्नवालिस मे क्यो युद्ध हुआ और उसका परिणाम क्या हुआ ?

(७) महादजी सिंधिया ने उत्तरी भारत में मराठो की धाक जमाने के लिए क्या प्रयत्न किये ?

अध्याय—५

भारतीय समाज की दशा (१८ वीं सदी)

हिंदू पुनरुत्थान—तुर्क, पठान, अफगान और मुगल आदि मुस्लिम विजेताओ द्वारा देश पर अधिकार स्थापित किये जाने से हिन्दुओ की शक्ति को मध्ययुग में काफी आघात लगा था। इस राजनैतिक पराभव से हिन्दू-जाति को ऊपर उठाने और उनमें तथा मुसलमानों में मेल

स्थापित करने के लिए १५ वी, १६वी शती में भारत में अनेक हिंदू-सुधारक पैदा हुए। इन सुधारकों के धार्मिक प्रचार और उपदेशों ने हिन्दू मुसलमानो में मेल उत्पन्न किया तथा गिरी हुई हिन्दू-जाति को ऊचा उठने की जोरदार प्रेरणा प्रदान की। इस प्रकार हिन्दू-जाति ने तब फिर से उठना शुरू किया। इस पुनरुत्थान के ही फल से १७ वी, १८वी शती म पजाब में सिख, भरतपुर में जाटो, बुन्देलखड में बुन्देला और महाराष्ट्र में मराठा आदि ने औरगजेब और उसके उत्तराधिकारियो से अपनी राजनैतिक स्वतत्रता और अधिकारो के लिए सघर्ष छडा और उसमें सफल भी हुए। परिणामत १८ वी शती में निकम्मे मुगल बादशाहो की शक्ति को तोड कर जगह-जगह हिन्दुओ ने अपने शक्तिशाली राज्य कायम कर लिये। मराठे हिन्दुओ मे सब से प्रबल निकले। छत्रपति शाहू तथा पेशवा बाजीराव, बालाजीराव और माधवराव आदि के नेतृत्व में मराठा शक्ति उत्तरी और दक्षिणी भारत के बहुत बडे भाग पर छा गयी। उनके इस प्रसार से एक बार एसा मालूम होने लगा था कि भारत में मुगल शाही की जगह अब 'हिन्दू-पाद-पादशाही' स्थापित हो जायगी। लेकिन अन्त मे मराठो क आन्तरिक झगडो और अग्रेजो के बीच में आ जाने से यह स्वप्न अधूरा ही रह गया।

साहित्य और कला–हिन्दुओं की जागृति और पुनरुत्थान का साहित्य और कला पर भी बहुत प्रभाव पडा। पठानो व मुगलो की दासता में फस कर हमारा साहित्य भी वासना और शृगार में फस गया था। परन्तु अकबर के समय में भक्त-कवियो ने हमें भक्ति-काव्य का रसपान कराकर विषयासक्ति से ऊपर उठाया और हमें ज्ञान तथा कर्म का मार्ग दिखाया। १७ वी १८वी शती में जब हिन्दू नेताओ ने मुगलो की पराधीनता के विरुद्ध सर उठाया तो हिंदू साहित्यधारा ने भी शृगार के विलास को त्याग कर वीरता के दर्प और स्वाभिमान की स्वच्छन्द काव्य तरगो में लहराना शुरू किया और झुके हुए शीशों को ऊँचा उठकर आगे बढने का उत्साह प्रदान किया।

सिखों को मुगल अत्याचार के विरुद्ध शस्त्र उठाने को तय्यार कर गुरु गोविन्दसिंह ने अपने शिष्यों को मोह और विलास की उपासना छोड़ कर राक्षस-दर्प विनाशिनी दुर्गा-चंडी का उपासक बनने का मंत्र पढ़ाया और ओजस्वी भाषा में 'चंडीचरित्र' की रचना की। इनकी रचना का उदाहरण देखिए—

> "प्रान के बचैया, दूध, पूत के देवैया,
> रोग सोग के मिटैया, किधौं मानी-महमान हौ?
> जाजन के जाल हौ, कि कालहू के काल हौ,
> कि शत्रुन के साल हौ कि मित्रन के प्रान हौ?

शक्ति के उपासक गुरु गोविन्दसिंह हिन्दू-भावों और भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए जीवन भर मुगलों से युद्ध करते रहे। सिखों का यह स्वातंत्र्य युद्ध उनके अनुयायियों ने भी पूरे पराक्रम के साथ जारी रखा और अन्त में पंजाब में अपना स्वतंत्र राज्य कायम करके ही चैन लिया।

मराठा छत्रपति शिवाजी और स्वतंत्रता का योद्धा बुन्देला छत्रसाल के जीवन-चरित्र से प्रभावित होकर भूषण ने वीरकाव्य की रचना कर मुर्दे हिन्दुओं में जान फूंक दी। भूषण ने एक राजकवि के नाते शिवाजी और छत्रसाल की कोई झूठी प्रशंसा नहीं की है। शिवाजी और छत्रसाल ने हिन्दू-जाति के गौरव और मान को उठाने में जिस पराक्रम और उत्साह से कार्य किया, भूषण ने उसीकी प्रशंसा में अपने काव्य की रचना की है। अतः भूषण को और उसीकी भाँति बुन्देलखंड के वीर राजा छत्रसाल के पराक्रम का यशोगान करने वाले लाल कवि तथा भरतपुर के पराक्रमी जाट राजा सूरजमल का गीत गानेवाले सूदन को हम केवल

सूरजमल जाट

प्रशसक और भडैनी करनेवाला नही कह सकते। भूषण के प्रसिद्ध ग्रन्थ–, 'शिवराजभूषण' 'शिवाबावनी' और 'छनसाल दसक' हैं। उसके वीररसपूर्ण प्रभावशाली कवित्व का नमूना देखिए—

गाढे गढ लीन्हें अरु बैरिन कतलान कीन्हे
ठौर ठौर हासिल उगाहत हैं साल को।
बूडति है दिल्ली सो सम्हारे क्यो न दिल्लीपति
धक्का आनि लाग्यो सिवराज महाकाल को॥

लाल कवि के "छत्रप्रकाश" काव्य के कुछ पद्य देखिए—

चौंकि चौंकि सब दिशि उठे सूबा खान खुमान।
अब धौं धावै कौन पर छत्रसाल बलवान॥

× × ×

छनसाल हाडा तह आयो। अरुन रग आनन छवि छायो॥
भयो हरौल बजाय नगारो। सार धार को पहिरन हारो॥
दौरि देस मुगलन के मारी। दपटि दिल्ली के दल सहारो॥

× × ×

सूदन के प्रबंध-काव्य 'सुजान-चरित्र' का नमूना देखिए—

सोनित अरघ ढारि, लुत्थ जुत्थ पाँवडे दै,
दारूधूम, धूपदीप, रजक की ज्वालिका।
चरबी को चदन, पुहुप पल-टूकन के;
अच्छत अखड गोला गोलिन की चालिका॥
नैवेद्य नीको साहि सहित दिल्ली को दल,
कामना बिचारी मनसूर-पन-पालिका॥
कोटरा के निकट विकट जग जोरि सूजा
भली विधि पूजा कै प्रसन्न कीन्ही कालिका॥

गद्य-साहित्य और खडी बोली—पद्य के सामने गद्य ने इस समय बहुत कम विकास किया। दिल्ली, आगरे आदि पच्छिमी नगरो में बोली जाने वाली खडी-बोली में जिसके हिन्दी और उर्दू दो रूप हो गये हैं, यद्यपि अकबर के समय से ही

गद्यलिखना शुरू हो गया था, तथापि गद्य-साहित्य अभी तक पूरा विकास न कर सका। पर भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना होने के समय तक खड़ीबोली लगभग सारे उत्तरी भारत में व्यवहार की शिष्ट भाषा बन गयी थी। औरंगजेब के समय में खड़ी बोली के साथ फारसी भाषा के शब्दों और भावों को मिला कर उसके देशी रूप को बदल दिया गया था। फारसी मिश्रित खड़ी-बोली तब उर्दू कहलायी और खड़ी बोली का शुद्ध देशी रूप हिंदी कहलाया। भारत की अन्य भाषाओं के बजाय इस समय मराठी में गद्य साहित्य का अच्छा विकास हुआ।

हिन्दू-मन्दिरों और भवनों का निर्माण—शिवाजी, शाहू और बाजीराव आदि मराठा नेताओं ने हिन्दू-धर्म और हिन्दू-

अमृतसर का स्वर्ण मन्दिर
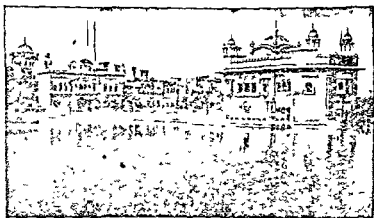
बादशाही को भारत में प्रतिष्ठित करना अपने जीवन का लक्ष्य बनाया था, जिस कारण मुगलों से उनका बराबर संघर्ष होता रहा। परिणामतः विजयी होनेपर मराठों ने जहाँ भी अपना अधिकार स्थापित किया, वहाँ उन्होंने हिन्दू-मन्दिरों और तीर्थों का पुनरुद्धार किया और नये मन्दिर तथा दूसरी इमारतें बनवाईं।

एलोरा के पास अहल्याबाई होल्कर का घृसणेश्वर का मन्दिर, पूना में नाना फडनीस का बेलबाग मन्दिर और अमृतसर में सिखों का स्वर्ण-मन्दिर आदि इस समय की स्थापत्य-कला के बहुत अच्छे नमूने माने जाते हैं।

जयपुर के प्रसिद्ध विद्याप्रेमी और जयपुर नगर के सस्थापक राजा सवाई जयसिंह की बनवायी वेधशालाएँ भी इस युग की प्रसिद्ध इमारतों में से हैं। ये वेधशालाएँ जयपुर, दिल्ली और बनारस आदि में बनाई गई थी। लेकिन इन वेधशालाओं के यत्र खो गये हैं और अब केवल इमारतें ही रह गई हैं। सवाई जयसिंह ज्योतिष शास्त्र और साहित्य आदि का महान् प्रेमी और सरक्षक था। कहते हैं, उसने यूरोप से जर्मन ज्योतिषियों को भी अपने यहाँ बुलाया था।

विभिन्न प्रांतो तथा अफगान और मराठाराज्य में जनता की दशा—अग्रेजो का पृष्ट-पोषण करने वाले कतिपय इतिहासकारो ने इस समय के भारतीय राज्यो की जनता की दशा बहुत शोचनीय प्रकट की है। इन लेखको का कहना है कि मुगल साम्राज्य के पतन होने पर भारत की राजनैतिक हालत ऐसी गडबड हो गई कि चारो तरफ विप्लव और अशाति ही नजर आती थी। अत इस स्थिति को सुधारने और देश में पुन सुरक्षा तथा शाति स्थापित करने का श्रेय उक्त प्रकार के लेखक ब्रिटिश राज को ही प्रदान करते हैं। किन्तु तत्कालीन कुछ अग्रेज तथा भारतीय लेखको के विवरणो से उस समय की तथाकथित सर्वदेशीय अराजकता और अशाति के आरोप अतिरजित और गल्त साबित हो जाते हैं।

बगाल में अग्रेजी शासन स्थापित होने से पूर्व नवाबो के समय का वर्णन करते हुए इतिहासकार गुलाम हुसेन ने लिखा है कि नवाबों के राज्य की दशा अच्छी थी और प्रजा में धन तथा अमन था। नवाब अलीवर्दीखाँ बिना किसी धार्मिक भेदभाव के सारी प्रजा को एक ही जैसा समझता था। योग्य

हिन्दू और मुसलमान व्यक्तियो को राज्य में समान रूप से ऊँचे पद दिये जाते थे। जनता की आर्थिक दशा अच्छी थी और उन्हें जीवन-निर्वाह की चिन्ता न थी। लेकिन प्लासी और बक्सर की विजयो से जब वहाँ कम्पनी का प्रभुत्व स्थापित हुआ तो अग्रेजो की व्यापारिक लूट से नवाब का खजाना खाली हो गया, प्रान्तीय व्यापार का नाश हो गया और जनता कगाल बन गई। अग्रेज लेखक बोल्ट्स का भी कहना है कि अग्रेजी व्यापारी गुमाश्तो के अत्याचार से खेती की दशा इतनी भी बिगड चली की किसानो को लगान चुकाना तक कठिन हो गया।

अग्रेजी आक्रमणो और प्रभुत्व के स्थापित होने से पूर्व कर्णाटक और तजौर की हालत भी बहुत सुखद और समृद्ध थी। फ्रासीसी और अग्रेजो के आक्रमण से पूर्व के कर्णाटक का वर्णन करते हुए एक अग्रेज लेखक स्क्रैफ्टन ने लिखा है कि सिचाई के लिए वहाँ राज्य की ओर से बड-बडे तालाब बने हुए थे। डाकू तथा चोरो का कोई भय न था और जनता की आर्थिक हालत बहुत सुन्दर थी। लेकिन फ्रासीसी और अग्रेजो के आक्रमणो मे थोडे ही दिनो में कर्णाटक की हालत बिगड गई, खेती की दशा बुरी हो गई, आबादी घट गई और व्यापार नष्ट-भ्रष्ट हो गया।

अग्रेजो के अन्यायपूर्ण आक्रमणो से पूर्व तजौर का वर्णन करते हुए पेट्री ने लिखा है कि वहाँ का व्यापार बहुत उन्नत था और कलाएँ विकसित थी। लेकिन अग्रेजी आक्रमण के फल से वहाँ का व्यापार, खेती और कलाएँ सब नष्ट हो गई और 'दक्षिण का बाग' तजौर वीरान हो गया।

अत इन उद्धरणो से प्रकट है कि मुगलो का पतन होने पर १८वीं शती में भारत के विभिन्न प्रान्तों मे एसी अराजकता न थी जैसी कि बतलाई जाती है। प्रान्तीय शासको के अधीन सामान्यत प्रजा सुखी और समृद्ध थी। इसके अलावा भारतीय समाज में गाव प्रधान थे और देश की अधिकाश जनता गाँवो में ही रहती थी, जैसे कि अब भी रहती है। ये गाँव आत्म निर्भर और स्वावलम्बी हुआ करते थे।

इसलिए राजनैतिक विप्लवो का वहाँ की जनता और जीवन पर बहुत कम प्रभाव पड़ पाता था। सर चार्ल्स मेटकाफ लिखता है कि राजवंश नष्ट हो गये, साम्राज्यों का पतन हो गया, पर इन गाँवों के जीवन में कोई परिवर्तन न हुआ।

मुगल-साम्राज्य के पतन से मुगलों की शक्ति टूट गई थी, पर साथ ही साथ विभिन्न प्रान्तो में नयी देशी शक्तियाँ भी उत्पन्न हो गई थी। इन नयी शक्तियो में अफगान, मराठे और सिख सब से प्रबल हुए। इन शक्तियो ने अपने राज्य में सुशासन और सुव्यवस्था रखी और केन्द्रीय शक्ति के टूटने से जो विप्लव मच सकता था उसे रोक दिया।

रुहेलखंड में रुहेला अफगान राज्य करते थे। उनके राज्य में सुशासन और सुव्यवस्था थी। बंगाल के गवरनर वेरेलस्ट ने रुहेलों की प्रशंसा की है और मिल ने लिखा है कि उनका राज्य बहुत सुसंगठित था, जनता सुरक्षित थी, व्यापार उन्नत था और देश भरा-पूरा था।

मराठों के बारे में कतिपय यूरोपियन लेखको ने यह आरोप लगाया है कि वे लूटने-पाटने में कुशल थे, पर शासन तथा व्यवस्था पर ध्यान न देते थे। लेकिन ये आरोप कुछ एक यूरोपियन व अंग्रेज लेखकों के ही विवरणो से अप्रमाणिक और असत्य सिद्ध हो जाते है। पेरन (१७६२ ई०) ने महाराष्ट्र का वर्णन लिखते हुए कहा है कि वहाँ सतयुग की सरलता और सुख का अनुभव होता है। सब लोग प्रसन्न, फुर्तीले और बहुत स्वस्थ है। १९वी सदी में सर जौन मालकम ने भी मराठा राज्य की समृद्धि और ऐश्वर्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उसने लिखा है कि महाराष्ट्र जैसा समृद्ध और वैभवशाली प्रदेश उसने कही नही देखा। पेशवा की राजधानी पूना 'समृद्ध और फूलती-फलती नगरी' थी। इस का सब से बड़ा कारण मॉल्कम ने यह दिया है कि वहाँ के गाँवो की पन्चायतों और दूसरी स्थानीय सस्थाओं को मराठा सरकार सदा बढ़ावा दिया करती थी।

मराठो के उत्तर भारत की विजय से उत्तर और दक्षिण के बीच इस समय सांस्कृतिक आदान-प्रदान भी खूब बढ़ा। जयपुर के राजा सवाई जयसिंह के यहां अनेक महाराष्ट्री पंडित रहते थे। उसका गुरु भी मराठा था। इस प्रकार संपर्क होने से उत्तरी भारत के भाव-विचार तथा रीति-रिवाज आदि दक्षिण पहुँचे और उन्होंने महाराष्ट्र के जीवन को खूब प्रभावित किया। उत्तरी भारत के नमूने पर महाराष्ट्र में भी विशालकाय भवनों और मन्दिरों का निर्माण हुआ और सुन्दर बाग-बगीचे लगाये गये। उत्तरी भारत से 'इत्र' आदि शौक की वस्तुएँ भी दक्षिण पहुँची।

किन्तु इस आपसी आदान-प्रदान को छोड़ कर उस समय की बाहरी दुनिया से भारतीयों ने तब कोई सम्पर्क और ज्ञान-विज्ञान का आदान-प्रदान न स्थापित कर सका। अतः राजपूतों तथा मराठों को अपने समय के यूरोपियन देशों की हलचल का कुछ पता न चल सका। यूरोप में ब्रिटेन और फ्रांस आदि मुल्कों ने ज्ञान-विज्ञान और राजनीति में क्या उन्नति और क्रांति की है इसका यहाँ वालों को कोई हाल न मालूम था। अंग्रेज और फ्रांसीसियों के साथ युद्ध लड़ने के बाद भी यहाँ के शासकों ने जहाजरानी और गोला-बारूद के बनाने की कला पर विशेष ध्यान न दिया। महादजी सिंधिया जैसे कुछ सतर्क व्यक्तियों ने यूरोपियनों के सहारे पाश्चात्य ढंग की सेनाएँ अवश्य खड़ी की और कुछ ने बन्दूक के कारखाने भी स्थापित किये लेकिन समुचित रूप से यूरोप से इस ज्ञान-विज्ञान को सीखने की चेष्टा नहीं की गई।

अतः यूरोप के नये ज्ञान-विज्ञान के प्रति जागरूक और जिज्ञासु न होने, आपसी फूट तथा अपने कर्त्तव्यों के प्रति उदासीन होने से ही भारतीयों को तब राजनीति के दाँव-पेंचों और नये ज्ञान-विज्ञान के अद्भुत और खतरनाक आविष्कारों से युक्त अंग्रेजों के सामने झुकना पड़ा।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—१८ वी शती के हिन्दू पुनरुत्थान के कारणों पर प्रकाश डालिये ?

२—१८ वी शती में साहित्य और कला की कैसी उन्नति हुई, बतलाइये ?

३—अफगान और मराठों आदि देशी राज्यों म जनता की कैसी दशा थी ?

४—भूषण, लाल कवि और सूदन के बारे में आप क्या जानते हैं ?

अध्याय—६

अंग्रेजी राज

ब्रिटिश आधिपत्य की स्थापना

(सन् १७९८—१८३० ई०)

नेपोलियन का भय—भारत में फ्रांसीसियों की शक्ति अब नहीं के बराबर रह गई थी, लेकिन उनका भय और आतंक अंग्रेजों के मन और मस्तिष्क में अभी भी बना हुआ था। उन्हें यह डर लगा रहता था कि देशी राजा व नवाब कहीं फ्रांसीसियों की मदद लेकर उनके विरुद्ध कोई विप्लवकारी षडयंत्र न खड़ा कर दें।

१७९३ में फ्रांस में बड़ी भारी राजनैतिक क्रान्ति हुई और वहाँ के लोगों ने अपने बादशाह को मार डाला। फ्रांस की राज्य-क्रान्ति से सारे यूरोप में खलबली मच उठी। यूरोप के अनेक राज्यों ने मिल कर फ्रांस के प्रजातंत्र को कुचलना चाहा, लेकिन असफल रहे। क्रांति के नूतन जोश और उत्साह से पूर्ण फ्रांस ने अब दिग्विजय करने की ठानी। वीर नेपोलियन बोनापार्ट ने फ्रांसीसी सेना का नेतृत्व सम्हाला। उसकी महत्वाकांक्षा सारे यूरोप को जीतने की थी। इंगलैंड उसके मार्ग में सब से बड़ा रोड़ा था। लेकिन इंगलैंड पर वह सीधे आक्रमण न कर सका। उसने तब १७९८ में मिस्र पर आक्रमण किया। वहाँ से नेपोलियन की महात्वाकांक्षा भारत में घुसने की थी। परन्तु अंग्रेज जल-सेनापति नेलसन ने नील नदी के युद्ध में उसके जहाजी बेड़े को नष्ट कर दिया। फलतः नेपोलियन भारत पर आक्रमण करने को न बढ़ सका और अंग्रेज फ्रांसीसी आतंक से मुक्ति पा गये।

लार्ड वेलेजली और हैदराबाद तथा मैसूर में ब्रिटिश प्रभुत्व—सन् १७९८ में सर जान शोर की जगह लार्ड वेलेजली

गवरनर-जनरल होकर भारत आया। वह अंग्रेजी राज्य को बढ़ाने और भारत से फ्रांसीसी शक्ति को नष्ट कर देने का ध्येय निश्चित करके यहाँ पहुँचा था। इस ध्येय से प्रेरित होकर उसने पहले हैदराबाद और मैसूर पर ध्यान दिया। निजाम के यहाँ फ्रांसीसी सेनापति रेमाँ ने एक शक्तिशाली सेना तैयार कर रखी थी। इस सेना से अंग्रेजों को खतरा था। अतः वेलेजली ने हैदराबाद के निजाम पर रेमाँ की पल्टन तोड़ कर उसकी जगह अंग्रेजी सहायक-सेना रखने का जोर दिया। निजाम मराठों से भय खाया करता था। इसलिए उसे यह भी विश्वास दिलाया गया कि अंग्रेज मराठों से उसकी रक्षा करेंगे। निजाम में अपने बल पर टिकने की सामर्थ्य न थी, अतः विवश होकर उसने अंग्रेजों से संधि करके फ्रांसीसी सेना तोड़ दी और ब्रिटिश सहायक-सेना रखना स्वीकार कर लिया (१७९८ ई०)। इस प्रकार निजाम अब अंग्रेजों का आश्रित हो गया और उसका स्वतंत्र अस्तित्व जाता रहा।

लार्ड वेलेजली

निजाम के बाद वेलेजली ने टीपू की ओर रुख किया। टीपू अंग्रेजों का कट्टर शत्रु था। अंग्रेजों को मार भगाने के लिए उसने नेपोलियन को भी भारत बुलाना चाहा था। अतः वेलेजली टीपू की शक्ति को तोड़ने के लिये दृढ़ संकल्प था। इस प्रयोजन से उसने निजाम की तरह टीपू को भी सहायक संधि में फँसने का निमंत्रण दिया। परन्तु स्वाभिमानी टीपू अपने आप अंग्रेजों का फंदा अपने पैरों में डालने के लिये तैयार न हुआ। वेलेजली ने तब निजाम से मिलकर टीपू के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। इस अवसर पर अंग्रेजों और टीपू दोनों ने पेशवा बाजीराव से मदद देने के लिये कहा।

पेशवा ने असमजस में पड कर किसी पक्ष का भी साथ न दिया। टीपू को अकेला पाकर अंग्रेजो की बन आई। बबई से स्टुआर्ट के नेतृत्व में और मद्रास से आर्थर वेलेजली के नेतृत्व में अंग्रेजी सेनाओ ने मैसूर की ओर बढ़ना शुरू किया। टीपू ने वीरता से अंग्रेजो का सामना किया, पर अंग्रेजो की सगठित शक्ति से पार पाना उसके लिये सम्भव न था। अत में टीपू अपनी राजधानी श्रीरगपट्टम् की रक्षा के लिए बहादुरी से लडता हुआ मार डाला गया (१७९९ ई०)। इस प्रकार हैदर का निर्मित किया हुआ राज्य अंग्रेजी गोलो द्वारा ध्वस्त हो गया। वेलेजली ने टीपू के राज्य का बहुत सा हिस्सा कपनी के राज्य में मिला दिया और कुछ हिस्सा अपने साथी निजाम को भेंट किया। शेष मैसूर का राज्य उस हिन्दू राजा के वशज को सौंप दिया गया जिसे हटा कर हैदर ने प्रभुत्व स्थापित किया था।

जमानशाह का पंजाब पर आक्रमण—काबुल का दुर्रानी बादशाह जमानशाह भारत को जीतने का स्वप्न देखा करता था। सन् १७९७ में वह लाहौर तक बढ आया। अत उसके आक्रमण के भय से अंग्रेज भी सतर्क हो उठे। जमानशाह ने १७९८–९९ में पजाब पर फिर आक्रमण किया। पजाब के सिखो में इस समय युवक रणजीत सिंह सब से प्रबल था। जमानशाह ने भी रणजीत सिंह के प्रभाव में आकर उसे लाहौर का राजा स्वीकार किया और काबुल वापस चला गया। पजाब के सिखो का इतिहास इस समय से रणजीत सिंह के उत्कर्ष के साथ मिल जाता है।

तंजोर, कर्णाटक (तामिलनाड) और रुहेलखड पर ब्रिटिश अधिकार—वेलेजली अंग्रेजी राज्य को बढाने का दृढ सकल्प करके आया था। अत सन् १७९९ में वेलेजली ने जब टीपू के राज्य को समाप्त किया। उसी वर्ष उसने तजौर के राजा को भी अयोग्य बतला कर गद्दी से हटा दिया और पेंशन देकर उसके राज्य को

हड़प लिया। इसी तरह उसने जबरदस्ती सूरत के नवाब को पेंशन देकर सूरत पर भी कब्जा कर लिया।

इसके बाद वेलेजली की भूखी आँखें कर्णाटक पर पड़ी। कर्णाटक का नवाब मुहम्मदअली बहुत पहले से अंग्रेजों का आधिन था। सन् १७९५ में वह मर गया। सन् १८०१ में वेलेजली ने कर्णाटक के नये नवाब पर अंग्रेजों के शत्रु टीपू से सम्बंध स्थापित करने का आरोप लगाया और कर्णाटक को ब्रिटिश राज में मिला दिया।

इसी वर्ष (१८०१ ई०) वेलेजली ने अवध के नवाब को डरा-धमका कर उसे अपनी सेना घटाने और अंग्रेजी सेना का पूरा खर्चा उठाने के लिए विवश किया तथा दोआब और रुहेलखंड के कुछ जिले उससे लेकर कम्पनी के राज्य में मिला दिये। इस प्रकार वेलेजली ने अवध के नवाब को भी बिल्कुल पंगु बना दिया।

गायकवाड़ और पेशवा के साथ सहायक संधि—हैदराबाद और मैसूर को वेलेजली दबा चुका था और अब केवल मराठों को दबाना शेष रह गया था। दुर्भाग्य से मराठों में इस समय कोई बाजीराव प्रथम जैसा योग्य पेशवा और महादजी सिंधिया जैसा योग्य सेनापति न था। पेशवा के उच्च आसन पर इस समय निकम्मा बाजीराव द्वितीय विराजमान था। नीतिज्ञ और सुयोग्य मंत्री नाना फड़नीस भी, जो इस कठिन समय में मराठा-नौका को खेने की योग्यता व क्षमता रखता था, सन् १८०० में ही इस संसार को छोड़ कर चला गया था। अतः केन्द्र में किसी योग्य और बलवान नेता के न होने से मराठे सरदार अब अपने स्वार्थों के लिये खुल कर आपस में लड़ने-भिड़ने लगे और महाराष्ट्र के हित को भूल गये। अतः अंग्रेजों को एक-एक करके उनको दबाने का तब आप ही आप अवसर मिल गया। सन् १८०० में बड़ोदा के शासक गोविन्दराव की मृत्यु होने पर उसके लड़कों में उत्तराधिकार का झगड़ा खड़ा हुआ। इसमें जेठे लड़के आनंदराव की जीत हुई। लेकिन वह कमजोर था, इसलिये आंतरिक विद्रोहों के भय से उसने बम्बई सरकार से संधि करके अपने यहाँ ब्रिटिश

सहायक-सेना रख ली (१८०२ ई०)। वेलेज़ली ने पेशवा बाजीराव द्वितीय पर भी अपने यहाँ ब्रिटिश सेना रखने के लिये जोर दिया। पेशवा अंग्रेजी सेना न रखना चाहता था। पर जल्दी ही ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई जिस कारण पेशवा स्वयं ही अंग्रेजों की शरण में चला आया। पेशवा और उसके सलाहकार दौलतराव सिंधिया के अत्याचारों से बहुत से मराठे सरदार अप्रसन्न हो उठे थे। उनका सब से प्रबल शत्रु यशवंतराव होल्कर था। मूर्खतावश पेशवा ने यशवंतराव के भाई विठोजी को विद्रोह करने पर मरवा डाला (१८०१ ई०)। अपने भाई की हत्या का बदला लेने के लिये यशवंतरावने तब पूना पर चढ़ाई कर दी। डरपोक बाजीराव होल्कर की डर से पूना छोड़ कर अंग्रजों की शरण में बेसीन चला गया (१८०२ ई०)। इस प्रकार देशद्रोही रघुनाथराव (राघोबा) का लड़का आप ही आप वेलेज़ली के जाल में जा फसा। उसने अपने स्वार्थ के लिए महाराष्ट्र की स्वतंत्रता बेच दी और सहायक संधि भी करके अपने यहाँ अंग्रेजी फौज रखना स्वीकार कर लिया। यह संधि बेसीन (बसई) में हुई थी, इसलिये इसे बेसीन की संधि कहते हैं (१८०२)। यशवन्तराव होल्कर, दौलतराव सिंधिया और नागपुर के भोंसला सरदार पेशवा के इस कृत्य से चौंक उठे। अतः महाराष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए यशवन्तराव ने मराठा सरदारों को संगठित होकर पेशवा और अंग्रेजों का

बाजीराव द्वितीय

मुकाबिला करने को उकसाया, परन्तु सिंधिया साथ देने को तैयार न हुआ। होल्कर भी तब पूना छोडकर चला गया और आर्थर वेलेजली ने पूना पहुचकर देशद्रोही बाजीराव को फिर पेशवा की गद्दी पर बिठा दिया।

दूसरा मराठा युद्ध—दौलतराव सिंधिया बाजीराव का मित्र था। लेकिन उसकी तरह वह देशद्रोही न था। उसे पेशवा का अंग्रेजो के हाथ बिकना बहुत बुरा मालूम हुआ। अत उसने पेशवा को अंग्रेजो से अलग हो जाने की सलाह दी। रघुजी भोंसला भी बाजीराव के इस कार्य से चिढ़ गया। फलत अंग्रेजो से मोर्चा लेने के लिए सिंधिया और भोसला ने ब्रिटिश विरोधी सघ बनाया और होल्कर को भी उसमें शामिल होने को कहा। परन्तु अंग्रेजो ने होल्कर से मैत्री जतला कर उसे गुट में शामिल होने से रोक दिया। होल्कर के साथ न देने पर भी सिंधिया और भोसला निजाम की सरहद पर अपनी फौज लेकर आ डटे। इस पर जनरल वेलेजली ने इन दोनो को वहाँ से अपने-अपने प्रदेशो को लौट जाने को कहा। सिंधिया और भोसला इसके लिए राजी न हुए और वेलेजली ने तब बहाना पाकर उनके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी (१८०३ ई०)।

बरार की सीमा पर असई में वेल्जली और सिंधिया व भोंसले की सेना में विकट युद्ध हुआ। इस युद्ध में अंग्रेजो को बहुत नुकसान उठाना पडा, पर विजय उन्ही की हुई। अंग्रेजो ने इसके बाद बुरहानपुर और असीरगढ सिंधिया से छीन लिये। जनरल वेलेजली और स्टीवन्सन ने मिल कर सिंधिया और भोसले की सेना को फिर आरगाँव में बुरी तरह से पराजित किया और उसके बाद भोंसले के शक्तिशाली दुर्ग गाविलगढ़ पर भी अधिकार कर लिया।

दूसरी तरफ उत्तर में लार्ड लेक को भी सिंधिया के विरुद्ध पूरी सफलता प्राप्त हुई। सिंधिया के उत्तरी प्रदेशो की रक्षा का भार इस समय फ्रेंच सेनापति दी ब्वाज के उत्तराधिकारी पेरो के सुपुर्द था। लेकिन यह पेरो अधम और धोखेबाज निकला। अत सिंधिया के

विरुद्ध जब अंग्रेज सेनापति लेक ने कानपुर से फौज लेकर अलीगढ़ पर चढ़ाई की तो पेरों बिना लड़े ही वहाँ से हट गया और अलीगढ़ पर अंग्रेजों का आसानी से कब्जा हो गया। इस प्रकार सिंधिया को धोखा देकर पेरों अंग्रेजों से जा मिला और बहुत सा धन-दौलत लेकर फ्रांस वापस चला गया। वहाँ वीर नेपोलियन ने इस धोखेबाज का मुंह देखना भी पसन्द न किया।

अलीगढ़ के बाद लेक ने सिंधिया की सेना को हरा कर दिल्ली में प्रवेश किया और बादशाह शाहआलम को फिर अपनी शरण में ले लिया। कर्नल ऑक्टरलोनी को दिल्ली में तैनात कर लेक ने फिर मथुरा और आगरा भी सिंधिया से छीन लिये। सिंधिया ने तब लेक का बढ़ाव रोकने के लिए दक्षिण से नई सेना भेजी। लेक ने आगरे से आगे बढ़ कर लासवाड़ी में उनका मुकाबला किया। इस युद्ध में भी अंग्रेजों की विजय हुई, लेकिन सिंधिया की सेना ने जिस वीरता से अंग्रेजों का मुकाबला किया उसे देख कर लेक को कहना पड़ा कि "सिंधिया के सैनिक भूतों की तरह लड़े, यदि फ्रांसीसी अफसर उनका सचालन करते होते तो न जाने क्या परिणाम होता?" पर इस युद्ध में हार जाने से सिंधिया का उत्तरी भारत से सम्पूर्ण प्रभुत्व उठ गया और दूसरी तरफ अंग्रेजों की विजय से आतंकित होकर अलवर, जयपुर और जोधपुर के राजाओं ने भी अंग्रेजी सरकार से संधि कर उनकी अधीनता स्वीकार कर ली।

अंग्रेजों ने बुन्देलखंड और गुजरात पर भी आक्रमण किये और सिंधिया की शक्ति वहाँ भी समाप्त कर दी। गुजरात में सिंधिया से भड़ौंच का किला ले लिया गया और बुन्देलखंड के बुन्देला सरदारों को सिंधिया के प्रभुत्व से अलग करके अंग्रेजों ने उन्हें अपनी शरण में ले लिया। इसी समय भोसले के उड़ीसा प्रान्त पर भी आक्रमण किया गया और वहाँ भी अंग्रेजों का अधिकार स्थापित हो गया (१८०३ ई०)।

इन पराजयों से विवश होकर सिंधिया और भोसले को अन्त में अंग्रेजों से सुलह कर लेनी पड़ी। जनरल वेलेजली ने रघुजी भोंसले

और दौलतराव सिंधिया से अलग अलग संधियाँ की (१८०३ ई०)। संधि के अनुसार अंग्रेजो ने जो प्रदेश जीत लिये थे वे उन्हीं के पास रहे। भोसले को बरार का प्रदेश निजाम के हाथ सौंपना पड़ा। सिंधिया को बादशाह और पेशवा से संबंध त्याग देना पड़ा। अंग्रेजों के सिवाय उन्हें किसी अन्य यूरोपियन को अपने यहाँ नौकरी में न रखना स्वीकार करना पड़ा। इस प्रकार सिंधिया और भोसले का स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हुआ और वे अंग्रेजों के अधीन हो गये। मराठों में अब केवल यशवंतराव होल्कर शक्तिशाली रह गया। उसकी शक्ति से घबड़ा कर सिंधिया ने कुछ समय बाद अंग्रेजों से सहायक-संधि भी कर ली और अंग्रेजी फौज को अपने यहाँ रख लिया (१८०४ ई०)।

होल्कर से युद्ध—पेशवा, सिंधिया और भोसले को दबाने के बाद लार्ड वेलजली ने होल्कर की शक्ति को भी कुचल देने का निश्चय किया। होल्कर से भिड़ने का अंग्रेजों को बहाना भी मिल गया। जयपुर, जोधपुर आदि राजपूत राज्यों ने कंपनी से सहायक-संधि कर ली थी। अतः होल्कर ने जब चौथ वसूल करने के लिये जयपुर पर चढ़ाई की तो अंग्रेजों ने राजपूतों का पक्ष लेकर होल्कर के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। सेनापति लार्ड लेक ने कर्नल मौन्सन को होल्कर के विरुद्ध भेजा। होल्कर तब राजपूताना से हटकर मालवा चला आया। मौन्सन भी उसका पीछा करता हुआ मुकुन्दरा का दर्रा पार कर होल्कर के राज्य में घुस गया। पर होल्कर द्वारा बुरी तरह पराजित होकर वह भाग खड़ा हुआ और किसी तरह अपने प्राणों और बचे-खुचे सैनिकों को लेकर आगरा लौट आया। अंग्रेजों की ऐसी हार कभी नहीं हुई थी। इस पराजय से लार्ड वेलेजली को तो बहुत ही शर्म उठानी पड़ी। इधर यशवंतराव ने अपनी विजय से उत्साहित होकर उत्तर भारत से अंग्रेजों को खदेड़ने का निश्चय करके मथुरा पर चढ़ाई कर दी। मथुरा को लेने के बाद होल्कर ने दिल्ली की ओर कदम बढ़ाया, लेकिन कानपुर से सेनापति लेक के बढ़ने का समाचार पाकर वह आगरे की तरफ हट गया। लेक ने उसका पीछा

जारी रखा। होल्कर तब भागता हुआ अपनी सेना के साथ भरत-पुर पहुचा और उसने वहा के जाट राजा रणजीतसिंह के यहां शरण ली। इस पर लेक ने आकर भरतपुर को घेर लिया (१८०५ई०)। तीन महीने तक अंग्रेजी सेना भरतपुर के दुर्ग को घेर कर पडी रही। अंग्रेजो के बारूद और गोले जब दुर्ग का कुछ भी न बिगाड सके तो लेक ने अंत में किले को लेने का विचार छोड कर घेरा उठा लिया। भरतपुर के राजा ने भी अंग्रेजो की सगठित शक्ति से अधिक दिनों तक टक्कर लेना सम्भव न समझकर अंग्रेजो से अब सधि की बातचीत चलाई। राजा ने तीन लाख रुपया युद्ध का हर्जाना देना कबूल किया और अंग्रेजो ने भी उसको डीग का किला लौटाकर जैसे-तैसे सधि करके भरतपुर के मामले को समाप्त कर दिया। होल्कर अब अकेला रह गया। पर इसी समय अंग्रेजो की साम्राज्य-लोलुपता से चिढ़ कर दौलतराव सिंधिया ने भी अब होल्कर से मिलकर ब्रिटिश विरोधी सघ बनाने की उत्सुकता प्रकट की।

सबलगढ़ में होल्कर और सिंधिया तथा पेशवा, भोसला और छत्रपति के दूत मिले और सघ बनाने पर विचार करने लगे। इस असतोष और विरोध का स्पष्ट कारण, लार्ड वेलेजली की साम्राज्य प्रसार की नीति थी। उसकी इस नीति के फलस्वरूप कपनी का खजाना भी खाली हो रहा था और युद्धो का अत न हो पाता था। अत उसकी नीति से इगलैंड की सरकार और कपनी के डाइरेक्टर भी अप्रसन्न हो उठे। वे भारत में बढते हुए असतोष को दबा कर शाति स्थापित हुई देखना चाहते थे। यह कार्य अब बूढे कार्नवालिस को सौंपा गया और लार्ड वेलेजली को वापस बुला लिया गया। अत बूढा कार्नवालिस दुबारा गवर्नर-जनरल होकर सन् १८०५ में भारत पहुचा।

लार्ड कार्नवालिस और सर जार्जबार्लो—कार्नवालिस सिंधिया और होल्कर के साथ सुलह करने का इरादा लेकर आया था। परन्तु कल-कत्ता से गाजीपुर पहुँचने पर उसकी मृत्यु हो गयी (१८०५ ई०)। उसकी

जगह तब सर जार्ज बार्लो स्थानापन्न गवरनर जनरल हुआ। उसने भी कार्नवालिस की निर्धारित की हुई नीति से काम लिया। दौलतराव सिंधिया को ग्वालियर और गोहद लौटा कर तथा जयपुर पर उसका आधिपत्य स्वीकार कर उससे सधि कर ली गयी। इस पर सिंधिया ने होल्कर का साथ छोड दिया।

होल्कर फिर अकेला पड गया। तब वह सिखों की मदद लेने की इच्छा से पजाब जाकर अमृतसर में रणजीतसिंह से मिला। उसके पीछे-पीछे सेनापति लेक भी पजाब में घुस गया। सिख राजा रणजीतसिंह ने अग्रेजो से भिडने में अपना अहित समझा और चुपके से लेक से सधि कर ली। होल्कर की आशा पर इससे पानी फिर गया और उसने भी अब अग्रेजो से सुल्ह कर ली और इन्दौर वापस चला गया (१८०६ ई०)। होल्कर शक्तिशाली व्यक्ति था। इसलिए अग्रेजो ने उससे जो सधि की वह उसके अनुकूल थी। सधि की शर्तो के अनुसार अग्रेजा ने दक्षिण में उसका जितना राज्य ले लिया था, वह वापस कर दिया। उसे 'सहायक प्रथा' भी स्वीकार न करनी पड़ी और अपने राज्य में उसे पूरी स्वतन्त्रता दे दी गयी। दुर्भाग्य से यह बलशाली योद्धा इसके बाद अधिक दिन जीवित न रहा और सन् १८११ में असमय में ही वह परलोक सिधार गया।

विलियम बेंटिंक को भी गवरनर के पद से हटाकर इंगलैंड वापस बुला लिया गया।

सन् १८०७ में जार्ज बार्लो मद्रास का गवरनर बना दिया गया और उसकी जगह लार्ड मिंटो गवरनर-जनरल नियुक्त हुआ।

मिंटो और उत्तर-पश्चिमी संधियां—मिंटो १८०७ से १८१३ तक गवरनर-जनरल के पद पर रहा। उसने अंग्रेजी शासन को दृढ किया और सीमान्तो की सुरक्षा पर ध्यान दिया। नेपोलियन अब फ्रांस का सम्राट बन गया था और भारत पर उसके आक्रमण का भय अभी भी बना हुआ था। अत उसने फ्रांस के भय से भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा को सुरक्षित रखने लिए ईरान, अफगानिस्तान, सिंध और पंजाब के राज्यों से मित्रता जोडने के लिए दूत भेजे।

मिंटो ने ईरान के शाह से संधि करने के लिए दो बार मालकम को भेजा, लेकिन वह विफल होकर लौट आया। इस बीच इंगलैंड की सरकार ने भी ईरान के शाह के पास अपना दूत भेजा। शाह ने इस दूत को फ्रांसीसियो की सहायता न देने का वचन देकर इंगलैंड से संधि कर ली।

इसी उद्देश्य से मिंटो ने अफगानिस्तान के शाह शुजा के पास एलफिंस्टन को भेजा। वह पेशावर में शुजा से मिला। शुजा ने अंग्रेजो से रुपये की मदद मिलने के वादे पर फ्रांसीसियो और ईरानियो को भारत में घुसने के लिए मार्ग न देने का वचन दे दिया।

मिंटो का दूत सिंध के अमीरो के पास भी पहुँचा। अंग्रेजी सरकार ने सिंधी अमीरो की सुरक्षा का वचन देकर फ्रांसीसियों और ईरानियो के विरुद्ध उनसे संधि कर ली। अमीरो ने अब से अंग्रेजी रेजीडेंट भी अपने यहाँ रखना स्वीकार किया।

जगह तब सर जार्ज बार्लो स्थानापन्न गवरनर-जनरल हुआ। उसने भी कार्नवालिस की निर्धारित की हुई नीति से काम लिया। दौलतराव सिंधिया को ग्वालियर और गोहद लौटा कर तथा जयपुर पर उसका आधिपत्य स्वीकार कर उससे संधि कर ली गयी। इस पर सिंधिया ने होल्कर का साथ छोड़ दिया।

होल्कर फिर अकेला पड़ गया। तब वह सिखों की मदद लेने की इच्छा से पंजाब जाकर अमृतसर में रणजीतसिंह से मिला। उसके पीछे-पीछे सेनापति लेक भी पंजाब में घुस गया। सिख राजा रणजीतसिंह ने अंग्रेजों से भिड़ने में अपना अहित समझा और चुपके से लेक से संधि कर ली। होल्कर की आशा पर इससे पानी फिर गया और उसने भी अब अंग्रेजों से सुलह कर ली और इन्दौर वापस चला गया (१८०६ ई०)। होल्कर शक्तिशाली व्यक्ति था। इसलिए अंग्रेजों ने उससे जो संधि की वह उसके अनुकूल थी। संधि की शर्तों के अनुसार अंग्रेजों ने दक्षिण में उसका जितना राज्य ले लिया था, वह वापस कर दिया। उसे 'सहायक प्रथा' भी स्वीकार न करनी पड़ी और अपने राज्य में उसे पूरी स्वतन्त्रता दे दी गयी। दुर्भाग्य से यह बलशाली योद्धा इसके बाद अधिक दिन जीवित न रहा और सन् १८११ में असमय में ही वह परलोक सिधार गया।

वेलौर का विद्रोह—सन् १८०६ में मद्रास प्रान्त के वेलौर नामक स्थान में भारतीय सिपाहियों ने विद्रोह किया। मद्रास में तब विलियम बेंटिक गवरनर था। उसके निर्देश से सिपाहियों को यह आज्ञा दी गई कि वे माथे पर तिलक आदि धार्मिक चिन्ह न लगावें। इस तरह की धर्म-विरोधी आज्ञा से उत्तेजित होकर सिपाहियों ने किले पर कब्जा करके कुछ अंग्रेजों को मार डाला। लेकिन यह विद्रोह जल्दी ही दबा दिया गया। टीपू के बेटे वेलौर में ही नजरबन्द रखे गये थे। अतः उनपर यह सन्देह किया गया कि वे इस विद्रोह में शामिल थे। इसलिए उन्हें अब कलकत्ते भेज दिया गया। और

विलियम बेंटिंक को भी गवरनर के पद से हटाकर इंगलैंड वापस बुला लिया गया।

सन् १८०७ में जार्ज बार्लो मद्रास का गवरनर बना दिया गया और उसकी जगह लार्ड मिंटो गवरनर-जनरल नियुक्त हुआ।

मिंटो और उत्तर-पश्चिमी संधियां—मिंटो १८०७ से १८१३ तक गवरनर-जनरल के पद पर रहा। उसने अंग्रेजी शासन को दृढ़ किया और सीमान्तों की सुरक्षा पर ध्यान दिया। नेपोलियन अब फ्रांस का सम्राट बन गया था और भारत पर उसके आक्रमण का भय अभी भी बना हुआ था। अतः उसने फ्रांस के भय से भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा को सुरक्षित रखने के लिए ईरान, अफगानिस्तान, सिंध और पंजाब के राज्यों से मित्रता जोड़ने के लिए दूत भेजे।

मिंटो ने ईरान के शाह से संधि करने के लिए दो बार मालकम को भेजा, लेकिन वह विफल होकर लौट आया। इस बीच इंगलैंड की सरकार ने भी ईरान के शाह के पास अपना दूत भेजा। शाह ने इस दूत का फ्रांसीसियों को सहायता न देने का वचन देकर इंगलैंड से संधि कर ली।

इसी उद्देश्य से मिंटो ने अफगानिस्तान के शाह शुजा के पास एलफिंस्टन को भेजा। वह पेशावर में शुजा से मिला। शुजा ने अंग्रेजों से रुपये की मदद मिलने के वादे पर फ्रांसीसियों और ईरानियों को भारत में घुसने के लिए मार्ग न देने का वचन दे दिया।

मिंटो का दूत सिंध के अमीरों के पास भी पहुँचा। अंग्रेजी सरकार ने सिंधी अमीरों की सुरक्षा का वचन देकर फ्रांसीसियों और ईरानियों के विरुद्ध उनसे संधि कर ली। अमीरों ने अब से अंग्रेजी रेजीडेंट भी अपने यहां रखना स्वीकार किया।

रणजीतसिह के साथ सधि—इन सधियो में सब से मुख्य सधि वह थी जो मिंटो ने रणजीतसिह के साथ की थी। सिख सरदारो में रणजीत सिंह सबसे प्रबल था। उसका जन्म सन् १७८० में हुआ था। वह बडा बहादुर और नीतिज्ञ था। सन् १७९९ में दुर्रानी शाह जमानशाह ने उसे लाहौर का राजा बना दिया था। तब से उसकी शक्ति बढती ही चली गयी। सन् १८०२ में उसने अमृतसर भी अधिकार में कर लिया। इस तरह वह एक शक्तिशाली राजा बन गया और पुराने सिख मिसलों की शक्ति अब प्राय नष्ट हो गई। उसने अपनेको

रणजीतसिह

मजबूत पाकर सतलज और जमुना के बीच सरहिन्द की ओर भी बढना शुरू कर दिया। यह प्रदेश पहले सिंधिया के अधीन था और अब अंग्रेजी सरकार उसे अपने अधीन समझती थी। अत अंग्रेजो ने उसे इस प्रदेश की ओर बढने से मना किया और उसे रोकने के लिए अंग्रेजी फौज भी लुधियाना भेज दी। तब रणजीतसिंह ने विवश होकर अमृतसर में अंग्रेजो से सधि कर ली और सरहिन्द के जीते इलाके लौटा कर भविष्य में सतलज पार कर उसके दक्षिण के प्रदेशो पर आक्रमण न करने का वचन दिया (१८०९ ई०)। इस प्रकार सतलज नदी सिख और अंग्रेजी राज्यो की सीमा निर्धारित कर दी गई। इस समय से रणजीतसिंह ने जीवन-पर्यंन्त अंग्रेजो से मित्रता का ही व्यवहार रखा।

भारतीय समुद्र पर अधिकार—स्थल मार्गों की रक्षा के साथ-साथ मिंटो ने समुद्री मार्ग को भी विदेशी आक्रमणो के लिए रोक दिया। उसने सन् १८१० फ्रांसीसियो से मारिशस और बूर्बन टापू छीन लिये। सन् १८११ में मिंटो ने स्वयं चढाई करके डच लोगों से मलक्का तथा जावा टापुओ पर विजय प्राप्त की। इस प्रकार भारतीय समुद्र

के ऊपर भी अंग्रेजो का अधिकार हो गया। बाद में मारिशस के अलावा शेष टापू फ्रांस और हालैंड को वापस कर दिये गये।

लार्ड हेस्टिंग्ज और नेपाल से युद्ध—सन् १८१३ में लार्ड मिंटो की जगह लार्ड हेस्टिंग्ज गवर्नर-जनरल नियुक्त हुआ। उसने वार्लो और मिंटो की हस्तक्षेप न करने की नीति को त्याग दिया और लार्ड वैलेजली की तरह भारत में अंग्रेजी राज्य को बढ़ाने और सगठित करने की नीति अपनायी। अत यहाँ आते ही उसने अंग्रेज-विरोधी देशी शक्तियों से युद्ध छेड दिया। उस का सबसे पहला युद्ध नेपाल के साथ हुआ।

नेपाल के गोरखा मेवाड के राजवंश से सबधित हैं। ये लोग मेवाड से आकर बहुत पहले कुमाऊँ के पूरब पॉलपा और गोरखा के इलाका में बस गये थे। १८वी शती के उत्तरार्द्ध में गोरखा के ठाकुर पृथ्वी-नारायण ने नेपाल के नेवार शासकों को हराकर वहाँ अपना अधिकार कर लिया। तब से पृथ्वीनारायण के वशज वहाँ राज्य करने लगे और गोरखा से आने के कारण गोरखा नाम से प्रसिद्ध हुए।

गोरखो ने धीरे-धीरे अपना राज्य भूटान से लेकर सतलज तक विस्तृत कर लिया। सन् १८०१ में जब अवध के गोरखपुर जिले पर कम्पनी का अधिकार हुआ तो अंग्रेजी राज्य की उत्तरी सीमाएँ नेपाल की तराई (दक्षिणी सीमान्त) तक पहुँच गईं। तब से इस सीमान्त पर कुछ गाँवो को लेकर नेपाल और अंग्रेजो मे बराबर झगडा होने लगा। सन् १८१४ में गोरखो ने अंग्रेजी राज्य में बढकर कुछ सीमान्त के गाँव अपने अधिकार में कर लिये। हेस्टिंग्स ने इस पर तब नेपाल से युद्ध छेड दिया।

हेस्टिंग्स ने मुख्यत तीन तरफ से गोरखा राज्य पर चढाई करने के लिए सेनाएँ भेजी। मेरठ से जनरल जिलेस्पी सेना लेकर देहरादून पहुँचा। उसने गोरखा सेनापति बलभद्रसिंह से नाला-पानी का दुर्ग लेने की कोशिश की। वीर बलभद्र ने मुट्ठी भर साथियो को लेकर जिलेस्पी का डटकर सामना किया और उसे मार गिराया। तब अंग्रेजो ने नई कुमुक भेजी। बडी कठिनाई

मे अंग्रेज इस दुर्ग पर कब्जा कर सके। बिहार मे जो अंग्रेजी सेना नेपाल पर चढाई करने को आई उसे भी गोरखा से परास्त होना पडा।

परन्तु सन् १८१५ में जनरल ऑक्टरलोनी ने कुमायू में घुसकर गोरखा सेनापति अमरसिंह को हरा कर मलवन का दुर्ग छीन लिया। इसी समय अंग्रेजो ने अल्मोड पर भी अधिकार कर लिया। इस पर गोरखा और अंग्रेजो के बीच सगौली (मुजफ्फरपुर और रक्सौल के बीच) में सधि की बातें होने लगी। पर नेपाल सरकार का रुख सधि के विरुद्ध पाकर सन् १८१६ में ऑक्टरलोनी फिर काठमाडू की ओर बढा और मकवनपुर में गोरखा को हराकर उसने नेपाल सरकार को सगौली की सधि करने पर विवश किया।

सधि के अनुसार नेपाल सरकार ने गढवाल, कुमायू और तराई का बहुत-सा भाग छोड दिया, और अपने यहा अंग्रजी रेजीडेंट रखना भी स्वीकार किया (१८१६ ई०)।

(२)

पेशवा का स्वतंत्र होने के लिए प्रयत्न, पिंडारियों का दमन और तीसरा मराठा युद्ध—पेशवा बाजीराव द्वितीय ने अंग्रेजों से बेसीन की सन्धि करके अपनी और महाराष्ट्र की स्वतत्रता को बेच दिया था। इस सधि ने उसकी शक्ति और अधिकार बहुत कम और सीमित कर दिये थे और अंग्रेजी रेजीडेण्ट एल्फिंसटन अब उस के प्रत्येक कार्यों पर कडी निगाह रखता था।

बाजीराव को इस तरह जकडा जाना बहुत खलने लगा। उसका मन अंग्रेजो के प्रति द्वेष से भर गया। सन् १८१५ में बडौदा के गायकवाड के प्रश्न को लेकर उसमें और अंग्रेजों में झगडा बहुत बढ चला। गायकवाड ने सन् १८०२ में ही अंग्रेजो से सधि करके उनका आश्रय ग्रहण कर लिया था। लेकिन बाजीराव फिर भी गायकवाड को अपने अधीन मानता था। अत उसने गायकवाड से कई वर्षों से रुका हुआ सालाना कर तलब किया इसका हिसाब

न्तय करने के लिए बडौदा से गगाधर शास्त्री पूना भेजा गया, लेकिन वह वहाँ पेशवा के एक मत्री त्र्यम्बकजी डिंगले के षडयत्र द्वारा मार डाला गया (१८१५ ई०)। इस पर अग्रेजी रेजीडेण्ट एल्फिन्सटन ने बडौदा का पक्ष लेकर पेशवा से त्र्यम्बकजी का आत्मसमर्पण मागा। बहुत दबाव पडने पर पेशवा ने उसे अग्रेजो को सौंप दिया। पर कुछ दिन बाद त्र्यम्बकजी अग्रेजो की कैद से भाग निकला और उनके विरुद्ध विद्रोह करने लगा। पेशवा-भी चुपके-चुपके उसे मदद पहुचाता रहा। एल्फिन्सटन ने तब युद्ध की धमकी देकर पेशवा को एक नयी सधि करने पर विवश किया। नयी सधि के अनुसार पेशवा का मराठा राजाओ पर कोई अधिकार न रहा और महराष्ट्र के बाहर के सब इलाके उसे अग्रेजो को दे देने पडे (१८१७ ई०)। इन अपमानजनक कठोर शर्तों से पेशवा मन ही मन जल-भुन उठा और अग्रेजो के चगुल से छूटने के लिए प्रयत्न करने लगा। उसने भोसला, होल्कर और सिंधिया आदि मराठा सरदारो को उभाडा और उन्हे अग्रेजो का बढाव रोकने के हेतु पिंडारियो के विद्रोह में मदद देने की सलाह दी। भोसला और होल्कर तो इसके लिए राजी हो गये, पर सिंधिया अग्रेजो के चगुल में जकडा होने से अन्य मराठा सरदारो का साथ न दे सका।

ब्रिटिश सरकार ने विद्रोह की यह तैयारी देखकर पिंडारियों को दबाने के बहाने पेशवा समेत सभी विरोधी मराठा राजाओ व सरदारो को दबा देने का निश्चय किया। अत पिंडारी और तीसरा मराठा युद्ध दोनो एक ही चीज थे और दोनो का एक ही उद्देश्य था—मराठा शक्ति का विनाश।

पिंडारी मूलत. पठान घुडसवारो का एक दल था। लडना-भिडना ही इनका पेशा था। शिवाजी के समय से ही ये मराठा-सेनाओ में नौकरी करने लगे थे। लेकिन इन्हें वेतन नही दिया जाता था। युद्ध छिडने पर इन्हें शत्रु देश में घुसकर लूटने-पाटने

की स्वीकृति दे दी जाती थी। सिंधिया और होल्कर की सेना में ये विशेष रूप से थे जिस कारण वे 'सिन्देशाही, व 'होलकरशाही' के नाम से प्रसिद्ध थे। सिंधिया और होल्कर ने इन्हें जागीरें दे रखी थी। मालवा इनका मुख्य केन्द्र था, जहाँ शांति-काल में वे खेती-बारी करके जीवन-निर्वाह करते थे। देशी राजाओं ने जब वेल्जली के समय में अंग्रेजों से सहायक-सन्धि की तो वे मराठा सेनाओं तथा निजाम की सेना से छुड़ा दिये गये। टीपू का विनाश होने पर उसकी सेना के बहुत से बेकाम सिपाही भी उनसे मिल गये। मुसलमानों के अलावा बहुत से हिन्दू सैनिक भी बेकार होने पर उनमें शामिल हो गये जिससे इनका दल बहुत बढ गया और उनकी सख्या लगभग २३ हजार तक पहुच गयी।

हेस्टिंग्स के समय में करीमखाँ, वासिल मुहम्मद और चीतू इनके मुख्य नेता थे। इन दिनों मालवा, राजपूताना और दक्षिण में इन्होंने तहल्का मचा रखा था। सन् १८१६ में उत्तरी सरकार पर आक्रमण कर वे मद्रास तक बढ गये थे। अत सन् १८१७ में हेस्टिंग्स ने १ लाख २० हजार सेना एकत्रित की और पिंडारियों को चारों ओर से घेर लिया। अंग्रेजों की इस विशाल सेना के सामने पिंडारी टिक न सके। वासिल मुहम्मद हारा और निराश होकर उसने आत्महत्या कर ली। करीम खाँ ने आत्मसमर्पण कर दिया और अंग्रेजों ने उसे गोरखपुर में एक जागीर दे दी। चीतू हारने पर असीरगढ़ के जगल में भाग गया, जहाँ एक चीते ने उसे चट कर दिया (१८१८ ई०)। इस तरह पिंडारियों का अन्त हो गया। उनके बाद अब मराठों की बारी आई।

तीसरा मराठा युद्ध—पेशवाओं का अन्त—१८१७ की नयी सन्धि से पेशवा के सारे अधिकार छीनकर अंग्रेजों ने उसे पगु बना दिया था। इस अपमानजनक स्थिति को पेशवा बाजीराव *द्वितीय सहन न कर सका और उसने भोंसला तथा होल्कर* को उभाड कर अंग्रेजों का विरोध करना निश्चित किया।

उसने अंग्रेजो से लडने के लिए अपने सेनापति बापू गोखले को भी १ करोड रुपया देकर एक जबरदस्त सेना तैयार करने का आदेश दिया।

हेस्टिंग्ज भी मराठो की चेष्टाओ पर बडी निगाह लगाये था। अत उसने पहले सन् १८१७ में नागपुर के विद्रोही राजा मुधोजी अप्पासाहेब भोसला को गद्दी से हटाकर उसकी जगह एक दस वय के बालक रघुजी बापूसाहेब को नागपुर की गद्दी पर बिठाया, परिणामत वहा का शासन अब अग्रेजी रेजीडण्ट के निरीक्षण में होने लगा और नागपुर में स्थित अग्रेजी

बापू गोखले

सहायक सेनाके खर्चे के लिए नागपुर का सागर जिला अग्रेजी राज्य में मिला लिया गया (१८१८ ई०)।

यशवन्तराव का उत्तराधिकारी मल्हारराव होलकर अग्रेजो से सहायक-सन्धि न करना चाहता था। पर मल्हारराव के पिडारी के दल नेता अमीरखा ने विश्वासघात किया और अपने मालिक के विरुद्ध वह अग्रेजो से जा मिला। अग्रजो ने खुश होकर अमीरखाँ को टाक (होल्कर के राज्य का ही एक भाग) का नवाब बना दिया। दिसम्बर १८१७ में अग्रजो ने महीदपुर में होल्कर को चारो ओर से घेर लिया, जिससे विवश होकर होल्कर ने जनवरी सन् १८१८ म अग्रेजो से सहायक-सन्धि कर ली और अपने यहाँ अग्रेज रेजीडेण्ट रखना भी स्वीकार किया। इस तरह होल्कर राज्य अब अग्रेजो के अधीन हो गया।

सन् १८१७ में पेशवा और अग्रेजो में भी युद्ध शुरू हो गया। पेशवा की सेना ने पूना की रेजीडेन्सी जलाकर खडकी (किरकी-पूना के ही निकट) की अग्रेजी छावनी पर धावा बोल दिया। पर

मराठों का यह आक्रमण सफल न हुआ और बापू गोखले को हरा-कर अंग्रेजों ने पूना पर फिर कब्जा कर लिया। बाजीराव पेशवा तब सेना सहित भाग निकला। बापू गोखले ने अंग्रेजों से युद्ध बराबर जारी रखा। अन्त में वह आष्टी में अंग्रेजी सेना से युद्ध करता हुआ मारा गया (१८१८ ई०)। कायर बाजीराव में युद्ध जारी रखने की हिम्मत न हुई और निराश होकर उसने अपने को अंग्रेजी सेनापति माल्कम के हवाले कर दिया।

अंग्रेजों ने अब बाजीराव को पेशवा के पद से हटा दिया और ८ लाख रुपया पेंशन देकर उसे बिठूर (कानपुर के पास) भेज दिया। पेशवा के राज्य का कुछ भाग सतारा के राजा प्रतापसिंह को दिया गया और बाकी अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया। इस प्रकार पेशवाओं का नाम और राज्य मिटाकर पेशवा बाजीराव बिठूर चला आया जहाँ वह भोग-विलास में रत रह कर बहुत दिनों तक जीवित रहा।

लार्ड एमहर्स्ट और पहला बरमा-युद्ध—सन् १८२३ में लार्ड हेस्टिंग्ज वापस चला गया और उसकी जगह लार्ड एमहर्स्ट गवरनर जनरल बनकर भारत आया। लार्ड एमहर्स्ट सन् १८२८ तक यहां रहा। उसके समय में बरमा से पहला युद्ध हुआ।

अट्ठारहवीं शती के मध्य में ओलम्प्रा नामक एक सरदार ने स्वतन्त्र बरमी राज्य स्थापित किया। उसके उत्तराधिकारियों ने धीरे धीरे पीगू, तिनासरीम (स्याम राज्य का प्रान्त), अराकान और मनीपुर पर भी अधिकार कर लिया। बरमियों के इस प्रसार से अंग्रेजों के कान खड़े हो गये। सन् १८२२ में बरमी राजा ने आसाम पर भी अधिकार कर लिया। उधर अराकान से कुछ विद्रोही भाग कर चटगाव के अंग्रेजी इलाके में आकर बस गये। ये लोग अराकान पर छापा मारकर बरमियों को तंग किया करते थे। बरमी सरकार ने इन विद्रोहियों को शरण न देने को कहा, लेकिन अंग्रेजों ने इस पर कोई ध्यान न दिया। बरमी तब चटगाव और

ढाका पर भी अपना अधिकार जतलाने लगे और सन् १८२३-२४ में उन्होंने कछार राज्य की ओर भी बढ़ना शुरू कर दिया। इस पर अंग्रेजो ने बरमा से युद्ध छेड़ दिया।

बरमियो को रोकने के लिए अंग्रेजी सेना कछार और आसाम में घुस गई। पर इस सेना को बरमियो से हार कर पीछे हटना पड़ा। इसी समय बरमा के राजा ने अपने सेनापति महाबन्धुल को भी बंगाल पर आक्रमण करने भेजा। उस ने चटगांव में घुसकर अंग्रेजी सेना को पछाड़ दिया। इस हार से कलकत्ते में तहलका मच उठा। किन्तु इस बीच एक अंग्रेजी सेना समुद्र के मार्ग से बरमा में जा घुसी और उसने रंगून ले लिया। इस पर बरमी सरकार ने महाबन्धुल को वापस बुला लिया। इस तरह एकाएक उसके लौट जाने से अंग्रेजो के हृदय से बरमियो का आतंक शांत हो गया।

रंगून लेने के बाद अंग्रेजो ने अराकान और तिनासरीम प्रान्त पर भी अधिकार कर लिया। महाबन्धुल ने लौटने पर रंगून के निकट अंग्रेजो से जबरदस्त मोर्चा लिया। लेकिन अचानक गोली लगने से वह मर गया (१८२५ ई०)। महाबन्धुल के मारे जाने से अंग्रेजो की बन आई और उनकी एक सेना ने प्रोम पर भी अधिकार कर लिया। तब बरमा के राजा ने घबड़ा कर यन्दबू नामक स्थान में अंग्रेजी सरकार से संधि कर ली। बरमी राजा ने आसाम-अराकान और तिनासरीम के प्रान्त तथा कछार, मनीपुर व पैयन्तिया के राज्य अंग्रेजो को सौंप दिये। बरमा-सरकार ने अब से अपने यहाँ अंग्रेजी रेजीडेंट रखना भी स्वीकार किया (१८२६ ई०)।

रणजीतसिंह का सेना-संगठन—हम पहले बतला चुके हैं कि महाराज रणजीतसिंह के उदय से पुरानी सिख मिसलें प्रायः समाप्त हो गई थी और उसके नेतृत्व में सिखो का पंजाब में एक संगठित राज्य स्थापित हो गया था। रणजीतसिंह अपने को सिखो का अधिनायक मानता था और प्रत्येक कार्य 'खाल्सा' अथवा सिख जनता के नाम पर ही करता था। उसके शासन में प्रजा सुखी और सन्तुष्ट थी।

महाराज रणजीतसिंह ने राज्य की सुरक्षा के लिए सेना के सगठन पर बहुत ध्यान दिया। अग्रजा की उस बढ़ती के जमाने में बिना सैनिक शक्ति के स्वतन्त्रतापूर्वक टिके रहना सरल भी न था । अत अग्रेजा से सधि होने के समय (१८०९) से ही वह सेना को नये यूरोपियन ढग से सगठित करने और राज्य का बल बढाने में लग गया। उसने यूरोपियन ढगपर बदुकचियो की सेना खडी की और गोरखो को भी अपने यहाँ सेना में नौकर रखा। सेना को कवायद आदि सिखाने के लिए उसने यूरोपियन अफसरो को भी अपनी सेवा में लिया । यूरोपियना म उसका सबसे प्रसिद्ध सेनापति फासीसी वेंतुरा था जो १८२२ में लाहौर आया था। पैदल सेना में 'अकाली' सिखो की सख्या सबसे अधिक थी। ये लोग लडने-मरने के लिए सदा तत्पर रहते थे।

दीवान मोहकमचन्द रणजीतसिंह का प्रधान सेनापति था। तोपखाना का अध्यक्ष इलाहीबख्श था। रणजीतसिंह ने इस शक्तिशाली सेना के बल पर अपने राज्य को आगे बढ़ाया। सन् १८१८ में उसने मुलतान पर अधिकार किया और दूसरे वर्ष कश्मीर को भी ले लिया। सन् १८२० में उसने डेरेजात तथा सन् १८२३ में पेशावर पर भी अधिकार कर लिया । इस पर काबुल के अफगानो ने सिखो के विरुद्ध युद्ध छेड दिया । पर रणजीतसिंह की सेना ने नौसेरा के युद्ध में अफगानो को बुरी तरह से हराकर भगा दिया।

लार्ड विलियम बेंटिक के समयकी राजनैतिक घटनायें—सन् १८२८ में लार्ड एमहर्स्ट इस्तीफा देकर इगलैंड वापस चला गया और उसकी जगह लार्ड विलियम बेंटिक गवरनर-जनरल बनाया गया। इसने देशी राज्या को हडपने की कोशिश की।

सन् १८२७ में दौलतराव सिंधिया की मृत्यु हो गई थी। उसकी कोई सन्तान न थी, इसलिए उसकी पत्नी बायजाबाई ने बालक जनकोजी को गोद लेकर गद्दी पर बिठाया और सरक्षिका बनकर स्वय शासन करने लगी। बेंटिक ने इस स्थिति को देखकर

वहाँ के रेजिडेण्ट को लिखा कि राजा को पेंशन देकर अलग कर देना चाहिये। लेकिन रेजिडेण्ट ने ऐसा करने से इन्कार कर सिंधिया के राज्य को हड़प जाने से बचा लिया।

सन् १८३१ में बेंटिक ने मैसूर के राजा पर कुशासन का दोष मढ़कर उसे पेन्शन दे दी और वहाँ का शासन अपने अधिकार में कर लिया। तब से ५० वर्षों तक मैसूर-राज्य अंग्रेजों के ही हाथों में रहा। बेंटिक ने कुर्ग के राजा पर भी कुशासन का आरोप लगा-कर कुर्ग को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया।

अपनी राज-पिपासा को शान्त करने के लिए बेंटिक ने आसाम के कछार और जयन्तिया के राज्यों को भी जब्त कर लिया (१८३५ ई०)।

इस प्रकार कभी बल और कभी छल से अंग्रेज भारतीय राज्यों को समेटते हुए अपनी सीमाओं को बढ़ाते ही चले गये।

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) हैदराबाद और मैसूर को वेलेजली ने किस तरह से दबाया ?

(२) दूसरे मराठा-युद्ध के कारणों और परिणामों पर प्रकाश डालिए।

(३) होल्कर और अंग्रेजों में क्यों युद्ध हुआ ? युद्ध का संक्षेप में वर्णन करते हुए उसके परिणाम पर प्रकाश डालिए।

(४) मिंटो ने सीमाओं को सुरक्षित करने के लिए क्या प्रयत्न किया ? अमृतसर में रणजीत सिंह के साथ उसने क्यों और कब सन्धि की ?

(५) गोरखों से क्यों युद्ध हुआ और किस तरह युद्ध समाप्त हुआ ?

(६) पिंडारी कौन थे और उन्हें किस तरह दबाया गया ?

(७) तीसरे मराठा-युद्ध के क्या कारण थे और उसके क्या परिणाम हुए ?

(८) लार्ड विलियम बेंटिक के समय की राजनैतिक घटनाओं पर प्रकाश डालिए।

अध्याय—७

उत्तर-पश्चिम की ओर प्रसार

(१८३०-१८४६ ई०)

मध्य एशियामें रूसी और अंग्रेज अग्रदूत तथा बर्नसकी यात्रा– हम पहले वर्णन कर चुके हैं कि लार्ड मिंटो के समय में ईरान के मार्ग से भारत पर फ्रांस के आक्रमण का भय पैदा हो गया था। इसलिए उस समय फ्रांस के विरुद्ध मिंटो ने अपना राजदूत वहाँ भेजा था और इंगलैंड की सरकार ने ईरान से फ्रांस के विरुद्ध संधि कर ली थी। यह संधि बाद में समाप्त कर दी गई। नेपोलियन के पतन के बाद (सन् १८१५) फ्रांस का भय भी समाप्त हो गया था।

किन्तु फ्रांस के बाद अब रूस का भय पैदा हो चला। १९वी शती के प्रारम्भ में रूस ने ईरान की ओर बढ़ना शुरू किया और रूस तथा इंगलैंड के कुछ अग्रदूत मध्य एशिया में आने-जाने लगे। रूस का एक व्यापारी सन् १८१५ में मध्य एशिया से होकर लदाख और पंजाब में पहुँचा। इधर मूर-क्राफ्ट नामक एक अंग्रेज भी सन् १८१९ में भारत से यारकन्द और बुखारा की यात्रा करने गया। इस प्रकार रूसी और अंग्रेज मध्य एशिया में घुसने की होड़ करने लगे।

सन् १८३२ में प्रसिद्ध अंग्रेज यात्री बर्न्स दिल्ली से मध्य एशिया के लिए रवाना हुआ और बोखारा तक पहुँचा। एक साल बाद वहा से लौट कर वह इंगलैंड चला गया। सन् १८३५ में बर्न्स पुनः भारत वापस चला आया।

रूस के मध्य-एशिया में बढ़ने और ईरान से मेल-जोल स्थापित करने से अंग्रेज सशंकित हो उठे। उन्हें यह भय हुआ कि कहीं रूस ईरान से काबुल के रास्ते भारत पर आक्रमण न कर दे।

इस डर को दूर करने के लिए अंग्रेजों ने अब पंजाब, सिंध और अफगानिस्तान में अपनी शक्ति को दृढ़ कर लेने का निश्चय किया।

सिंधु नदी का जल-मार्ग—सिन्ध के अमीरों के साथ लार्ड मिंटो के समय में पहली संधि हुई थी। इस से अंग्रेजों को सिंध में घुसने का मौका मिल गया था; पर अभी तक उनको सिंधु नदी का विशेष ज्ञान न था। अतः सिन्धु नदी का जल-मार्ग प्राप्त करने के लिए एक नयी चाल चली गई। बैंटिक के समय इंगलैंड के राजा की तरफ से रणजीतसिंह के लिए बम्बई से गाड़ी और घोड़ों का उपहार सिंधु व रावी नदी के मार्ग से लाहौर भेजा गया (१८३१ ई०)। अमीर उनकी इस चाल को शायद समझ भी न पाये। पर सिन्धु की उपयोगिता मालूम करके ब्रिटिश सरकार ने अमीरों से अब यह संधि की कि वे अंग्रेजी जहाजों के लिए सिन्धु का मार्ग खुला रखेंगे। इसी तरह रणजीतसिंह पर दबाव डालकर सतलज का मार्ग भी अंग्रेजी जहाजों के लिए खुलवा दिया गया।

सिख राज्य को घेरना—महाराज रणजीतसिंह के नेतृत्व में सिख-राज्य दिनों-दिन बढ़ता ही चला जा रहा था। रणजीतसिंह के राज्य की सीमाएँ उत्तर-पश्चिम में पेशावर तक पहुँच गयी थी और सिंध की तरफ भी वह अपना प्रभाव बढ़ाने लगा था। सिखों के इस बढ़ाव को अंग्रेजी सरकार सहन न कर सकी। वह उत्तर-पश्चिमी सीमान्त की सुरक्षा के लिए सिन्धु के प्रदेश पर अपना अधिकार चाहती थी। इस प्रयोजन से ही अंग्रेज सिंध के अमीरों के साथ संबंध जोड़ रहे थे और इसी हेतु उन्होंने सिंधु का मार्ग भी प्राप्त किया था। रणजीतसिंह भी अंग्रेजों की इस चाल को समझ गया था। इसीलिए जब अंग्रेजों ने सिंधु का मार्ग अपने लिये खुलवाकर सिंध के अमीरों से व्यापारिक संधि की, तभी रणजीतसिंह ने साफ तौर से यह कह दिया था कि अमीरों के साथ यह नाता जोड़कर अंग्रेजों ने उसकी शक्ति के बढ़ाव को रोक दिया है।

शाहशुजा की अफ़ग़ानिस्तान पर चढ़ाई–सन् १८०९ में अफगानिस्तान में आन्तरिक विप्लव हुआ और वहाँ का शासक अहमदशाह दुर्रानी का पोता शाहशुजा काबुल से निकाल दिया गया। शाहशुजा तब रणजीतसिंह के पास आकर रहने लगा, फिर कुछ समय बाद अंग्रेजो की शरण में लुधियाना चला आया। इस बीच अफगानिस्तान में कई वर्षों तक आन्तरिक विप्लव चलता रहा अन्त में सन् १८२६ में बारकजई नेता दोस्त मुहम्मद काबुल में राज करने लगा।

अंग्रेजो को इस समय ईरान के रास्ते काबुल में रूसियो के बढ़ने का भय था, इसलिये वे दोस्त मुहम्मद की जगह अपने आश्रित शाहशुजा को वहाँ का शासक बना कर अफगानिस्तान में अपना कदम जमाने के लिए उत्सुक हो रहे थे। अत अपने मतलब से अंग्रेजी सरकार शाह-शुजा को काबुल पर चढ़ाई करने में मदद देने को तैयार हो गयी। अंग्रेजों का सहारा मिलने पर शाहशुजा ने रणजीतसिंह से भी मदद प्राप्त करने के लिए सधि की और पेशावर पर उस का अधिकार मान लिया (१८३३ ई०)। शाहशुजा ने सिक्ख महाराजा को प्रसिद्ध कोहेनूर हीरा भी भेंट किया। इस तरह अंग्रेजो और सिक्खो का सहयोग प्राप्त करने के बाद शाहशुजा सन् १८३३ में लुधियाना से अफगानिस्तान के लिये रवाना हो गया। मार्ग में शिकारपुर (सिंध) के अमीरो को रौंदता हुआ शाहशुजा कदहार तक जा पहुंचा, पर दोस्त मुहम्मद ने उसे हराकर भगा दिया। बेचारा शाहशुजा तब फिर लुधियाना वापस लौट आया (१८३५ ई०)।

सिंधके लिए स्पर्धा, लदाख की विजय–शाहशुजा के हार कर लुधियाना लौट आने पर हैदराबाद के अमीर ने अपनी रक्षा के वादे पर शिकारपुर रणजीतसिंह को सौंप देना चाहा। यह देखकर ब्रिटिश सरकार चौकन्नी हो उठी। अत रणजीतसिंह के आदेशपर खड़कसिंह और नौनिहाल सिंह जब विशाल सेना लेकर सिन्धु के पास आ डटे तो ब्रिटिश सरकार के दूत ने रणजीतसिंह को सूचित किया कि

उसका सिंध में घुसना अंग्रेजों के विरुद्ध समझा जायेगा। रणजीतसिंह को यह भी बतला दिया गया कि अब से अंग्रेज रेजीडेंट हैदराबाद में रहेगा और वही अमीरों के बाहरी मामलों को सचालित करेगा (१८३६ ई०)।

सिख सरदारों ने महाराज रणजीतसिंह को अंग्रेजों की बात न सुनने की सलाह दी, लेकिन महाराज ने सिर हिलाते हुए उनसे पूछा—'मराठों के दो लाख भाले कहाँ गये?' इस प्रश्न के द्वारा महाराज ने अपने सरदारों को यह जतला दिया कि अंग्रेजों की विशाल शक्ति से टक्कर लेना ठीक न होगा।

सिख-अफगान युद्ध—शाहशुजा ने सन् १८३३ में पेशावर पर रणजीतसिंह का अधिकार स्वीकार कर लिया था। परन्तु दोस्त मुहम्मद पेशावर पर काबुल का ही अधिकार मानता था। अतः शाहशुजा को कंदहार से भगाने के बाद उसने सिखों के विरुद्ध भी 'जेहाद' घोषित कर दिया और खैबर तक बढ़ आया। परंतु रणजीतसिंह के बढ़ते ही वह घबड़ाकर भाग खड़ा हुआ (१८३५ ई०)।

खैबर का दर्रा
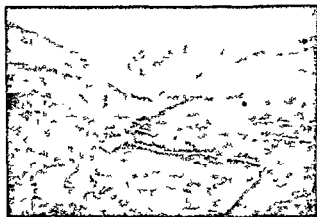
इसी समय सन् १८३५ में पेशावर के सिख सेनापति हरीसिंह नलवा ने खैबर की घाटी की रक्षा के लिये जमरूद में एक दुर्ग

बनवाया। दोस्त मुहम्मद ने सन् १८३७ में काबुल से जमरूद पर आक्रमण करने को सेना भेजी। इस युद्ध में सेनापति हरीसिंह नलवा मारा गया, पर लाहौर से सिख सेना ने आकर अफगानों को खदेड़ दिया।

इस बीच अंग्रेज वाणिज्य-दूत बर्न्स भी व्यापारिक संधि करने के बहाने काबुल पहुँच गया था। उसने अंग्रेजी सरकार को सुझाया कि अब वह समय आ गया है जब कि अफगानिस्तान के मामला में हमें दखल देना चाहिये। बर्न्स ने यह राय भी जाहिर की कि पेशावर पर वास्तव में काबुल के अमीर का ही हक होता है। बर्न्स के इस रुख से रणजीतसिंह को विश्वास हो गया कि अंग्रेज अब उसे सिन्ध की तरह अफगानिस्तान की ओर भी बढ़ने नहीं देंगे।

अंग्रेज वाणिज्य दूत बर्न्स का काबुल से लौटना और पहला अफगान युद्ध—लार्ड बेंटिंक के बाद कुछ दिन चार्ल्स मेटकाफ ने गवर्नर-जनरल के पद पर काम किया (१८३५) और नये गवर्नर-जनरल लार्ड ऑकलैंड के आने पर वह वापस चला गया (१८३६ ई०)।

कैप्टन बर्न्स को लार्ड ऑकलैंड ने ही वाणिज्य दूत बनाकर काबुल भेजा था। दोस्त मुहम्मद से संधि करके अंग्रेज अफगानिस्तान में अपना पैर जमाने की ताक में थे। पर दोस्त मुहम्मद अंग्रेजों के चाल में न आया। उसने कहा कि पहले रणजीतसिंह से उसे पेशावर दिला दो, तभी संधि हो सकेगी। बर्न्स की भी राय थी कि पेशावर के इलाके पर दोस्त मुहम्मद का ही अधिकार होना चाहिये। परन्तु ब्रिटिश सरकार ने पेशावर के मामले में हस्तक्षेप करना स्वीकार न किया। इस पर दोस्तमुहम्मद ने भी अंग्रेजों से मुँह मोड़ लिया। इन्हीं दिनों एक रूसी दूत भी काबुल पहुँचा, जिसका दोस्तमुहम्मद ने अच्छा स्वागत-सत्कार किया। अंग्रेजी सरकार ने दोस्त मुहम्मद के इस कार्य को शत्रुतापूर्ण प्रकट किया और रुष्ट होकर कैप्टन बर्न्स को काबुल से वापस बुला लिया (१८३८ ई०)।

लार्ड आॅकलेंड ने अब दोस्त मुहम्मद को हटाकर अपने आश्रय में रहने वाले शाहशुजा को काबुल के तख्त पर बिठाने का निश्चय किया। इसके लिए अब अफगानिस्तान पर चढ़ाई करने के लिए जोरो से तैयारी की जाने लगी। सिखो का सहयोग लेने के लिए सर विलियम मैकनाटन को रणजीतसिंह के पास भेजा गया। रणजीतसिंह जानता था कि काबुल में अंग्रेजो का पैर जमाना उसके लिए भी हितकर न होगा, क्योंकि इससे सिंध की तरह अफगानिस्तान की तरफ भी उसका बढ़ना रुक जायगा। यह सोच-समझकर रणजीतसिंह ने पहले तो अंग्रेजो का साथ देने में अनुत्साह दिखलाया, पर जब मैक-नाटन ने कहा कि वह साथ दे या न दे काबुल पर चढ़ाई होगी ही, तब अनिच्छापूर्वक वह साथ देने को तैयार हो गया। इसी तरह शाहशुजा को भी आक्रमण के लिये तैयार किया गया और युद्ध की घोषणा कर दी गयी।

१८३८ में अंग्रेजी फौज शाहशुजा को लेकर सिन्ध के मार्ग से काबुल के लिए रवाना हो गयी। इस अवसर पर सिन्ध के अमीरो से रुपया वसूल किया गया और आगे से सिन्ध में "सहा-यक" ब्रिटिश सेना रखने को भी उन्हें विवश किया गया। बोलन दर्रे को पार कर अंग्रेजी सेना ने कन्दहार और गजनी पर अधिकार कर लिया। दोस्त मुहम्मद तब काबुल छोड़कर भाग निकला और अंग्रेजी सेना ने शाहशुजा को काबुल की गद्दी पर थोप दिया (१८३९ ई०)। इस युद्ध में सिख सेना अंग्रेजो की विशेष मदद न कर सकी। इस बीच जब अंग्रेजों ने गजनी और काबुल पर अधिकार किया रणजीतसिंह की मृत्यु भी हो गयी।

अपने हाथ के कठपुतले शाहशुजा को काबुल की गद्दी पर बिठाकर अंग्रेजी अफसर मैकनाटन और बर्न्स वहाँ के शासन में हर तरह से दखल देने लगे। इस प्रकार से अंग्रेज अधिकारी काबुल के प्रभु ही बन बैठे। कुछ समय बाद दोस्त मुहम्मद ने भी अंग्रेजो को आत्मसमर्पण कर दिया। इस पर अंग्रेजो ने समझा कि उनके मार्ग

में अब कोई बाधा नहीं रह गयी है। इससे उत्साहित होकर वे अफगानी जनता पर अब खुलकर मनमानी करने लगे। अफगानों ने तब दोस्त मुहम्मद के लड़के अकबर खाँ के नेतृत्व में विद्रोह करके बर्न्स तथा मैकनाटन को मार डाला (१८४१ ई०)। अंत में अकबर खाँ ने अंग्रेजों को अपना सारा सामान, तोप, गोला-बारूद आदि छोड़-छाड़कर काबुल से भाग जाने को विवश किया। काबुल से भागकर लौटने वाली अंग्रेजी सेना में सैनिक, अफसर, बच्चे, स्त्रियाँ और नौकर-चाकर आदि सब मिलाकर करीब १६५०० व्यक्ति थे। वापसी में मार्ग के कष्टों और विद्रोही अफगानों के हमलों से यह सेना तबाह हो गयी, और उनमें से केवल डाक्टर ब्राइडन बचकर १३ जनवरी १८४२ को जलालाबाद पहुँचा। इस तरह काबुल से लौटने वाली अंग्रेजी सेना नष्ट हो गयी और उधर शाहशुजा भी विद्रोही अफगानों द्वारा मार डाला गया।

एलिनबरो—इस पराजय के कलंक को लेकर फरवरी १८४२ में ऑकलैंड भी वापस चला गया और उसकी जगह एलिनबरो गवर्नर-जनरल बना। एलिनबरो अफगान-युद्ध को समाप्त कर देना चाहता था। अतः उसने कन्दहार से अंग्रेज सेनापति नौट और जलालाबाद से पोलक को वापस लौट आने की आज्ञा दी। पर यह आज्ञा अंग्रेज सेनापतियों को बहुत खटकी। एलिनबरो ने तब उनको यह आदेश भेजा कि जैसा उचित समझो वैसा ही करो। अतः पोलक और नौट दोनों अब आगे बढ़े और १८४२ में उन्होंने काबुल पर फिर अधिकार करके जो अंग्रेज वहाँ कैद थे उन्हें छुड़ा लिया। अंग्रेजी सेना ने गजनी और काबुल के बाजार को लूट-पाट कर वहाँ की बहुत-सी इमारतों व बाजारों को उजाड़ व नष्ट कर दिया। इस प्रकार अंग्रेजों ने पिछली हार और अपमान का पूरा-पूरा बदला लिया। लेकिन अफगानिस्तान में रुकने का अंग्रेजों को साहस न हुआ, इसलिए उन्होंने अकबर खाँ से समझौता करके दोस्त मुहम्मद को रिहा कर देने का वचन दिया। रिहा होने पर दोस्त मुहम्मद फिर काबुल लौट आया

और वहाँ की गद्दी पर बैठ गया। इस समझौते और नाममात्र की विजय के बाद अंग्रेजी सेना जब अफगानिस्तान को खाली करके फीरोजपुर पहुँची तो एलिनबरो ने विशेष समारोह के साथ उसका स्वागत किया (१८४३ ई०)।

सोमनाथ का फाटक—कहते हैं कि महमूद गजनी सोमनाथ के मन्दिर में लगे चन्दन के किवाड़ गजनी ले गया था और वहाँ वे उसके मकबरे में लगा दिये गये थे। एलिनबरो ने अफगानिस्तान से लौटने वाली सेना को गजनी के मकबरे से वे किवाड़ भारत लाने की आज्ञा दी, पर जो किवाड़ भारत लाये गये वे सोमनाथ के न थे। लेकिन हिन्दू और मुसलमानों में परस्पर द्वेष-भाव जागृत करने के लिए इन किवाड़ों का खूब प्रदर्शन किया गया और फिर उन्हें आगरे के किले में सड़ने को डाल दिया गया।

नौनिहाल सिंह, सिख सेना शक्ति का उदय—महाराज रणजीतसिंह के मरने (१८३९ ई०) पर उसका निर्बल लड़का खड़कसिंह गद्दी पर बैठा और ध्यानसिंह उसका वजीर बना। खड़कसिंह की कमजोरी में जम्मू का राजा गुलाब सिंह स्वतन्त्र हो गया, शासन-व्यवस्था बिगड़ गई और पतन के चिह्न प्रकट होने लगे। पर इसी समय खड़कसिंह के तेजस्वी अट्ठारह वर्ष के कुमार नौनिहालसिंह ने पेशावर से लौट कर राज्य की बागडोर अपने हाथों में ले ली।

नौनिहालसिंह अंग्रेजों का सख्त विरोधी था और उन्हें पंजाब में घुसकर पैर न जमाने देना चाहता था। उसके इस रुख को समझ कर अंग्रेजों ने उस पर दोस्त मुहम्मद और नैपालियों को गुप्त रूप से अंग्रेजों के विरुद्ध मदद पहुंचाने का आरोप लगाया। लेकिन लाहौर के ब्रिटिश एजेन्ट ने ही जब इन आरोपों को सही न बतलाया तब अंग्रेजी सरकार चुप हो गयी और पंजाब को हड़पने के लिए उचित अवसर की प्रतीक्षा करने लगी। एलिनबरो का कहना था कि 'पंजाब मेरे पैरों तले है, पर अभी समय नहीं आया है।

नौनिहाल सिंह एक तेजस्वी और वीर युवक था। वह सिख राज्य के रुके हुए प्रसार को आगे बढाने का स्वप्न देख रहा था। उसकी महत्वाकांक्षा सिख राज्य की सीमाओ को सिन्ध, अफगानिस्तान और हिन्दूकुश तक पहुँचाने की थी। यदि वह जीवित रहता तो शायद उसका स्वप्न बहुत कुछ पूरा भी हो जाता, पर दुर्भाग्य से सन् १८४० में खडकसिंह और नौनिहाल सिंह दोनो की अचानक मृत्यु हो गयी।

उनकी मृत्यु से पजाब में बडी गडबडी फैल गयी। इस समय सिख दरबार में दो बड़े दल थे—एक सिन्धन-वालिया सरदारो का और दूसरा जम्मू के ध्यानसिंह, गुलाबसिंह और सुचेतसिंह का। खडकसिंह और नौनिहाल सिंह के बाद खडकसिंह की रानी चन्द्रकौर कुछ समय तक सिन्धन-वालिया सरदारो की मदद से राज्य करती रही। लेकिन अत में ध्यानसिंह आदि जम्मूवालो ने सेना की मदद से शेरसिंह को, जो रणजीत सिंह का दूसरा लडका माना जाता था, गद्दी पर बिठला दिया, और रानी चन्दकौर को अलग करके जागीर दे दी गयी (१८४१ ई०)।

शेरसिंह राजा तो बन गया पर वह सेना पर अपना अधिकार न रख सका। अत सेना ने राज्य की सारी शक्ति अपने हाथ में कर ली और मनमानी करने लगी। जिन अधिकारियो से सेना नाराज थी उन्हें उसने मार डाला, और बहुत से लोगो को लूटकर उनके घर जला दिये। कश्मीर में भी सेना ने विद्रोह किया, लेकिन गुलाबसिंह ने वहाँ जाकर शान्ति स्थापित की और कश्मीर पर अपना अधिकार स्थापित कर दिया।

सेना को काबू में लाने के लिए शेरसिंह अब अग्रेजों की मदद की इच्छा करने लगा, पर सेना की डर से उसे खुलकर हिम्मत न हो सकी। इस आपसी कलह को देखकर अग्रेज खुश थे, क्योंकि इससे सिखों की शक्ति आप ही आप टूटती जा रही थी। लेकिन जल्दी ही सेना शात हो गयी और उसने लूट-मार बन्द कर दी।

सिख सेना में देश भक्ति की उच्च भावना मौजूद थी। वह यह बात समझ गयी थी कि अंग्रेज पंजाब को दबाना चाहते हैं, इसलिए उनके प्रति वह बहुत और सशक सतर्क थी। वह अपने को सिख जनता या 'खालसा' का प्रतिनिधि और रक्षक मानती थी। उन्हें अपनी एकता और संगठन पर अभिमान था। किन्तु राज्य के साथ उसका संबंध अब बिलकुल बदल गया था और अपने को राज्य से स्वतंत्र मानकर वह शासन में दखल देने लगी थी। उनका राज्य से कैसा संबंध रहे यह उनकी पंचायत ही निर्धारित करती थी। पर साधारण मामलों में वे अपने अफसरों की आज्ञा मानते थे।

सिंध पर अधिकार—अफगान-युद्ध के कारण अंग्रेजों का बहुत धन खर्च हो गया था। अतः इस क्षति को पूरा करने के लिए लार्ड एलिनबरो ने सिंध पर दखल करने का निश्चय किया। सिन्ध में बिलोचियों का राज्य था जिनमें हैदराबाद, मीरपुर और खैरपुर के घराने मुख्य थे और वे अमीर कहलाते थे। इन अमीरों से १८०९ से ही अंग्रेजों ने छेड़-छाड़ शुरू कर दी थी। सन् १८३१ में अंग्रेजों ने अमीरों से एक सन्धि करके व्यापार के लिए सिन्धु का मार्ग भी खुलवा लिया था। पिछले अफगान युद्ध के समय समझौते के विरुद्ध सिन्धु के मार्ग से अफगानिस्तान को सेना भेजी गई और अमीरों से यवसर ले लिया गया। सिन्ध में अंग्रेजी रेजीडेण्ट और सेना भी रख दी गई जिसका खर्च अमीरों से वसूल किया गया।

अब लार्ड एलिनबरो ने सिन्ध को पूरी तरह कब्जा करने के विचार से नेपियर को अपना प्रतिनिधि बनाकर सिन्ध भेजा। नेपियर ने अमीरों पर दबाव डालकर उन्हें एक नयी सन्धि करने को विवश किया। इसके अनुसार अंग्रेजों ने सेना के खर्च के लिए अमीरों से कुछ इलाके ले लिये। अंग्रेजों की इस छीना-झपटी से बिलोची बिगड़ उठे और उन्होंने अंग्रेजी रेजीडेन्सी पर आक्रमण कर दिया। इस पर नेपियर ने अमीरों से युद्ध छेड़ दिया। मियानी और ... में अमीरों को बुरी तरह हरा दिया गया और कैद करके उन्हें

भेज दिया गया (१८४१ ई०)। अमीरों का महल और खजाना अंग्रेजों द्वारा बुरी तरह लूटा गया। अकेले ७० हजार पौंड नेपियर के हाथ लगे। सिन्ध अंग्रेजी राज्य में मिला दिया गया और नेपियर वहाँ का शासक नियुक्त हुआ।

ग्वालियर की स्वतन्त्रता का अन्त--सिंध के बाद एलिनबरो पंजाब को हड़पने का विचार रखता था। पर इससे पहले वह सतलज के दक्षिण सिंधिया की ४० हजार सुसज्जित और शक्तिशाली सेना को नष्ट कर देना चाहता था, ताकि पंजाब में घुसने पर अंग्रेजों को पीछे से कोई खतरा न रहने पावे।

इसके लिए उसे अवसर भी मिल गया। सन् १८४३ में जनकोजीराव सिंधिया की एकाएक मृत्यु हो गयी। तब एलिनबरो ग्वालियर के आन्तरिक शासन में दखल देने लगा। इसी पर झगड़ा ब चला और एलिनबरो ने अवसर पाकर ग्वालियर राज्य पर आक्रमण कर दिया। सिन्धिया की सेना ने एक ही दिन महाराजपुर और पनियार में अंग्रेजी सेना का मुकाबला किया, पर हार गयी (१८४३ ई०)।॰परिणामतः एलिनबरो ने अब ग्वालियर राज्य को पूरी तरह से अधीन बनाकर उसकी सेना को तोड़ दिया।

सतलज की लड़ाइयां--पंजाब की आतरिक दशा इस समय अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। निर्बल राजा शेरसिंह और उसका मंत्री ध्यानसिंह इस स्थिति को सम्हाल न सके, और सन् १८४३ में विरोधी दल के सरदारों द्वारा वे मार डाले गये। इसके बाद रणजीतसिंह का एक दूसरा बेटा दिलीपसिंह, जो ८ वर्ष का बालक था, गद्दी पर बि ाया गया, और उसकी माता जिन्दांकौर सरक्षिका बन कर राज्य का काम देखने लगी। परन्तु सिख सरदारों में मंत्री-पद तथा अन्य ऊंचे पदों के लिए झगड़े होते ही रहे। कहने को दिलीपसिंह राजा था, पर असल में सारी शक्ति सेना के हाथ में थी। राजा और उसके वजीरों का सिख-सेना पर कोई अधिकार न था। इन सब कारणों से पंजाब में बहुत अव्यवस्था फैल उठी। इस दशा का लाभ उठा

१७ लार्ड एलिनबरो व सिंध की तरह पंजाब को भी दबाने की तरकीबें सोचने लगा, पर सन् १८४४ में वह वापस चला गया, और उसकी जगह हेनरी हार्डिंज (बाद में लार्ड हार्डिंज) गवर्नर-जनरल नियुक्त किया गया। अतः पंजाब को दबाने का श्रेय एलिनबरो के बजाय हार्डिंज के हाथ लगा।

पंजाब को जीतने की इच्छा से अंग्रेज सतलज के किनारे अपने किलों को मजबूत करके अपनी सेना को बराबर बढ़ाते जा रहे थे। हार्डिंज के आने पर यह कार्य और तेजी के साथ होने लगा और फीरोजपुर में एक नई छावनी भी बना दी गयी। अंग्रेजों की इस तैयारी को देख कर सिखों को निश्चय हो गया कि अंग्रेज पंजाब पर आक्रमण करना चाहते हैं। सिख सेना अंग्रेजों के स ख से अत्यन्त उत्तेजित हो उठी और अंग्रेजों पर झपटने का निश्चय कर वह सतलज नदी पार करके नवम्बर १८४५ में फीरोजपुर के पास आ डटी। इस पर मौका पाकर हार्डिंज ने भी तब सिखों से युद्ध घोषित कर दिया।

इस समय तेजसिंह प्रधान सेनापति था और लालसिंह वजीर। ये दोनों नेता सिख सेना के डर से मनमानी न कर पाते थे। अतः अपनी स्वच्छंदता के लिए वे सेना की शक्ति को नष्ट हुआ देखना चाहते थे। इसीलिए अंग्रेजों से युद्ध छिड़ने पर लालसिंह और तेजसिंह ने सेना के साथ विश्वासघात किया और अपने देश के शत्रुओं से जा मिले। फलतः उनकी गद्दारी से मुदकी और फीरू-शहर (फीरोज शहर) में सिख सेना हार गयी। फीरूशहर के युद्ध में सिखों ने अंग्रेजों को बुरी तरह से दबा दिया था, पर तेजसिंह की गद्दारी से अंग्रेज तब पराजित होने से बच गये (दिसम्बर १८४५)।

अपने नेताओं के विश्वासघात के बावजूद सिख सेना के एक दल ने जनवरी १८४६ में लुधियाना के निकट सतलज को पार कर अंग्रेजों पर फिर आक्रमण किया। इस युद्ध में अंग्रेजों की बहुत बुरी हार हुई और उन्हें पीछे हटना पड़ा। इस विजय से सिख सेना

की हिम्मत बढ़ गयी और उसने जम्मू से गुलाबसिंह को वजीर बनने के लिए आमन्त्रित किया। सेना को आशा थी कि गुलाबसिंह उनका ठीक से नेतृत्व करेगा। पर यह भी गद्दार और विश्वासघाती निकला। परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजो ने सिख सेना को अलीवाल और सोवरॉव गाँव में फिर बुरी तरह से हरा दिया (१८४६ ई०)।

अंग्रेजी सेना अब सतलज पार करके पंजाब में घुसी। लाहौर पहुँचने पर गुलाबसिंह ने सिख दरबार और अंग्रेजो के बीच सुलह करा दी (९ मार्च १८४६ ई०)। पंजाब सरकार ने सतलज और व्यास के बीच की भूमि तथा डेढ़ करो रुपया अंग्रेजो को देना स्वीकार किया और सेना की सख्या घटा दी गयी। पंजाब सरकार दड का पूरा रुपया न चुका सकी, इसलिए कॉगडा, हजारा और कश्मीर के इलाके भी अंग्रेजो ने ले लिये। इनमें से कश्मीर का इलाका ७५ लाख रुपये में अंग्रेजो ने गुलाबसिंह को दे दिया और उसे जम्मू का स्वतन्त्र महाराज मान लिया गया।

लाहौर दरबार के कहने पर दिलीपसिंह के बालिग होने तक पंजाब में अंग्रेजी सेना रख दी गयी। महारानी जिन्दाँकौर को पेंशन देकर अलग कर दिया गया और शासन की देख-रेख के लिए एक अंग्रेजी रेंजीडेण्ट को दरबार का मुखिया बनाया गया।

इस प्रकार विश्वासघाती सिख नेताओ की ही मदद से अंग्रेजो ने सिखो की बढ़ती हुई शक्ति को कुचल कर ठिकाने लगा दिया। इस विजय के दो वर्ष बाद, जनवरी सन् १८४८ में हार्डिंज भी वापस चला गया।

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) मध्य एशिया में घुसने वाले रूसी और अंग्रेजी अग्रदूतों के नाम बतलाइये।

(२) अंग्रेजो ने रणजीत सिंह को सिंध की तरफ बढ़ने से कब और क्यो रोका?

(३) शाहशुजा को अंग्रेजों ने अफगानिस्तान पर चढ़ाई करने के लिए क्यों मदद दी ?

(४) ऑकलैंड के समय अफगानिस्तान से युद्ध छिड़ने के क्या कारण थे और उसका परिणाम क्या हुआ ?

(५) एलिनबरो ने अफगानिस्तान के मामले को किस तरह निपटाया ?

(६) सिख सेना की शक्ति बढ़ने के क्या कारण थे ?

(७) सिंघ को कब और कैसे हड़पा गया ?

(८) सतलज की लड़ाइयों के कारणों और परिणामों पर प्रकाश डालिए।

अध्याय–८

खंडहरों की सफाई

(१८४७–१८५६)

खंडहरों की सफाई–अंग्रेजों की बन्दूक और तोपों ने भारत के देशी राज्यों को छेद-छेद कर उन्हें छिन्न-भिन्न कर दिया था। लेकिन उनके खंडहर अभी भी बाकी थे। अंग्रेज अब उन खंडहरों को भी साफ करके मिटा देना चाहते थे ताकि ब्रिटिश-राज के बाग में अवरोधक की तरह कहीं कोई ऊंची-नीची भूमि बची न रहने पावे। अतः जब जनवरी सन्. १८४८ में लार्ड डलहौजी गवर्नर-जनरल बनाकर भारत भेजा गया तो उसने कहा था—"मैं हिन्दुस्तान की जमीन को समतल कर दूंगा।" इसीलिए डलहौजी ने यहाँ पहुँचते ही देशी राज्यों के रहे-सहे अवशेषों को मिटाना शुरू कर दिया और तेजी से एक के बाद दूसरे राज्यों को, कहीं छल और कहीं बल से हड़पता व हजम करता चला गया।

· **दूसरा सिख-युद्ध, सिख-राज्य का अन्त**–पिछले सिख-युद्ध में विजयी होने पर लार्ड हार्डिंज ने कहा था कि उसने "सिखों के दाँत तोड़ दिये हैं और अब बहुत समय तक भारत में फिर बन्दूक चलाने की आवश्यकता न होगी।" पर हार्डिंज का यह विश्वास गलत निकला और लार्ड डलहौजी के यहाँ पहुँचते ही सिखों से फिर भीषण युद्ध छिड़ गया।

लाहौर दरबार में पहले सर हेनरी लारेंस रेजिडेण्ट नियुक्त हुआ था। उसने सिखों के साथ अच्छा बर्ताव रखा, इसलिए उसके समय में सिखों से कोई झगड़ा न हुआ। पर हार्डिंज के साथ वह भी छुट्टी लेकर इंगलैंड चला गया और उसकी जगह करी रेजिडेन्ट बनाया गया। यह नया रेजीडेंट सिखों की परवाह न करके

अपने मनमाने ढंग से काम करने लगा। उसने बहुत से अंग्रेज अधिकारी यहां भर दिये। अंग्रेज अफसर सिखों के विरुद्ध पेशावर के मुसलमानों को भड़काने का भी यत्न करने लगे। रेजीडेंट और अंग्रेज अफसरों की इस दुर्नीति से सिखों में असंतोष बढ़ने लगा। वे समझ गये कि अंग्रेज उनके राज्य को मिटा कर पंजाब के समृद्ध प्रांत को निगल जाना चाहते हैं। लाहौर दरबार तब भी अपनी तरफ से रेजीडेंट को पूरा सहयोग देता रहा। पर महाराज दिलीपसिंह की माता रानी जिन्दां कौर अंग्रेजों की इन चालों से क्षुब्ध हो उठीं। रानी की ब्रिटिश-विरोधी भावना को बढ़ते देखकर अंग्रेजों ने रानी पर षड्यंत्र का अभियोग लगाकर उन्हें लाहौर से शेखपुरा के दुर्ग में कैद कर दिया। परन्तु रानी जिन्दां कौर दबने वाली स्त्री न थी। अंग्रजों के बन्धन में होने पर भी वह स्वतंत्रता की देवी अंग्रेजी दासता से कवे हुए सिखों को बराबर उत्साह और प्रेरणा देती रही।

अंग्रजों की जोर और जबरदस्ती की नीति से आखिर मुलतान में सिखों ने विद्रोह कर दिया। रणजीतसिंह के समय में, सावनमल मुलतान का निजाम दीवान था। उसके बाद उसका बेटा मूलराज दीवान बनाया गया। ये दोनों सिख राज्य के बहुत योग्य शासकों में से थे। पर अंग्रेजी रेजीडेंट मूलराज को मुलतान से हटा कर वहां अपने पसंद का दीवान रखना चाहता था। अतः मूलराज को तंग करने के लिये रेजीडेंट ने लाहौर दरबार की तरफ से उससे नजराने के नाम पर ब त सा रुपया और पिछला हिसाब मांगा। रेजीडेंट के इस व्यवहार से क्षुब्ध होकर मूलराज ने इस्तीफा दे देना चाहा। स पर रेजीडेंट ने दो अंग्रेज अफसरों के साथ दूसरे सिख सरदार को दीवान बनाकर मुलतान भेजा। रेजीडेंट की इस जबरदस्ती से मुलतान की हिंदू, मुस्लिम और सिख जनता तथा सेना के कुछ सिपाही बिगड़ उठे और उन्होंने दोनों अंग्रेज अफसरों को मार डाला (१८४९ ई०)। रानी जिन्दां कौर ने भी विद्रोहियों और मूलराज को फिरंगियों की ज्यादती सहन न करने को

उत्साहित किया। रेजीडेंट करी ने तब धृष्टतापूर्वक महारानी जिन्दां कौर को शेखपुरा व फुटार बनारस भेज दिया। रानी के इस निर्वासन से सिखों के हृदय अंग्रेजों के प्रति रोष से भर उठे। रेजीडेंट ने लाहौर दरबार पर दबाव डाल कर सरदार शेरसिंह को मूलराज को दबाने भेजा, पर वह भी सेना सहित विद्रोहियों से मिल गया। मुल्तान के बलवे की खबर पाकर डल्हौजी ने तब सिखों के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया।

सरदार शेरसिंह का पिता हरिपुर हजारा का हाकिम था। अंग्रेजों ने उसकी जागीर भी जब्त कर दी और हजारा की मुस्लिम जनता को उसके विरुद्ध उभाड़ दिया। शेरसिंह ने भी तब अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और मुल्तान से लाहौर की ओर बढ़ने लगा। इस अवसर पर काबुल के अमीर दोस्त मुहम्मद और उसके अफगानों ने भी सिखों का साथ दिया। उन्हीं मदद से शेरसिंह का पिता चतरसिंह भी अटक छीन कर लाहौर की ओर अग्रसर हुआ। शेरसिंह को रोकने के लिये लाहौर से सेनापति गफ आगे बढ़ा। चिलियाँवाला में शेरसिंह और गफ में भीषण युद्ध हुआ। इस युद्ध में शेरसिंह ने गफ को बुरी तरह से हरा दिया (१८४९ ई०)। किंतु गफ ने दुबारा गुजरात में सिखों का मुकाबला किया। इस युद्ध में सिखों की गहरी हार हुई और रावलपिंडी पहुँच कर सिख सेना और उनके नेता शेरसिंह, चतरसिंह आदि सरदारों ने आत्मसमर्पण कर दिया (१२ मार्च १८४९)। इस बीच मुल्तान में मूलराज ने भी परास्त होने पर आत्मसमर्पण कर दिया था। इन पराजयों से दुःखी होकर महारानी जिन्दां कौर भी बनारस से भाग कर नेपाल चली गई। परिणामतः लार्ड डल्हौजी ने अब एक सरकारी घोषणा द्वारा सिख राज्य को समाप्त कर पंजाब के प्रांत को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया और दिलीपसिंह को पेंशन देकर गद्दी से उतार दिया। इस तरह डल्हौजी ने रणजीतसिंह के राज्य का हमेशा के लिये अंत कर दिया। डल्हौजी ने खालसा सेना को तोड़ दिया और हथियार

और धार सिक्खों की स्वाधीन-वृत्ति और युद्ध-प्रियता को दबा दिया। पंजाब के शासन के लिये तीन अधिकारियों का एक बोर्ड (समिति) स्थापित किया गया और उसके निरीक्षण का काम गवर्नर-जनरल ने स्वयं अपने हाथ में रक्खा। १८५३ में 'बोर्ड' खतम कर दिया गया और पंजाब के शासन के लिये एक चीफ कमिश्नर रख दिया गया।

दक्षिणी बरमा का अपहरण—यन्दूबू की संधि से ब्रिटिश सरकार को अराकान और तिनासरीम के प्रांत मिल गये थे। इससे अंग्रेजों की भूख बढ़ गई और वे बरमा के दक्षिणी भाग अर्थात् पेगू प्रांत को भी हड़पने को ललचा उठे। अतः लार्ड डलहौजी बरमा सरकार से युद्ध छेड़ने का बहाना ढूंढ़ने लगा।

बरमा के दक्षिणी तट पर बहुत से अंग्रेज व्यापारी बस गये थे। ये व्यापारी बरमा सरकार के अत्याचारों की झूठी-सच्ची शिकायतें आदि भेजने लगे। वह घटना जिसके फल से बरमा के साथ अंत में युद्ध छिड़ा, इस प्रकार हुई—दो अंग्रेजी व्यापारी जहाजों के कप्तानों ने बरमा के समुद्र में तीन बंगाली मांझियों को मार डाला। इस पर रंगून के बरमी गवर्नर ने उन कप्तानों पर जुर्माना कर दिया। अंग्रेजी सरकार ने इस न्याय को अन्याय बतलाया और बरमा सरकार से दंड-स्वरूप रुपया वसूल करने के लिये डलहौजी ने तीन जंगी जहाज रंगून भेज दिये। बरमा का राजा अंग्रेजों की अनीति के बावजूद समझौता करने के लिये तैयार हो गया, किन्तु अंग्रेजी जहाजों के नायक ने रंगून के गवर्नर से झगड़ कर बरमा की सरकार का एक जहाज पकड़ लिया। इस पर झगड़ा बढ़ चला और डलहौजी ने बरमा के राजा से युद्ध छेड़ दिया। सन् १८५२ में अंग्रेजी सेनाएँ रंगून पहुँच गईं, और उसने बरमा में मर्तबान, प्रोम और पेगू पर अधिकार कर लिया (१८५२ ई०)। बरमा के राजा के पास अब केवल उत्तरी बरमा रह गया। इस विजय के फल स्वरूप बंगाल की खाड़ी के कुल तट पर अब अंग्रेजों का अधिकार हो गया।

हिन्दुस्तान
सन् १८५७ ई.
अंग्रेजी राज्य
हिन्दू राज्य
मुसलमान राज्य
काबुल
अफगानिस्तान
गजनी
श्रीनगर
मद्रास
पांडिचेरी
कारीकाल
त्रिन्कोमली
लंका
अवध
बिहार
मुलतान
कैलात
अण्डमन द्वीप
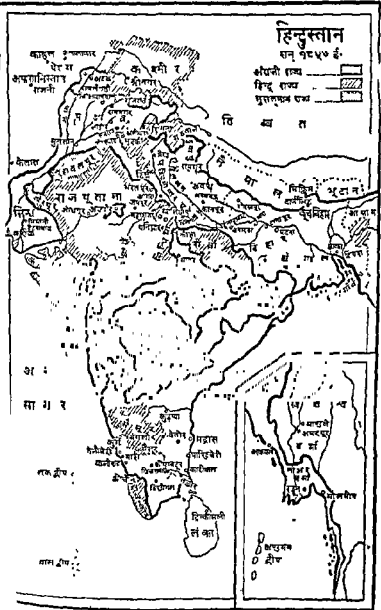
देशी राज्यों का अपहरण—*लार्ड ऑकलैंड के ही समय में ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने यह निश्चय कर लिया था कि अवसर मिलते ही देशी राज्यों को मिटा कर अंग्रेजी राज्य में मिला देना चाहिये।* लार्ड डलहौजी ने इस नीति का पूरी तरह से पालन किया, और भारत को "समथल" बनाने के लिये उसने कई एक छोटे हिन्दू राज्यो को वहाँ के राजाओं के नि.संतान मरने पर जब्त कर लिया। इसी तरह कुछ राज्यों को शासन ठीक न होने के बहाने भी हड़प लिया गया। लार्ड डलहौजी की यह नीति इतिहास में 'अपहरण की नीति' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें संदेह नही कि हिन्दू राजाओं को गोद न लेने देने की अंग्रेजी नीति सरासर अनीतिपूर्ण और हिन्दू शास्त्रो के विरुद्ध थी। सन्तान न होने पर हिन्दू राजा हमेशा से 'गोद' लेते आये थे और अंग्रेजो ने भी पहले कई बार इस नियम के अनुसार हिन्दू राजाओ को गोद लेने की स्वीकृति प्रदान की थी। लेकिन अब चूंकि वे छोटे-छोटे राज्यो को हड़पने पर तुल गये थे इसलिये गोद लेने की प्रथा को सुमीतानुसार मानने से इन्कार कर दिया गया।

सतारा, नागपुर, झाँसी, आदि—लार्ड डलहौजी की अपहरण या हड़प नीति का पहला शिकार सतारा (महाराष्ट्र में) राज्य हुआ। सन् १८४८ में वहाँ के राजा के निःसंतान मरने पर उसका राज्य अंग्रेजी राज्य में मिला दिया गया।

सन् १८५३ में नागपुर के राजा की मृत्यु हुई। उसको भी कोई संतान न थी, इसलिये उसका राज्य भी जब्त कर लिया गया।

इसी वर्ष झाँसी के राजा के मरने पर उसके दत्तक पुत्र और विधवा रानी लक्ष्मीबाई का न्यायसंगत अधिकार ठुकरा कर झाँसी को भी अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया। इसी तरह जैतपुर (बुन्देलखंड में), सम्भलपुर (उड़ीसा) आदि राज्यों को भी हड़प लिया गया। सन् १८५१ में बिठूर में पेशवा बाजीराव द्वितीय की मृत्यु होने पर उसके दत्तक पुत्र नाना साहब को भी डलहौजी ने पेशवा

वाली ८ लाख रुपया सालाना की पेंशन देने से इन्कार कर दिया। इसी तरह सन् १८५५ में तंजोर के राजा के मरने पर उसके वारिसों को भी पेंशन देना बंद कर दिया गया।

सन् १८५३ में डलहौजी ने कर्जे के बहाने निजाम से बरार का प्रांत, जो रुई की खेती के लिये प्रसिद्ध है, छीन लिया।

अवध का अपहरण—निजाम तो सस्ते में छूट गया, लेकिन अवध के राज्य को डलहौजी पूरी तरह से निगल गया। वाजिद अलीशाह इस समय अवध का नवाब था। उस पर डल्हौजी ने कुशासन और अव्यवस्था के दोष लगाये और इसी बहाने सन् १८५६ में उसे गद्दी से उतार कर, अवध को अंग्रेजी राज्य में मिला दिया। वाजिदअली को पेंशन देकर कलकत्ता भेज दिया गया।

लार्ड डलहौजी को मुगल बादशाह का अस्तित्व भी बहुत खटकने लगा था। इसलिये वह बहादुरशाह के उत्तराधिकारियों से सम्राट की उपाधि छीन लेना चाहता था, लेकिन संचालकों ने यह बात तब स्वीकार न की। पर कौन जानता था कि जल्दी ही सम्राट की उपाधि ही नहीं वरन् सम्राट का घराना ही अंग्रेजों के प्रहारों से हमेशा के लिये समाप्त हो जायगा। सन् १८५५ में कर्नाटक के नवाब की उपाधि छीन ली गई। इस तरह भारत के राजाओं और नवाबों के मुकुटों को गिराकर और उनके राज्यों को हड़प कर डलहौजी ने अंग्रेजी राज्य के विस्तार को पूरा कर दिखाया। सन् १८५६ में वह वापस चला गया और उसकी जगह लार्ड कैनिंग भारत का गवर्नर-जनरल नियुक्त हुआ।

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) डलहौजी के समय सिखों के साथ युद्ध होने के क्या कारण थे? युद्ध का परिणाम क्या हुआ?

(२) डलहौजी की अपहरण नीति को समझाइये।

(३) डलहौजी ने किन-किन राज्यों को हड़प लिया और किन बहानों पर?

अध्याय—६

स्वाधीनता का असफल संग्राम

स्वाधीनता-युद्ध की पृष्ठभूमि—सन् १८५७ का साल हमारे इतिहास में हमेशा स्मरणीय रहेगा। अंग्रेजो के अत्याचारों से पीड़ित और प्रताडित भारतीयो ने सन् १८५७ में ही पहले-पहल अंग्रेजी हुकूमत के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह किया था। इस विद्रोह में भारतीय सैनिको और देश के पदच्युत राजा, नवाबों तथा अधिकारियो के अलावा उत्तरी भारत की जनता के एक बहुत बड़े हिस्से ने भी भाग लिया था। जनता ने कही-कही खुल कर और कहीं परोक्ष रूप से विद्रोह में मदद पहुँचाई थी।

अंग्रेजी कम्पनी तथा कम्पनी के अंग्रेजी नौकरों के निजी व्यापार से भारतीय व्यापार नष्ट हो गया था। १९वी सदी में इगलेंड में औद्योगिक क्रान्ति होने से वहां के व्यापार ने आश्चर्यजनक उन्नति की और मशीन का बना हुआ सस्ता माल यहाँ आने लगा। इस सस्ते माल के सामने हाथ का बना देशी माल टिक न सका और भारतीय उद्योग-धन्धे चोपट हो गये। परिणाम यह हुआ कि यहाँ के बहुत से महाजन, सेठ-साहूकार, कलावन्त, शिल्पी और जुलाहे बेकार हो गये और उन्हें अपना पेट भरना तक कठिन हो चला। अत. ये सब लोग अंग्रेजी राज से असतुष्ट हो उठे और अंग्रेजो से घृणा करने लगे। शहरो में बेकारी से बचने के लिए ये लोग गाँवों की ओर बढ़े जिसका परिणाम यह था कि गांव की जनता पर भी बोझ ब गया। बहुत से देशी राज्यों के उखड़ जाने और बहुतो के अधीन हो जाने से उनकी सेनाएं भी तोड़ी अथवा घटा दी गई। इस कारण बहुत से बेकार हुए सैनिक भी गाँवो को लौट गये और वहाँ के किसानो पर बोझ बन बठे।

अतः अंग्रेजी राज के इन दुष्परिणामों से गाँवों की जनता भी अंग्रेजों से घृणा करने लगी। इस उलट-फेर के अलावा अंग्रेजों ने ग्राम-पंचायतों को भी तोड़ दिया था और उनकी जगह पेचीदा और खर्चीली अदालतें खड़ी कर दी थीं। ग्रामीण जनता को इन अदालतों से न्याय पाने में दिक्कत होने लगी और इस कारण भी वे अंग्रेजी राज से असंतुष्ट हो उठे।

कार्नवालिस के समय में यह नियम बन गया था कि राज्य में ऊँचे-ऊँचे पदों पर भारतीयों को नियुक्त नहीं किया जाना चाहिये। अतः अपने लिए उन्नति के दरवाजे बन्द पाकर भारतीय शिक्षित वर्ग भी अंग्रेज़ी शासन से असंतुष्ट था। अंग्रेजों की नई शिक्षा-पद्धति और ईसाई-धर्म को बढ़ावा देने की नीति से भी हिन्दू और मुस्लिम जनता में असंतोष फैल गया। उन्हें यह भय पैदा हो गया था कि अंग्रेज उनके धर्म को नष्ट कर ईसाई धर्म का प्रचार करना चाहते हैं। ऐसा संदेह करना निर्मूल भी न था, क्योंकि सन् १८३६ में जब पहले-पहल बंगाल में अंग्रेजी स्कूल खोले गये तो मैकाले ने कहा ही था कि तीस वर्ष के अन्दर बंगाल में कोई मूर्ति पूजने वाला न रह जायगा।

ईसाई धर्म-प्रचारक और बहुत से अंग्रेज अधिकारी हिन्दू और मुस्लिम धर्म की खुल कर निन्दा भी करने लगे थे। अंग्रेजी बारिकों में भारतीय सिपाहियों को ईसाई न होने से बहुत तिरस्कृत होना पड़ता था। भारतीय सैनिकों को वेतन बहुत कम मिलता था और उनके लिए ऊँचे पदों के द्वार भी बन्द थे। लेकिन यदि कोई भारतीय सैनिक ईसाई बन जाता तो उसे बे-भाव तरक्की दे दी जाती थी। इस दुर्नीति से भारतीय सैनिकों में भी अंग्रेजी राज्य के प्रति बहुत क्षोभ उत्पन्न हो गया।

लार्ड डलहौजी की अपहरण-नीति से भारतीय राजा व नवाबों में भी बहुत असंतोष पैदा हो गया था। अवध के नवाब को कुशासन के बहाने गद्दी से उतारे जाने के कारण देशी

राजाओं और नवाबों में यह भय पैदा हो गया था कि अंग्रेज जब चाहें उन्हें निकाल बाहर कर सकते हैं। परिणामतः पदच्युत राजा और नवाबों के अलावा अन्य देशी राज्यों के शासकों में भी अंग्रेजी शासन के प्रति घृणा पैदा हो गयी। इस स्थिति का डलहौजी ने ख्याल किया हो या न किया हो, पर उसके उत्तराधिकारी लार्ड केनिंग को इस बात का अन्दाज लग गया था कि भारत के राजनैतिक क्षितिज पर असंतोष के स्फुट छोटे-छोटे काले बादल उठने लगे हैं, जो शीघ्र ही एक ऐसे भयंकर तूफान का रूप धारण कर सकते हैं जिसमें फंसकर अंग्रेजी हुकूमतकी नौका चकनाचूर हो सकती है।

वास्तव में भारत का राजनैतिक आकाश केनिंग के अंदाज से भी कहीं अधिक असंतोष के तूफानी बादलों से घिर चुका था और उसके फूटने में अब अधिक देर न थी। सतारा, अवध और नाना साहब के दूत अंग्रेजों से न्याय पाने की आशा में इंगलैंड तक दौड़े, लेकिन वहां भी उन्हें न्याय न मिल सका। इस तरह न्याय के दरवाजे बन्द पाकर पदच्युत देशी शासकों ने अब तलवार के बल पर न्याय प्राप्त करने का निश्चय किया, और अंग्रेजों के अन्याय के सामने मस्तक न झुकाने की प्रतिज्ञा ली। झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई ने तभी दर्प के साथ यह घोषित किया—"मेरा झांसी देगा नहीं!"

स्वाधीनता-संग्राम का आयोजन—स्वाधीनता के लिये युद्ध करने का विचार पहले-पहल संभवतया नाना साहब और उनके मंत्री अजीमुल्ला के मस्तिष्क में पैदा हुआ। अजीमुल्ला एक बहुत गरीब घराने में पैदा हुआ था। अपने जीवन-निर्वाह के लिए प्रारम्भ में उसे यूरोपियनो के यहां बबर्ची का काम तक करना पड़ा। इस दरमियान उसने अंग्रेजी और फ्रेंच भाषा अच्छी तरह से सीख ली। धीरे-धीरे अपनी योग्यता से वह बिठूर में नाना साहब का विश्वास-पात्र मंत्री बन गया। नाना ने उसे अपना प्रतिनिधि बना कर इंगलैंड भेजा। ईस्ट इंडिया कम्पनी के डाइरेक्टरों ने जब नाना की पेंशन के बारे कुछ भी सुनने से इनकार कर दिया तो अजीमुल्ला ने

सोचा कि इस अन्याय का बदला लेने के लिए क्यों सशस्त्र युद्ध न छेड़ा जाय? इसी समय सतारा के छत्रपति के प्रतिनिधि रंगो बापू जी से अजीमुल्ला की इंगलैंड में भेंट हुई। दोनो ने तब भारत को स्वतंत्र करने की योजना पर विचार-विनिमय किया। रंगोजी बापू तो इंगलैंड से सीधे सतारा लौट आया, लेकिन अजीमुल्लाखां यूरोप की सैर करता हुआ रूस तक पहुँचा और तब भारत लौटा। अनुमान किया जाता है कि अजीमुल्ला भारत की स्वाधीनता के युद्ध में रूस से मदद लेने की इच्छा से ही वहाँ पहुँचा था।

नाना साहब

अजीमुल्ला ने भारत लौटने पर नाना साहब से मिल कर युद्ध की योजना तैयार की और उसमें सम्मिलित होने के लिए भारत के करीब सभी राज्यों के पास निमंत्रण भेजे। इन निमंत्रण पत्रों में अंग्रेजों के विरुद्ध स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा के लिए शस्त्र उठाने को ललकारा गया था। राजाओं और नवाबों के अलावा सेना, कर्मचारी वर्ग और जनसाधारण में भी क्रान्ति के लिये प्रचार किया गया। क्रान्ति की लौ प्रज्वलित करने में नाना, अजीमुल्ला और अली नकीखां बराबर कार्य करते रहे। फकीरों, पंडितों, सन्यासियों आदि के वेश में क्रान्ति भड़काने के लिये गुप्त रूप से सर्वत्र हजारों दूत भेजे गये। बंगाल के सैनिकों में क्रांति की सूचना देने के लिये फौजों में 'लाल कमल' का फूल घुमाया गया। हर एक सैनिक के पास जब फूल पहुँचता तो वह उसे हाथ में लेने के बाद दूसरे को थमा देता था। इस तरह वह फूल एक-एक करके तमाम सैनिकों में घुमा दिया जाता था।

लाल कमल इस बात का सूचक था कि हमें अपनी स्वतन्त्रता के लिये खून बहाना होगा। इसी तरह जन-साधारण में क्रान्ति की गुप्त सूचना पहुँचाने के लिये गावो में चपातिया बाटी गईं। इस प्रभावशाली प्रचार के फल से सेना, अधिकारी वर्ग और जनता का काफी बड़ा हिस्सा क्रान्तिकारियो से मिल गया। इस प्रकार क्रान्ति की आग जब भीतर ही भीतर सुलगती जा रही थी कलकत्ते के पास बारकपुर छावनी में भारतीय सिपाहियो को अचानक यह भेद मालूम हुआ कि जो नई कारतूस कुछ समय से उन्हें दी जा रही है और जिनकी टोपी दातो से काटनी पडती ह, उनको गाय और सूअर की चर्बी से चिकना किया जाता है। नये कारतूसो के सबध में यह चर्चा बात की बात में सारे देश में फैल उठी और भारतीय सैनिको के हृदय में सुलगता हुआ तूफान एकाएक ज्वालामुखी की तरह बाहर फूट निकला। परिणामत क्रान्ति की निश्चित तिथि (३१ मई १८५७) से पूर्व ही आवेश में आकर बगाल और मेरठ के सैनिको ने स्वतन्त्रता की लडाई छेड दी। इस आवेश का परिणाम क्रान्ति के लिये अन्तत घातक सिद्ध हुआ।

मंगल पांडे और मेरठ के सैनिको का विद्रोह—वजीर अली नकी खा ने बारकपुर (बगाल) छावनी की दो पलटनो को भडका रखा था। फरवरी में बारकपुर की एक पलटन ने नये प्रकार के कारतूसो का प्रयोग करने से इनकार कर दिया। क्रान्ति के नेता चाहते थे कि सैनिक आवेश में आकर निश्चित तिथि से पूर्व युद्ध न छेडें। लेकिन मगल पाडे नाम के एक सैनिक को क्षण भर के लिये भी अग्रेजो का प्रभुत्व सहन करना असह्य हो उठा। मगल पाडे उसी पलटन का सिपाही था जिसने कारतूसो को बर्तने से इनकार किया था। यह वीर एक दिन २९ मार्च १८५७ को अकेले ही अपनी बन्दूक लेकर परेड के मैदान में आगे कूद आया। उसने अपने साथी सैनिकों को ललकार कर कहा, "भाइयो हमें अपनी स्वतन्त्रता के घातक शत्रुओ पर टूट पडना

चाहिये।" इस वीर घोष के साथ मंगल पांडे ने अपनी बन्दूक से तीन अंग्रेज अफसरों को वहीं भूमि पर सुला दिया। पर अन्त में मंगल पांडे पकड़ लिया गया और अंग्रेजी सरकार ने उसे फांसी दे दी। इस प्रकार अपना रक्त देकर शहीद मंगल पांडे ने सारे देश में क्रान्ति की सुप्त ज्वाला को भड़का डाला। लेकिन समय से पूर्व विस्फोट हो जाने से ब्रिटिश सरकार को भी सतर्क और तैयार होने का मौका मिल गया और उन्होंने बारकपुर की दो विद्रोही पलटनों को तोड़ दिया, जिससे बंगाल के क्रान्तिकारियों के संगठन को बहुत बड़ा धक्का लगा।

बारकपुर की पलटन की तरह मेरठ की घुड़सवार सेना ने भी नयी कारतूसों को छूने से इन्कार कर दिया। इस पर बहुत से सैनिकों को कठोर दंड दिया गया। सरकार के इस बर्ताव से सैनिक भड़क उठे और आवेश में आकर उन्होंने भी निश्चित तिथि से पूर्व ही विद्रोह कर दिया। सैनिकों के साथ-साथ शहर की जनता और अंग्रेजों के घरों में काम करने वाले भारतीय मजदूरों ने भी बगावत कर दी। यह बगावत १० मई १८५७ को शुरू हुई। "मारो फिरंगी को" चिल्लाते हुए सैनिक छावनी से निकल आये और जेल को तोड़ कर उन्होंने कैदियों को मुक्त कर दिया। जो अंग्रेज अफसर या अधिकारी जहां मिला उसे क्रान्तिकारियों ने वहीं ढेर कर दिया। मेरठ से सब विद्रोही हिन्दू और मुस्लिम सैनिक दिल्ली की ओर बढ़ चले।

दूसरे दिन क्रान्तिकारी सैनिकों का दल दिल्ली के द्वार पर आ पहुँचा। उन्हें रोकने के लिये एक अंग्रेज अफसर भारतीय सेना की एक टुकड़ी लेकर पहुँचा, पर यह सेना भी विद्रोहियों के पक्ष में हो गई और उसने अपने अंग्रेज अफसरों को मार डाला। इसके बाद विद्रोही सैनिक और नागरिक "बादशाह की जय" का नारा लगाते हुए महल में पहुँचे और बादशाह से क्रान्ति का नेतृत्व ग्रहण करने की प्रार्थना की। बादशाह और बेगम जीनत महल ने

सब नेतृत्व अपने हाथों में लेकर स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। इस घोषणा से उत्साहित होकर सैनिकों और नगरवासियों ने वेग के साथ आक्रमण करके अंग्रेजी बैंक तथा अंग्रेजी छापाखाने को नष्ट कर दिया। क्रान्तिकारियों ने किले के निकट अंग्रेजों के शस्त्रागार पर भी धावा बोल दिया। इस आक्रमण से बचने का उपाय न देख कर अंग्रेज अफसरों ने बारूदखाने में आग लगा कर शस्त्रागार को उड़ा दिया।

इसके बाद दिल्ली की सभी भारतीय पलटनें विद्रोहियों से जा मिलीं और चार-पांच दिन के भीतर उन्होंने दिल्ली से अंग्रेजी राज के सब चिह्न मिटा डाले।

विद्रोह दबाने की आरम्भिक चेष्टाएँ—मेरठ के सैनिकों के विद्रोह से क्रान्ति की निश्चित योजना गड़बड़ा गयी और अंग्रेजों को अपनी स्थिति संभालने का अवसर मिल गया।

मेरठ और दिल्ली के विद्रोह का समाचार जब पंजाब पहुँचा तो सर जॉन लारेंस ने लाहोर की भारतीय सेना से हथियार छीन लिये और विद्रोहियों को सख्त सजाएँ दीं। विद्रोहियों को दबाने के बाद लारेंस ने गोरों की एक सेना निकल्सन की अध्यक्षता में दिल्ली भेजी।

पेशावर की देशी पल्टन के हथियार भी रखवा दिये गये। मर्दान की देशी सेना के विद्रोही सिपाहियों को तोपों के मुँह पर बांध कर उड़ा दिया गया।

दूसरी तरफ लार्ड कैनिंग ने भी शिमले में अंग्रेज सेनापति को दिल्ली पर आक्रमण करने की आज्ञा प्रेषित की। पंजाब के पटियाला, नाभा और जींद के सिख राजाओं ने इस चढ़ाई में अंग्रेजों को मदद पहुँचायी। निःसंदेह इस अवसर पर यदि ये तथा दूसरे राजा अंग्रेजों को सहायता न पहुंचाते तो उनको फिर से पैर जमाना कठिन हो गया था।

क्रान्ति की चौमुखी ज्वाला—११ मई से १० जून के भीतर रुहेलखंड, कानपुर और अवध आदि में सब जगह विद्रोह हो गया और

दक्षिण में सतारा के छत्रपति के मंत्री रंगो बापूजी ने भी विद्रोह फैलाने की चेष्टा की, लेकिन उसे सफलता न मिल सकी। दक्षिण में हैदराबाद के निजाम और उत्तर में नेपाल के राजा ने पूरी तरह से अंग्रेजों का साथ दिया। यदि दक्षिण और उत्तर के ये दो शक्तिशाली राज्य और पंजाब के सिख राज्य अंग्रेजों का पक्ष न ग्रहण करते तो संभव था कि स्वतंत्रता की यह पहली लड़ाई विफल होने से बच जाती।

इलाहाबाद और कानपुर का पतन—बनारस में ४ जून १८५७ को विद्रोह हुआ, लेकिन कर्नल नील ने बड़ी सख्ती और क्रूरता के साथ विद्रोहियों को दबा दिया। बनारस और आसपास के गांवों को कुचलते हुए कर्नल नील की गोरी सेना इलाहाबाद की ओर बढ़ी, और रास्ते में पैशाचिक ढंग से लोगों को विद्रोह के संदेह में पकड़-पकड़ कर पेड़ों पर लटकाती व आग में भूनती चली गई। इलाहाबाद पहुँचने पर (११ जून) नील ने बनारस की तरह वहाँ के विद्रोहियों को भी बुरी तरह से कुचल कर दबा दिया।

स समय कानपुर में विद्रोही बहुत प्रबल हो उठे थे और बीबीगढ़ (कानपुर) में बहुत सी अंग्रेज स्त्रियाँ और बच्चे कैद थे। अतः इलाहाबाद से सेनापति हैवलाक और नील कानपुर की ओर अग्रसर हुए। नाना की सेना को हरा कर अंग्रेजों ने फतेहपुर के नगर को लूट कर जला दिया, और मार्ग में अनेक गावों में आग लगा कर कितने ही निरपराध बच्चों और स्त्रियों को मार डाला। इससे उत्तेजित होकर कानपुर के कुछ विद्रोही सैनिकों ने भी बीबीगढ़ में नजरबन्द लगभग २०० अंग्रेज स्त्रियों और बच्चों को मार डाला और उनकी लाश एक बन्द कुएं में डाल दीं। पर विद्रोही अंग्रेजों का बढ़ाव न रोक सके और नाना भाग कर फर्रुखाबाद की ओर चला गया। जुलाई मे अंग्रेजों का कानपुर पर फिर अधिकार हो गया।

दिल्ली का पतन—इस समय दिल्ली में भी अंग्रेजों और विद्रोहियों में सख्त लड़ाई चल रही थी। सर जॉन लारेंस ने गोरों को

एक सेना निकलसन को अध्यक्षता में दिल्ली भेजी । इससे पहले मेरठ से भी कुछ अंग्रेजी सेना आकर दिल्ली को घेरे हुए पडी थी। अत ये दोनो सेनाएँ अब मिल कर विद्रोहियों से लडने लगी।

बूढा बादशाह और क्रान्ति के नेता भी अपनी तरफ से मुकाबले के लिए तत्परता से कोशिश कर रहे थे। क्रान्तिकारियो ने शस्त्रो को बनाने के भी कारखाने खोल दिये थे जहा रात दिन काम होता रहता था। बादशाह ने हिन्दू और मुस्लिम जनता को एक होकर विदेशी अंग्रेजो से धर्म-युद्ध लडने की विज्ञप्ति प्रकाशित करते हुए सारे राज्य में गो-हत्या बन्द करा दी। धर्म-युद्ध या जेहाद की घोषणा करने के लिए बादशाह स्वय हाथी पर बैठ कर नगर में निकला। इससे सेना और जनता में पूरा जोश उमड घुमड आया, लेकिन दुर्भाग्य से उनको ठीक से सचालित करने वाला कोई नेता उनके सिर पर न था। बादशाह के आह्वान के बावजूद कोई शक्तिशाली राजा आगे बढ कर नेतृत्व करने को तैयार न हुआ। इसके विपरीत पजाब के सिख राजा, नेपाल के गोर्खे, सिंधिया व निजाम आदि अंग्रेजो के पक्ष में चले गये और अपने ही देश के शत्रुओं को मदद देने लगे। फलत अंग्रेजो की स्थिति प्रबल हो चली और क्रांतिकारी कमजोर पड गये। फिर भी जून से सितम्बर तक अंग्रेजो और क्रांतिकारियो में

बहादुर शाह

भीषण युद्ध चलता ही रहा। क्रांतिकारियों के प्रहारों से आहत होकर लार्ड रावर्टस को कहना पड़ा था कि "विद्रोहियों ने हमें तहस-नहस कर दिया है।" दिल्ली में प्रवेश पाने के लिये नि सन्देह अनेक अंग्रेज अफसरों और सैनिकों को अपनी जानें देनी पड़ीं। सितम्बर में पंजाब से अंग्रेजों के पास नई सेना और तोपें आ पहुँची। सेनापति निकल्सन ने तब तेजी से धावा बोल कर कश्मीरी दर्वाजा को फोड़ दिया और सेना लेकर नगर में घुस गया। विद्रोहियों ने फिर भी असाधारण वीरता के साथ युद्ध जारी रखा और निकल्सन समेत सैंकड़ो गोरे सैनिकों को यमपुर पहुँचा दिया। अन्त में १०–१५ दिन की सख्त लड़ाई के बाद क्रान्तिकारी हार गये और गद्दार इलाही बक्स ने बूढे बादशाह और उसके लड़कों को पकड़वा दिया। कैप्टिन हाडसन ने गिरफ्तार तीन मुगल शाहजादों को गोली से दगवा कर उनकी लाशें पुलिस थाने के सामने फेंकवा दीं। बादशाह और बेगम जीनतमहल को विद्रोह के अपराध में कैद की सजा देकर रंगून भेज दिया गया। वहीं सन् १८६२ में बहादुरशाह की मृत्यु हुई और तैमूर का वंश भारत से लुप्त हो गया।

दिल्ली नगर के निवासियों को भी बुरी तरह से रौंदा गया। नगर को लूटने में तो अंग्रेजों ने नादिरशाह को भी मात कर डाला और बदला चुकाने में कोई कमी न रहने दी। दिल्ली हाथ में आ जाने से अंग्रेजों की फिर धाक जम गई और सभी जगह उन्हें विजय मिलने लगी।

लखनऊ और झांसी का पतन—इसी समय अवध में भी क्रान्तिकारियों और अंग्रेजों में घनघोर युद्ध चल रहा था। २० जुलाई १८५७ को विद्रोहियों ने रेजीडेन्सी को घेर कर हमला किया। इस आक्रमण में हेनरी लारेंस काम आया। इस विद्रोह से सारे अवध में ही विप्लव मच उठा और अंग्रेजों की स्थिति कुछ समय के लिए खतरे में पड़ गयी। लखनऊ के क्रान्तिकारियों के प्रमुख नेताओं में

अहमदशाह तथा बेगम हजरत महल का नाम मुगल सम्राज्ञी जीनत महल की तरह ही प्रसिद्ध है। इस विद्रोह को दबाने के लिये कानपुर से हैवलाक, आउटराम और नील तीनो अंग्रेज सेनापति बड़ी कठिनाई के बाद लखनऊ में घुस कर रेजीडेंसी में जा पहुँचे (२५ सितम्बर)। लेकिन वे भी क्रांतिकारियों द्वारा घेर लिये गये। इस अवसर पर नील लड़ाई में मारा गया। बडी कठिनाइयों के बाद तब एक दूसरे अंग्रेज सेनापति कालिन कैम्बल (लार्ड क्लाइड) ने आकर नवम्बर में क्रातिकारियों से रेजीडेंसी को छुड़ा लिया, पर लखनऊ नगर तब भी क्रांतिकारियों के कब्जे में रहा। बड़ी मुश्किल से चार महीने बाद मार्च सन् १८५८ में कैम्बल लखनऊ पर अधिकार कर सका। नगर को लेने पर अंग्रेजों ने कई दिन तक लखनऊ में कत्लेआम मचाया और कैसर बाग को लूट लिया। अवध का विद्रोह दबाने में अंग्रेजों को नेपाल सरकार से बड़ी सहायता मिली।

जिस समय अवध में अंग्रेजों का क्रांतिकारियों से युद्ध चल रहा था, जगदीशपुर का बूढा विद्रोही कुवरसिंह आरा से निकल कर आजमगढ़ चला आया था। यहां उसने अंग्रेजो के एक दल को रौंदा, पर अंग्रेजों की अधिक सेना आने पर वह बिहार लौट गया। वहाँ पहुँच कर उसने जगदीशपुर पर फिर अधिकार कर लिया, लेकिन युद्ध में घायल हो जानेसे उसकी वहीं मृत्यु हो गयी।

झांसी पर मार्च सन् १८५८ में सर ह्यूरोज ने आक्रमण किया। महारानी लक्ष्मीबाई असाधारण वीरता से लडी, पर एक देशद्रोही की मदद से अंग्रेजी सेना किले में घुस गयी। रानी तब थोड़े से साथियों को लेकर कालपी जा पहुँची।

अवध, रुहेलखंड और मध्य भारत में अन्तिम कशमकश—लखनऊ के पतन के बाद भी अवध पर बहुत दिनों तक अंग्रेज पूरी तरह से अधिकार न कर सके थे। लखनऊ के बाद शाहजहांपुर को लेकर कैम्बल ने मई में रुहेलखंड की राजधानी बरेली पर आक्रमण

किया। बहादुरखा आदि क्रान्ति के नेता तब शहर छोडकर भाग गये और बरेली पर अग्रजो का अधिकार हो गया। इस बीच मौका पाकर अहमदशाह न शाहजहापुर पर फिर अधिकार कर लिया। नाना और हजरतमल ने भी उसे मदद पहुचायी। किन्तु जून में अवध के एक गद्दार जमीदार ने अहमदशाह की हत्या करवा डाली। अग्रज इतिहासकार मैलमन न अहमदशाह की वीरता, साहस और देशप्रेम की प्रशसा करते हुए उसे 'सच्चा देशभक्त' घोषित किया है। अहमदशाह के मरते मरते रुहेलखड क

लक्ष्मीबाई

अन्य स्थानो पर भी अग्रेजो का अधिकार हो गया।

उधर कालपी में महारानी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपी और बुन्देलखड के दूसरे क्रान्तिकारी नेता जमा हो गये थे। अत ह्यूरोज ने झासी लेन के बाद कालपी पर आक्रमण किया। लक्ष्मीबाई और तात्या टोपी तब फिर भाग निकले (मई), और ग्वालियर चले आये।

ग्वालियर का राजा जयाजीराव सिंधिया भागकर अग्रेजो की शरण में आगरा चला आया और उसकी फौज विद्रोहियो स मिल गयी। महारानी लक्ष्मीबाई और तात्या टोपी ने नाना साहब क भतीजे निकम्मे रावसाहब को ग्वालियर का राजा बनाया। इस बीच जून में ह्यूरोज ग्वालियर पहुँच गया। रानी लक्ष्मीबाई ने डटकर दो दिन तक असाधारण वीरता क साथ अग्रेजो का सामना किया। अन्त में विजय की आशा न देखकर वह भाग निकली। गोरे घुडसवारो ने भागती हुई रानी का पीछा किया। उनमें से कई एक को मारकर वीर रानी घायल होने से स्वय भी वीर गति को प्राप्त हुई। ह्यूरोज का कथन है कि विद्रोहियो में झासी की महारानी सबसे

योग्य और वीर थी। क्रांतिकारियों में अब अकेला तात्या टोपी मैदान में रह गया। कई महीनों तक वह राजपूताना, बुन्देलखंड और मालवा में घूमता रहा। अंत में अलवरके पास एक विश्वासघाती जागीरदार ने उसे धोखे से अंग्रेजों के हवाले कर दिया (अप्रैल १८५९)। अंग्रेजों ने तब तात्या टोपी को फांसी पर लटका कर दुनिया से विदा कर दिया। बेगम हज़रत महल ने भागकर नैपाल में शरण ली। नाना भागकर कहां चले

तात्या टोपी

गये इसका पता न चल सका। इस तरह स्वतन्त्रता का यह पहला युद्ध दो वर्ष की कठोर कशमकश के बाद विफलता के साथ खत्म हो गया।

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) स्वाधीनता-युद्ध के कारणों पर प्रकाश डालिए।

(२) स्वाधीनता-संग्राम का आयोजन किस तरह हुआ और उसके लिए क्या-क्या प्रयत्न किये गये?

(३) क्रांति के प्रमुख नेता कौन-कौन थे? उनका संक्षेप में हाल बतलाइये।

(४) क्रांति की असफलता के कारणों पर प्रकाश डालिए

अध्याय—१०

कम्पनी-राज में भारत की आर्थिक और सामाजिक दशा

भूमि का प्रबन्ध और किसानो की दशा—ईस्ट इडिया कम्पनी अग्रेज व्यापारियो की एक मडली थी। कम्पनी भारत के व्यापार से लाभ उठाने को यहां आई थी। देश की आन्तरिक कमजोरी से लाभ उठाकर जब कम्पनी ने व्यापार के साथ-साथ यहां पर अपनी हुकमत स्थापित की तो वह मनमाने ढग से शासन करने लगी। अपने लाभ के सिवा इस देश की जनता की उन्हें पर्वाह या चिन्ता ही क्या हो सकती थी? उन्हें तो रुपया और सोना चाहिये था चाहे यहा के किसान, मजदूर और व्यापारी मरें या जीयें।

उनसे पूर्व किसान जनता काफी सुखी और प्रसन्न थी। किन्तु कम्पनी के हाथ में राज आने पर किसानो की दशा बिगड़ चली। बगाल में पैर जमाते ही अग्रेजो ने ऐसा शोषण प्रारम्भ किया कि कुछ ही समय मे वहां का किसान और मजदूर दाने-दाने के लिए तरस उठा। इस शोषण और कुशासन के परिणाम से सन् १७७० में बगाल में ऐसा भयकर दुर्भिक्ष पडा, जिसमें वहा की एक तिहाई आबादी ही नष्ट हो गयी। इस दयनीय अवस्था में भी कम्पनी के कर्मचारी मनमानी करने और किसानो से पूरा लगान वसूल करने में न चूके। पहले लगान की दर साधारण थी और किसान को नकदी या जिन्स के रूप में उसे चुकाने की स्वतन्त्रता थी। लेकिन कम्पनी सरकार ने जिन्स में चुकाने की प्रथा बन्द कर दी और लगान की दर इतनी बढ़ा दी कि किसानो को जीवन निर्वाह करना कठिन हो गया। सन् १८२६ में भारत का भ्रमण करने पर हिबर नामक एक पादरी ने लिखा था कि 'कोई भी देशी नरेश अपनी प्रजा से इतना अधिक लगान नहीं वसूल करता है जितना कि

हम लेते हैं।' परिणाम यह हुआ कि बहुत से किसान गांव छोड़-छाड़कर भागने लगे और हराभरा बंगाल अब 'वीरान दिखाई पड़ने लगा।'

स्थायी बन्दोबस्त—वारेन हेस्टिंग्ज के समय में हर पांचवें साल बन्दोबस्त करने का नियम बना और सब से अधिक देने वालों के नाम भूमि के ठेके दिये जाने लगे। इस प्रबन्ध से पुराने जमीन्दारों के हाथ से जमीन निकल गई और उनकी जगह ठेका लेने वाले नये जमीन्दार पैदा हो गये, जिनका किसान-रैय्यत से पहले कोई सबंध न था। अतः मालगुजारी वसूल करने के लिए ये जमीन्दार किसानों को बुरी तरह से पीड़ित करने लगे। फिर भी ये जमीन्दार पूरी तरह से रुपया वसूल न कर सके और अनेक पर लगान बकाया पड़ा रहा। अतः जब लार्ड कार्नवालिस भारत आया तो उसने बंगाल में खेती की बुरी दशा पाई और जमीन्दारों से मालगुजारी वसूल न होने से सरकारी खजाना भी खाली पाया। इस स्थिति को सुधारने के लिए कार्नवालिस ने जमींदारों से स्थायी रूप से बन्दोबस्त करने व मालगुजारी की दर निश्चित कर देने की योजना बनायी। कम्पनी के डाइरेक्टरों ने इस योजना को स्वीकार किया और तब सन् १७९३ में बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा में स्थायी बन्दोबस्त कर दिया गया।

स्थायी बन्दोबस्त से किसानों के बजाय जमीन्दारों को ही ही अधिक लाभ हुआ। जमीन्दार अब भूमि (जमीन) के मालिक हो गये और मालगुजारी की निश्चित रकम से ऊपर बढ़ी हुई आमदनी का रुपया उन्हीं की जेबों में जाने लगा। किसानों को बेदखल करने का हक भी जमींदारों को दे दिया गया। इस प्रकार किसानों का भूमि पर कोई हक ही न रह गया और उनका सर-कार से सीधा सबंध टूट गया। परिणामतः जमीन्दार शक्तिशाली हो चले और उनके कारिन्दे प्रजा पर मन-माने अत्याचार करने लगे। स्थायी बन्दोबस्त चूंकि जमीन्दारों के साथ हुआ था इसलिए

इसे जमीन्दारी बन्दोबस्त भी कहते है। सन् १७९५ में ऐसा ही बन्दोबस्त बनारस के इलाके में भी कर दिया गया।

रैंय्यतवारी बन्दोबस्त–किन्तु सभी जगह कम्पनी ने भूमि का एक जैसा बन्दोबस्त न किया। मद्रास प्रान्त में सर थामस मुनरो ने यह देखा कि वहा भारतीय शासको के समय में जमीन्दारो द्वारा मालगुजारी वसूल करने की प्रथा न थी और सरकार रैंय्यत से सीधा सबध रखती थी। अत उसने भी इस प्रथा को स्वीकार करते हुए किसाना से सीधा बन्दोबस्त किया। यह बन्दोबस्त चूकि किसानो के साथ किया गया, इसलिए इसे रैंय्यतवारी बन्दोबस्त कहा जाता है। लेकिन इस बन्दोबस्त से भी किसानो को कोई अधिक लाभ न हुआ। जमीदारी बन्दोबस्त में यदि जमीदार भूमि का मालिक था तो इस रैंय्यतवारी बन्दोबस्त में कम्पनी सरकार खुद मालिक बन बैठी। फलत दोनो दशाओ में किसान जमीन के मालिक न होकर केवल भूमि को जोतने-बोने वाले मजदूर या 'रैयत' ही रहे।

मुनरो की तरह एलफिस्टन ने भी बम्बई प्रान्त में किसानो से सीधा रैंय्यतवारी बन्दोबस्त किया। किन्तु मालगुजारी की दर ५५ प्रतिशत नियत की गयी जो कि बहुत अधिक थी। इस अत्यधिक कर से किसानो की दशा बहुत बिगड गयी और सरकारी लगान चुकाने के लिए उन्हें महाजनो की कर्जदारी का शिकार होना पडा।

आगरा प्रान्त में महालवाडी बन्दोबस्त किया गया। इस योजना के अनुसार पूरे इलाके की जमाबन्दी एक साथ जाच ली गयी और एक एक 'महाल' पर सरकारी 'जुम्मा' तय कर दिया गया। यह बन्दोबस्त जहा जमीन्दार थे वहा जमीन्दार से और जहा किसानों की जमीन थी वहा किसानो के मुखिया से किया गया जो नम्बरदार कहलाये। यह बन्दोबस्त ३० साल के लिए किया गया। अवध में जो ताल्लुकदार थे उनके जमीन्दारी के अधिकार स्वीकार कर लिये गये। पजाब में आगरा प्रान्त की भाति

महालवाड़ी बन्दोबस्त किया गया। मध्यप्रान्त में मालगुजारी से बन्दोबस्त किया गया जिसे मालगुजारी बन्दोबस्त कहते हैं। पहले मराठों के समय में जो मालगुजारी ली जाती थी कम्पनी सरकार ने उसे बढ़ाकर तिगुना कर दिया। इस प्रकार कम्पनी सरकार के समय किसान जनता का हर प्रकार से शोषण किया गया, जिस कारण वे कंगाल और असहाय हो चले और जीना भी उनके लिए कठिन हो गया।

दुर्भिक्ष और सिंचाई का प्रबंध—लार्ड ऑकलैंड के समय सन् १८३७ में उत्तरी भारत में बहुत बड़ा दुर्भिक्ष पड़ा। कहा जाता है कि इसमें लगभग ८ लाख आदमी भूख से तड़प कर मर गये। सरकार ने तब खेती की सिंचाई के लिए गंगाजी से नहर निकालने का काम शुरू कराया जो डलहौजी के समय में जाकर पूरा हुआ। ऑकलैंड से पूर्व लार्ड हेस्टिंग्ज के समय में जमुना की पुरानी नहरों का पुनरुद्धार भी शुरू कर दिया गया था। सिंध और पंजाब की विजय के बाद सरकार ने वहां की नहरों की सुरक्षा पर भी ध्यान दिया। दक्षिण में गोदावरी के पानी से भी खेती को लाभ पहुंचाने का प्रयत्न किया गया।

भारतीय व्यापार और उद्योग-धन्धे—किसानों की तरह कंपनी ने भारत के व्यापार और उद्योग- धंधों को भी चौपट कर दिया। विदेशियों और अंग्रेजी कम्पनी के आने से पूर्व भारतकी यूरोप से बहुत व्यापार होता था। जवाहिरात, सूती तथा रेशमी वस्त्र, हाथी दांत की बनी चीजें भारतसे यूरोप को भेजी जाती थीं। इनके अलावा रंग, लौंग, मिर्च, मसाला, शोरा तथा अफीम आदि भी बाहर जाता था। यह सब माल भारत के ही बने हुए जहाजों में भेजा जाता था। अतः हमारा देश तब बहुत समृद्ध था और यहां के व्यापारी, शिल्पी व जुलाहे आदि खुशहाल और स्वस्थ थे। धीरे-धीरे यह व्यापार अंग्रेजों के हाथ में चला गया।

प्रारंभ में [illegible] और [illegible] में [illegible] के [illegible] व्यापार

होता रहा, लेकिन १८ वी सदी के आरभ से इगलेड ने अपनी व्यापारिक नीति बदल दी और वहा की सरकार न इगलैंड के जुलाहो के फायदे के लिए भारत के सूती व रेशमी माल पर चुगी बढायी। कुछ समय बाद इगलैड में एक कानून द्वारा भारत के छपे और बुने कपडो का व्यवहार करना भी बन्द करा दिया गया। इस नीति का भारत के व्यापार पर बहुत बुरा असर पडा।

इधर १८ वीं शताब्दी के आरभ में फर्रुखसियर ने अग्रेजी ईस्ट-इडिया कपनी को मुगल राज्य में बिना चुगी के व्यापार करने की स्वीकृति दे दी थी। अत बादशाह के फरमान के आधार पर उन्हें बगाल में भी बिना महसूल के व्यापार करने के लिए नवाब से पूरी छूट मिल गयी। प्लासी की विजय के बाद से (१७५७) तो अग्रेज व्यापारी बिल्कुल ही मनमाने ढग से व्यापार करने लगे। ये अग्रेज व्यापारी केवल कपडे का ही व्यापार न करते थ, बल्कि नमक, सुपारी, तम्बाकू, चीनी, घी, तेल, चावल, शोरा आदि सभी का काम उन्होने अपने हाथ में ले रखा था और इन सब पर ये कोई महसूल न देते थे। इन वस्तुओ को वे भारतीयो से सस्ते मूल्य पर खरीद कर मनमाने दामो पर बेच दिया करते थे। इसी तरह कम्पनी के कर्मचारी भी अपने निजी व्यापार में लगे थे।

इस तरह के व्यापार और कम्पनी की स्वार्थी नीति का परिणाम यह हुआ कि भारतीय व्यापार, उद्योग-धधे और दस्तकारी सब चौपट हो गये। अग्रेजो की विजय से पूर्व भारत का कपडे का व्यापार बहुत उन्नत था और सूती तथा रेशमी वस्त्रों को तैयार करने की कला में यहा के जुलाहे सिद्धहस्त थे। इस व्यवसाय से भारत के जुलाहे और व्यापारी खूब लाभ उठाते थे। पर अग्रेजों की हुकूमत स्थापित होने पर अब व्यापार से केवल अग्रेज ही फायदा उठाने लगे। १८०३ तक विलायत से एक गज भी कपडा भारत नही आता था और उल्टे ईस्ट इडिया कम्पनी ही यहा का कपडा विलायत में बेच कर बहुत बडा फायदा उठाती

थी। यह सारा फायदा यहा के जुलाहो को चूस कर किया जाता था। कम्पनी के कर्मचारी जुलाहो को पेशगी रुपया देकर उनसे मुचलका लिखवा लेते थे। इसके अनुसार उन्हें अपना कुल माल व्यापारी रेजिडेंटो की नियत की हुई दर पर अग्रेजी कम्पनी को ही देना पडता था। यदि कोई जुलाहा मुचलके की शर्तों को मानने से इन्कार करता तो कोडे लगाकर उसकी चमडी उधेड दी जाती थी। अग्रेजो की अपेक्षा दूसरे विदेशी २० से ३० सैकडा अधिक दाम देने को तैयार थ, लेकिन उनके हाथ जुलाहो को माल बेचने न दिया जाता था। इसका फल यह हुआ कि जुलाहो को नुकसान होने लगा और फायदा न देखकर उन्होने अपना काम छोड दिया।

प्लासी की विजय के समय से (१७५७) लेकर १८१५ के भीतर देशी राजाओ और नवाबो को लूटकर करोडो रुपया अग्रेजो ने इगलैंड पहुचाया। यह लूट का रुपया इगलैंड के व्यवसाय और उद्योगो तथा आविष्कारो को बढाने में लगाया गया। इस बीच इगलैंड में वाष्प इजन का आविष्कार हुआ (१७६८) और फिर कपडे बुनने का ऐसा यत्र तैयार किया गया जो भाप की शक्ति की मदद से काम करने लगा। इसी समय के अन्दर बेलने, धुनने, रगने, छापने आदि के नये-नये यत्र और तरीके भी आविष्कृत हुए। यदि भारत से लूट का असख्य रुपया इगलैंड न पहुचता तो ये आविष्कार कभी पूरे न हो सकते थे। इस प्रकार हमारे देश के रुपये से ही इगलैंड ने नये-नये आविष्कार कर अपने उद्योग धन्धो को तो आश्चर्य-जनक रूप से उन्नत किया, लेकिन दूसरी तरफ हमारे व्यापार व व्यवसाय को खतम कर दिया। मशीनो क कारण इगलैंड में कपडा इतने अधिक परिमाण में पैदा होने लगा कि इसे दूसरे देशो में भेजना आवश्यक हो गया और स्वय दूसरे देशो के कपडो की उसे आवश्यकता नहीं रह गयी। अत इगलैंड ने अब जोरो से यह कोशिश की कि भारत से आने वाले कपडे का आयात बि ल

रोक दिया जाय। दूसरी तरफ वह अपने फालतू कपड़े को भारत में लाकर हमारे सिर मढ़ने लगा। "बिक्री के लिए इतना भारी बाजार पा जाना इंगलैंड के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ।" भारत के कपड़े का माल इंगलैंड आने से रोकने के लिए उसपर अत्यधिक चुंगी लाद दी गयी। अतः उन्नीसवीं सदी के मध्य में पहुंचकर भारतीय कपड़े का बाहरी व्यापार खतम हो गया और अब इंगलैंड से ही करोड़ों का कपड़ा व सूत हमारे यहां आने लगा। फलतः हमारे कपड़े का व्यवसाय मिट चला और हमारे यहां के प्रसिद्ध व्यापारिक तथा औद्योगिक केन्द्र (सूरत, ढाका, मुर्शिदाबाद आदि) उजड़ गये। परिणाम यह हुआ कि हजारों व्यवसायियों व जुलाहों आदि की रोजी मर गई और देश में बेकारी व भूखमरी बढ़ गयी। शहरों में काम न रहने से बेकार हुए जुलाहे और शिल्पी आदि तब गांवों की ओर मुड़ चले। इससे जमीन पर बोझ बढ़ा और जंगलों तथा चरागाहों की जमीन भी खेती के काम में लायी जाने लगी।

डलहौजी, रेल, तार, डाक और सड़कों का प्रबन्ध—लार्ड डलहौजी के समय में अंग्रेजी राज्य का बहुत विस्तार हो गया था। इसलिए एक स्थान से दूसरे स्थान तक शीघ्र सेना ले जाने के लिए उसने रेल-पथ बनाने की योजना बनायी। इसके लिए उसने कुछ अंग्रेजी कम्पनियों को तैयार किया। सरकार की मदद पा कर तब 'ग्रेट इंडियन पेनिन शुलन' (जी. आई. पी) रेलवे और 'ईस्ट इंडियन रेलवे' (ई आई. आर) कम्पनियों ने रेल-पथ बनाने का काम शुरू किया। इसके बाद और भी कम्पनियां खुल गयीं। सन् १८५३ में ग्रेट इंडियन पेनिंशुलर रेलवे कंपनी ने बम्बई और थाने के बीच पहली रेलवे चलाई।

इसी समय बिजली द्वारा तार देने का भी प्रबंध किया गया। सन् १८५२ में कलकत्ता के निकट पहला तार लगाया गया। तारों के द्वारा अब जल्दी खबर पहुंचाने की सुविधा हो गयी।

पहले डाक का अच्छा प्रबन्ध न था। पत्रो का महसूल निश्चित न था और गांवो में तो पत्र पहुचते ही न थे। अत डलहौजी ने डाक विभाग में समुचित सुधार किये। उसने सारे भारतवर्ष के लिए सन् १८५३ से आधे तोले के वजन के पत्र का आधा आना महसूल निश्चित कर दिया। उसके समय में लगभग साढे सात सौ डाकखाने खोले गये।

डलहौजी नहरो और सडको के निर्माण पर भी ध्यान दिया। उसने 'ग्रेंड ट्रङ्क रोड' आदि कई सडकें बनवायी और इन कार्यों के निर्माण और देखभाल के लिए 'पब्लिक वर्क डिपार्टमेंट' स्थापित किया।

१८३३ के बाद गोरे प्लटारो का बसना, भारतीय मजदूर और ईसाई प्रचारक–१८१३ में कम्पनी का भारत से व्यापार करने का ठेका बन्द कर दिया गया था। इसके बाद सन् १८३३ में इगलैंड की पार्लियामेंट ने एक कानून पास किया जिसके अनुसार कम्पनी का चीन के साथ व्यापार करने का ठेका भी बद कर दिया गया। कम्पनी का काम अब केवल भारत का शासन-प्रबन्ध करना रह गया। इस समय से अंग्रेज या गोरो को भारत में बसने और जमीन खरीदने की भी स्वतत्रता दे दी गयी। बहुत से अंग्रेज पूजीपतियो ने तब जगह-जगह जमीन खरीद कर अपनी बस्तिया बसाई और खेती कराने लगे। इस प्रकार गोरे बगाल-बिहार में नील, आसाम और कुमाऊ आदि में चाय तथा कुर्ग में काफी की खेती कराने लगे। इस काम के लिए उन्हें मजदूर भी आसानी से मिल गये। पहले भारत में कोई मजदूर वर्ग न था, लेकिन कपनी के राज्य में हमारे शिल्प और उद्योगों के नष्ट हो जाने से जुलाहे आदि बहुत बडी सख्या में बेकार पडे हुए थे। कम्पनी सरकार के भारी लगान के फल से किसानो का भी बुरा हाल था। इस दयनीय अवस्था में ये सब लोग काम की तलाश में थे ही, इसलिए, जब गोरे जमीदारो ने उन्हें मजदूरी पर काम करने को

बुलाया तो वे फौरन उनके जाल में फस गये। इस प्रकार हमारे यहा पहले-पहले गोरो के प्रयत्न से मजदूर वर्ग पैदा हुआ।

चाय वाले तथा निलहे गोरे मजदूरो पर बहुत अत्याचार करने लगे। निलहे गोरो के अत्याचारो से ऊब कर मजदूर-किसानो न १८५९-६० में उनके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। तब से नील की खेती कम हो गयी और उसमें कुछ सुधार भी किये गये। निलहे गोरो का पूरी तरह से अन्त हमारे समय में महात्मा गाधी ही कर सके। इन विद्रोहो के फलस्वरूप गोरों की बस्तिया भी उखड गयी और भारत में बसने की उनकी कोशिशें सफल न हो सकी।

ईसाई धर्म को फैलाने के लिए भी अग्रेजो ने काफी कोशिशें की। लार्ड वेलेजली ने ईसाई मत के प्रचार के लिए सात देशी भाषाओ में बाइबिल का अनुवाद कराया। सन् १८१३ में इगलैड की सरकार ने ईसाई मत के प्रचार के लिए लाइसेंस लेकर पादरियो को भारत जाने की अनुमति दे दी। कलकत्ते में तब एक 'बिशप' और चार पादरी भी नियुक्त कर दिये गये जिनका वेतन भारत की आय से देना निश्चित हुआ। अत पादरी लोग अब जोरो से ईसाई मत के प्रचार में जुट गये ताकि सास्कृतिक रूप से भी भारतवासियो को पराजित कर उन्हें पश्चिमी धर्म और सभ्यता का गुलाम बनाया जा सकता। लेकिन पादरियो के प्रचार से भारतीयो में ईसाई धर्म और अग्रेजो के प्रति आकर्षण होने के बजाय घृणा और द्वेष ही अधिक उत्पन्न हुआ। १८५७ के विद्रोह का एक कारण ईसाई धर्म का प्रचार किया जाना भी था।

लार्ड बेंटिक के समय में इस नीति में थोड़ा-सा परिवर्तन हुआ और भारतीयों को 'सब जज' और 'डिप्टी कलक्टर' बनाने का निश्चय किया गया। इस प्रकार छोटे ओहदों पर अब भारतीय भी रखे जाने लगे। सन् १८३३ में नये चार्टर के अनुसार यह भी कहा गया कि जन्म, धर्म और वर्ण के कारण किसी भी देशवासी को सरकारी नौकरी के अयोग्य न समझा जायगा। लेकिन इस घोषणा को पूरी तरह से कभी व्यवहार में न लाया गया। सेना में भी भारतीयों को ऊँचे पद न दिये जाते थे। जिन देशी सिपाहियों की मदद से अंग्रेजों ने भारत को जीता उनके साथ उन्होंने कभी बराबरी का व्यवहार न किया। भारतीय सैनिकों को अंग्रेज हमेशा घृणा की दृष्टि से ही देखते रहे। कहा जाता है कि जर्नल आर्थर वेलेजली घायल भारतीय सैनिकों को अस्पताल भेजने के बजाय, तोप के मुंह में बांधकर यमपुर भेज दिया करता था। अंग्रेजी बारिकों में हिन्दू और मुस्लिम सैनिकों के साथ ईसाई अफसरों का व्यवहार बहुत ही कठोर और अपमानजनक था। भारतीय सैनिकों को तनखाह भी बहुत कम मिलती थी। गोरे सैनिकों को जब कि सब प्रकार की सुभीताएँ प्राप्त थी, तो दूसरी तरफ भारतीय सैनिकों के कष्टों व सुभीताओं का कोई ध्यान न रखा जाता था। यही कारण था कि सन् १८२४ में कलकत्ता के निकट बारिकपुर छावनी के सैनिकों ने विद्रोह किया और सन् १८५७ के विद्रोह में तो सब से अधिक भाग भारतीय सैनिकों ने ही लिया।

शिक्षा और सामाजिक सुधार—हेस्टिंग्ज के समय में कलकत्ते में अरबी तथा फारसी की शिक्षा के लिए सन् १७८१ में एक 'मदरसे' की स्थापना की गई और सन् १७९१ में बनारस में संस्कृत कॉलेज की स्थापना हुई। किन्तु कम्पनी सरकार ने नियमित रूप से बहुत दिनों तक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान न दिया। अंग्रेजी भाषा की शिक्षा के प्रचार के लिए पहले-पहल कलकत्ता के निकट श्रीरामपुर में अंग्रेजी स्कूल स्थापित किये

गये। सन् १८१६-१७ में डेविड हेअर और राजा राममोहन राय ने मिल कर 'हिन्दू-कालेज' स्थापित किया।

सन् १८१३ में सरकार ने पहले-पहल शिक्षा के लिए एक लाख रुपया वार्षिक की स्वीकृति प्रदान की और कलकत्ते में कुछ स्कूल व कालेज खोले। सन् १८२३ में पंडित गंगाधर शास्त्री ने आगरा कॉलेज स्थापित किया।

इन सब कालेजों में अंग्रेजी भाषा द्वारा शिक्षा दी जाती थी। किन्तु सरकार ने अभी तक शिक्षा के संबंध में कोई नीति निश्चित न की थी। बेंटिंक के समय में यह प्रश्न सामने आया कि भारतीयों को किस भाषा द्वारा और कैसी शिक्षा दी जानी चाहिये? इस संबंध में दो मत थे। एक मत तो यह था कि भारतीयों को संस्कृत, अरबी तथा फारसी के साथ-साथ देशी भाषाओं में सब विषयों की शिक्षा देनी चाहिये। दूसरा मत था कि अंग्रेजी भाषा द्वारा अंग्रेजी साहित्य और पश्चिमी विज्ञान की शिक्षा दी जानी चाहिये।

अंग्रेजी के पक्ष में मैकाले का नाम सबसे मुख्य है। अन्त में उसी के मत की विजय हुई और सन् १८३५ में सरकार ने यह निश्चय किया कि अंग्रेजी द्वारा पश्चिमी विज्ञान की शिक्षा ही भारतीयों को दी जायगी और इसलिए शिक्षा के लिए जो धन दिया जाता है वह अब अंग्रेजी शिक्षा के देने में ही व्यय किया जायगा। अंग्रेजी शिक्षा को फैलाने के लिए सन् १८४४ में यह भी निश्चित कर दिया गया कि सरकारी नौकरियाँ पाने के लिए अंग्रेजी भाषा का जानना आवश्यक होगा।

हमारे लिए यही अच्छा था कि देशी भाषाओं द्वारा ही हमें पश्चिमी ज्ञान विज्ञान की शिक्षा दी जाती। इससे हम सरलता से पश्चिम के नये ज्ञान को ग्रहण कर सकते थे। किन्तु मैकाले और कंपनी की सरकार को भारतीयों की निजी उन्नति की चिन्ता ही कब थी? सरकार को तो अपना काम चलाने के लिए अंग्रेजी पढ़-लिखे क्लर्क-बाबूओं की आवश्यकता थी और मैकाले जैसे व्यक्तियों

का ध्येय अंग्रेजी विचारों और पाश्चात्य सभ्यता के प्रचार द्वारा भारतीय संस्कृति को नष्ट करना था। मैकाले ने तभी अपने एक पत्र में लिखा भी था कि अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार से तीस साल के अन्दर बंगाल में कोई मूर्तिपूजक न रह जायगा। यही ध्येय, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, ईसाई धर्म-प्रचारकों का भी था; पर इसमें अंग्रेजों को सफलता न मिल सकी।

भारतीय समाज में प्रचलित कतिपय बुराइयों को रोकने का भी सरकार ने प्रयत्न किया। मनौती के नाम पर कहीं-कहीं हिन्दू स्त्रियां बहुधा अपने पहले बच्चे को समुद्र या गंगा की भेंट कर दिया करती थीं। राजपूत और जाट आदि विवाह की कठिनाई से बचने के लिए 'कन्याओं' को मार भी डालते थे। सन् १८०२ में वेलेजली ने इस प्रकार की बाल-हत्या को कानून द्वारा बन्द करा दिया। उसने सती-प्रथा को भी रोकने की योजना बनाई। लेकिन इसमें उसे सफलता न मिल सकी। इन दिनों पति के मरने पर पति-भक्ता स्त्री अथवा सती अपने पति के शव के साथ ही जल जाया करती थी। यह प्रथा भारत में बहुत पुराने समय से प्रचलित थी। किन्तु तब 'सती' होना स्त्री की निजी इच्छा पर अवलम्बित होता था और जबरदस्ती किसी 'स्त्री' को सती होने के लिए विवश न किया जाता था। गर्भवती या नन्हे बच्चों की मां को सती होने का निषेध था। पर कालांतर में सती होना एक प्रकार से सब स्त्रियों के लिए जरूरी समझा जाने लगा। ऐसा होने से उन स्त्रियों को भी जबरदस्ती आग में ढकेला जाने लगा जो कतई सती होने को तैयार न रहती थीं। इस प्रकार सती प्रथा ने घृणित तथा अमानुषिक अत्याचार का रूप ले लिया था। सौभाग्य से १९ वीं शताब्दी के महान् सुधारक राजा राम-मोहन राय की सहायता से लार्ड विलियम बेंटिंक ने अंत में सन् १८२९-३० में सती-प्रथा को बन्द करने का कानून पास करके उसे जुर्म करार कर दिया।

बेंटिक के समय में ठग अथवा लुटेरो और डाकुओ का भी बडा जोर था। ठगो की गुप्त सस्था बन गई थी और उन म हिन्दू-मुसलमान सभी धर्म के लोग शामिल थे। इस के दल के दल देश भर में घूमा करते थे और यात्रियो की हत्या करके उनका माल छीन लेते थे। ये काली का पूजन किया करते थे। बेंटिक ने इनके दमन करने का कार्य कर्नल स्लीमैन को सौपा जिसने ६ वर्ष के भीतर अधिकाश ठगो को पकड कर खतम कर दिया।

सन् १८४३ में लार्ड एलिनबरो ने गुलामी प्रथा को कानूनी रूप से बन्द करा दिया। लार्ड हार्डिग्ज ने देशी राज्यो को भी सती-प्रथा को बन्द करने का निर्देश दिया और आदिम जगली जातिया में प्रचलित 'नर बलि' देने की प्रथा को बन्द करा दिया।

राष्ट्रीय ऋण और ब्रिटिश सरकार का कम्पनी से भारत को खरीदना—देशी राज्यो को जीतने में कम्पनी सरकार का जो भी व्यय हुआ वह भारत से ही वसूल किया गया था। इसके अलावा जब कभी मिस्र, जावा, बरमा, अफगानिस्तान और चीन आदि को अग्रेजो के स्वार्थ की रक्षा के लिए भारतीय सेनाएँ भेजी गयी तो उसका खर्चा भी भारत के सिरे पर ही लादा गया। इस प्रकार अग्रेजो के लाभ के लिए भारत को कर्जदार बन कर बेहद रुपया देना पडा। कहते है, केवल अफगान-युद्ध के कारण भारत को १५ करोड रुपया ऋण के रूप में चुकाना पडा था। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि अग्रेजो के राज्य विस्तार और स्वार्थ-साधन के लिए भारतीय जनता किस प्रकार कर्जदार ठहरा कर चूसी गयी।

सन् १८५८ में जब ब्रिटिश सरकार ने कम्पनी को हटा कर भारत का राज्य इगलैंड के राजछत्र के अधीन किया तो इसके बदले में कम्पनी को मूल्य के रूप में १२० लाख पौंड देना स्वीकार किया गया। इस प्रकार कम्पनी से इगलैंड सरकार ने भारत को खरीद लिया, लेकिन खरीद का रुपया भारत की जनता से ही वसूल करके कम्पनी को अदा किया गया।

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) स्थायी, रैय्यतवारी, महालवारी और मालगुजारी बन्दोबस्तों को समझाइये।

(२) सिंचाई के लिए कम्पनी सरकार ने क्या-क्या प्रयत्न किये ?

(३) कम्पनी के व्यापार और शासन का भारतीय व्यापार और उद्योग-धन्धों पर क्या प्रभाव पड़ा ?

(४) लार्ड डलहौजी ने शासन में क्या-क्या सुधार किये ?

(५) शिक्षा और सामाजिक सुधारों के लिए कम्पनी सरकार ने क्या-क्या प्रयत्न किया ?

अध्याय–११

महारानी विक्टोरिया का राज्य-काल

(१८५८–१९०१ ई०)

कम्पनी का अन्त और महारानी का घोषणापत्र—सन् १८५७ के विद्रोह के बाद इगलैंड की सरकार ने कम्पनी के हाथ से भारत का शासन अपने हाथ में ले लिया। इसके लिए अगस्त सन् १८५८ में एक कानून पास किया गया, जिसके अनुसार भारत इगलैंड के राजछत्र के अधीन कर दिया गया। इस तरह भारत का शासन अब पूर्ण रूप से ब्रिटिश-सरकार के हाथ में आ गया। अब से 'बोर्ड ऑफ कट्रोल' तोड दिया गया और उसके सभापति के स्थान पर एक 'भारत-सचिव' नियुक्त किया गया, जो 'सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इडिया' कहलाया। यह सचिव इगलैंड के मन्त्रिमडल का सदस्य होता था। उसको मदद देने के लिए एक समिति भी बनाई गई, जो 'इडिया कौंसिल' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

भारत का गवर्नर-जनरल अब से राज-प्रतिनिधि या वाइसराय कहलाने लगा। इस व्यवस्था के अनुसार लार्ड कैनिंग पहला वाइसराय हुआ।

नयी व्यवस्था का प्रारम्भ इगलैंड की महारानी विक्टोरिया के एक घोषणापत्र से किया गया। पहली नवम्बर सन् १८५८ को इलाहाबाद में एक दरबार किया गया और बडे समारोह के साथ लार्ड कैनिंग ने महारानी के घोषणापत्र को पढकर सुनाया। इसमें कम्पनी के सब कर्मचारियो को उनके स्थान पर बहाल रखने और देशी नरेशो के अधिकार और मान-मर्यादा की रक्षा करने का वचन देते हुए कहा गया कि 'इस समय भारत में जितना मेरा राज्य है, मैं उसे बढाना नही चाहती हू।' यथा—

"राजधर्म पालन करने के लिए जिस तरह मैं अपनी अन्यान्य प्रजाओ से प्रतिज्ञाबद्ध हू, उसी प्रकार भारत की प्रजा के प्रति भी प्रतिज्ञा-बद्ध रहूगी। ....।"

" ...... कोई व्यक्ति अपने धार्मिक विश्वास या रीतियो के कारण न किसी तरह अनुगृहीत किया जाय और न किसी तरह सताया या छेडा जाय।

"मेरी यह भी इच्छा है कि मेरी प्रजा को वह चाहे किसी जाति या धर्म की मानने वाली हो, अपनी विद्या, योग्यता और सच्चरित्रता के आधार पर ही बिना किसी पक्षपात के नौकरी दी जाय।"

"कानून बनाते समय तथा कानूनो को व्यवहार में लाते समय भारत के प्राचीन स्वत्व और रीति-रिवाजो का ध्यान रखा जाय।"

अन्त में विद्रोहियो के साथ दया का व्यवहार करने का वचन देते हुए यह भी कहा गया कि —

"... . भारत की कलाओ को बढ़ाने और लोकोपकारी कार्यों तथा सुधारो की ओर अधिक ध्यान देने तथा भारत की प्रजा के उपकार के लिए शासन करने की मेरी परम अभिलाषा है।"

यह घोषणापत्र पढ़ने और सुनने में अवश्य सुन्दर और मन-मोहक थे, लेकिन उसके वचनों को ब्रिटिश सरकार ने कभी पूर्ण रूप से कार्यान्वित नही किया।

शासन-नीति परिवर्तन—सन् १८५७ के विद्रोह से अंग्रेजी सरकार ने भविष्य के लिए बहुत कुछ सबक ग्रहण किया और अपनी शासन-नीति में तदनुसार कुछ आवश्यक परिवर्तन भी किये।

देशी राज्य—१८५७ के विद्रोह में देशी राज्यो के पदच्युत उत्तराधिकारियो ने सब से अधिक भाग लिया था। अत देशी राज्यो को खुश करने के लिए अब सन् १८५९ में राजाओ द्वारा पुत्र गोद लेने का अधिकार मान लिया गया, और जिन राजाओ ने विद्रोह के समय में अंग्रेजो की मदद की थी उन्हें पुरस्कृत किया

गया। अवध के ताल्लुकेदारो के साथ भी सद्व्यवहार किया गया। इससे खुश होकर ताल्लुकेदारो ने वाइसराय कैनिंग के नाम पर 'कैनिंग कालेज' की स्थापना की।

सैनिक संगठन—विद्रोह में देशी सैनिको न बहुत भाग लिया था। इसलिए अब सेना के सबध में यह नियम बना दिया गया कि तोपखाने में भारतीयो को न भरती किया जाय और देशी सैनिकों की जितनी सख्या हो कम से कम उसके आधे गोरे सैनिक अवश्य रखे जायें। अत गोरी सेना की सख्या ४५ हजार से ७० हजार कर दी गयी और तदनुसार भारतीय सेना की सख्या लगभग १३५००० रखी गई।

शस्त्र-कानून बनाकर भारतीय जनता को नि शस्त्र करके निहत्या भी बना दिया गया ताकि वे भविष्य में फिर कभी अग्रेजी जुल्मो के विरुद्ध शस्त्र न उठा सकें।

आर्थिक सुधार—विद्रोह के समय बहुत व्यय होने से सरकार पर ऋण बढ़ गया था और सालाना खर्चा पूरा न पडता था। इस दशा को सुधारने के लिए व्यापार, आमदनी और तमाखू पर टैक्स लगा दिया गया। नमक पर भी टैक्स बढा दिया गया। लेकिन इगलैंड के व्यापार का फिर भी ध्यान रखा गया और मैनचेस्टर के माल पर चुंगी बहुत कम कर दी गयी।

वैधानिक परिवर्तन—सन् १८६१ में 'इडियन कौंसिल ऐक्ट' पास किया गया। इसके अनुसार वाइसराय की 'एक्जीक्यूटिव कौंसिल' (कार्यकारिणी समिति) के सदस्यो की सख्या ५ कर दी गयी। कानून बनाने के लिए वाइसराय को 'लेजिस्लेटिव कौंसिल' (व्यवस्थापक सभा) के गैरसरकारी सदस्य मनोनीत करने का अधिकार दिया गया। इससे कुछ भारतवासियो को भी सदस्य बनने का अवसर मिला।

'सुप्रीम कोर्ट' तथा 'सदर अदालतों' के भेद उठा दिये गये और उनकी जगह कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में 'हाईकोर्ट' स्थापित

किये गये। मैकाले के समय से कानूनों का जो संग्रह तैयार किया जा रहा था, वह अब स्वीकार कर लिया गया और सारे भारत में जाब्ता दीवानी, ताजीरात हिन्द और जाब्ता फौजदारी जारी कर दिये गये।

बंगाल में किसानों को बहुधा बेदखल करके तंग किया जाता था। इस कारण सन् १८५९ में बंगाल, बिहार, आगरा और मध्य-प्रान्त के लिए यह कानून पास किया गया कि बारह वर्ष तक किसी खेत को जोतने से किसान का उसपर मौरूसी हक माना जायगा। सन् १८६९ में पंजाब और अवध के बहुत से किसानों को भी कानून बनाकर मौरूसी हक दे दिये गये।

निलहे गोरे गरीब किसानों पर बहुत अत्याचार करते थे और उनसे जबरदस्ती नील की खेती करवाते थे। सन् १८६० में सरकार ने इस मामले की जांच कराई और जबरदस्ती नील की खेती कराने से गोरों को रोका गया। लेकिन निलहे गोरे मजदूरों पर फिर भी अत्याचार करने से बाज न आये।

लार्ड एलगिन और सर जॉन लारेन्स—सन् १८६२ में लार्ड कैनिंग वापस चला गया और उसकी जगह लार्ड एलगिन वाइसराय नियुक्त हुआ। पर साल ही भर बाद सन् १८६३ पंजाब में उसकी मृत्यु हो गयी। तब सर जॉन लारेंस को वाइसराय के पद पर नियुक्त किया गया। वह पहले पंजाब का चीफ कमिश्नर रह चुका था और विद्रोह के समय उसने बहुत काम किया था।

अकाल, सार्वजनिक कार्य और ऋण—सन् १८६५ में उड़ीसा में बहुत भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा जिसमें लाखों आदमी मर गये। यदि बाहर से अन्न लाने का ठीक प्रबन्ध होता तो बहुत-सी जानें बच सकती थीं। अतः भविष्य में अकाल को रोकने के लिए उड़ीसा में सड़कें और नहरें बनाने का प्रबन्ध किया गया।

सन् १८६८ में बुन्देलखंड और राजपूताना में भी अकाल पड़ा। लेकिन बाहर से अन्न पहुँचाने का प्रबन्ध हो जाने से इसमें लोगों को अत्यधिक कष्ट न हुआ।

अकाल के प्रश्न पर सरकार ने एक कमीशन भी नियुक्त किया। कमीशन की रिपोर्ट पर 'अकाल रक्षा कोष' (फेमिन इश्योरेंश फड) स्थापित किया गया। अकाल पीडित जनता को सहायता पहुँचाने के लिए इस कोष में रुपया जमा किया जाने लगा। सरकार ने सार्वजनिक हित के कार्यों के लिए ऋण लेने की भी व्यवस्था की और नहरो तथा सडको के निर्माण पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा।

लार्ड मेयो, लार्ड नार्थब्रुक और लार्ड रिपन–सन् १८६९ में लार्ड लारेंस इगलैंड वापस चला गया और उसकी जगह लार्ड मेयो वाइसराय बनाया गया। सन् १८७२ में जब वह शासन-प्रबन्ध ठीक करने के लिए अडमन-द्वीप गया तो वही एक पठान कैदी न उसे मार डाला।

लार्ड मेयो ने सडकें बनवाई, स्कूल खोले और पुलिस का सु-प्रबन्ध किया। उसने देशी नरेशो के राजकुमारो को अग्रेजी ढग की शिक्षा देने के लिए अजमेर में राजकुमारो के लिए 'मेयो कालेज' की नीव डाली, पर इस कालेज के बनने का कार्य १८८५ में शुरू हुआ। लाहौर और राजकोट में भी इसी तरह के कोलेज खोले गये।

सन् १८७२ में लार्ड मेयो की जगह लार्ड नार्थब्रुक वाइसराय हुआ जिसने सन् १८७६ तक शासन किया। उसके बाद लार्ड लिटन (१२७६–१८८०) वाइसराय नियुक्त किया गया। लिटन का उत्तराधिकारी लार्ड रिपन हुआ जिसने सन् १८८४ तक शासन किया।

स्वतत्र व्यापार और लकाशायर का लाभ–१८५७ के विद्रोह के कारण सरकार को बहुत खर्चा उठाना पडा था जिससे कर्जा बढ गया। इस आर्थिक कठिनाई को हल करने के लिए कैनिंग की सरकार ने सेना और शासन के खर्च को घटाया और नमक पर टैक्स बढा दिया। इस उपाय से सरकार को जो कमी पड रही थी वह ठीक हो गयी। इसी समय से कागज का सिक्का भी चलाया गया।

कैनिंग ने बाहर से आने वाले माल पर थोडी सी चुगी बढा दी थी पर अंग्रेजी व्यापारियो के दबाव पर उसे कुछ ही समय बाद यह चुगी घटा देनी पडी। इगलैंड में औद्योगिक क्रान्ति होने से बेहद माल पैदा होने लगा था। अत इस बढ़े हुए माल को भारत में खपाने के लिए अग्रेज व्यापारी व्यापार की वस्तुओ पर चुगी न लगने देना चाहते थे। इगलैंड के अर्थ शास्त्रियो में इस समय 'स्वतन्त्र व्यापार' के सिद्धान्त की बडी चर्चा थी। इनका कहना था कि व्यापार की वस्तुओं पर चुगी न लगाने से वे सस्ती होगी जिससे दुनिया का लाभ होगा। इसी सिद्धान्त के आधार पर लकाशायर वाले भारत में आने वाले माल पर चुगी उठाने का जोर दे रहे थे। १८६० में बाहर से आने वाले माल पर १० प्रति सैकडा और बाहर जाने वाले माल पर ३ प्रति सैकडा चुगी थी। लकाशायर के व्यापारियो के दबाव से १८६४ में बाहर से आने वाले माल पर चुगी घटा कर ५ प्रति सैकडा कर दी गयी। पर लकाशायर वाले इतना भी न देना चाहते थे। अत सन् १८७५ में लार्ड नार्थब्रुक पर इस ५ फी सदी चुगी को भी उठा देने का दबाव डाला गया, पर वह इसके लिए राजी न हुआ। इगलैंड की सरकार ने तब भी लकाशायर के व्यापारियों का पक्ष लेना न छोडा और १८७९ में लार्ड लिटन की सरकार ने कौसिल के अधिकांश सदस्यो के विरोध के बावजूद सूती मोटे कपडे पर से चुगी उठा दी। सन् १८८२ में नमक, शराब और अस्त्र-शस्त्र के अलावा बाकी सब विलायती माल पर से चुगी उठा दी गयी। लेकिन दस साल बाद सन् १८९४ में सरकार ने अपना घाटा पूरा करने के लिए फिर से बाहर से आने वाले सूती माल पर ५ प्रति सैकडा चुगी लगा दी, लेकिन लका-शायर का तब भी खयाल रखा गया और भारतीय मिलो के बने कपडे पर भी उतनी ही चुगी कर दी गयी। १८९९ में विदेशी और भारतीय सभी कपडे पर ३॥ प्रति सैकडा चुगी कर दी गयी। लेकिन आखिर १९२६ में भारतीय कपडे पर की यह चुगी उठा दी गयी।

बडौदा और मैसूर—सन् १८७५ में ब्रिटिश सरकार ने बडौदा के महाराज मल्हारराव गायकवाड को कुप्रबन्ध के बहाने गद्दी से उतार दिया और उसी के घराने के एक लडके सय्याजीराव को बडौदा की गद्दी पर बिठाया। सय्याजी राव बहुत ही योग्य और कुशल शासक निकला। अत उसके समय में बडौदा रियासत ने आश्चर्यजनक उन्नति की।

बेंटिक के शासन-काल में (सन् १८३१) मैसूर का शासन ब्रिटिश सरकार ने अपने हाथ में ले लिया था। सन् १८८१ में यह रियासत फिर ५० वर्ष बाद मैसूर के राजा को वापस कर दी गयी।

दूसरा अफगान-युद्ध—पहले अफगान-युद्ध (१८३८–१८४२) में जैसे-तैसे विजयी होने पर भी अग्रेजो को काबुल में रुकने का साहस न हुआ था। उन्हें तब यह अनुभव हो गया था कि अफगानिस्तान से छेड-छाड करना या वहा के मामलो में दखल देना हितकर नही है। अत लार्ड लारेंस (१८६४–६९) जब गवर्नर-जनरल हुआ तो उसने अफगानिस्तान के मामलो में हस्तक्षेप न करने की नीति अपनायी।

सन् १८६३ में अमीर दोस्त मुहम्मद की मृत्यु हो गयी। इस पर उसके लडको में गद्दी के लिए झगडा होने लगा। यह झगडा कई वर्षों तक चला। अन्त में दोस्त मुहम्मद के छोटे लडके शेरअली की जीत हुई और वह अमीर बन गया (१८६९)। इस झगडे में लारेंस ने अ-हस्तक्षेप की नीति के अनुसार कोई दखल न दिया।

अग्रेजो की इस नीति से शेरअली असतुष्ट हो गया। इसी बीच रूस अफगानिस्तान की ओर बढता जा रहा था। अग्रेजो को रूस के इस बढाव से भारत के लिए खतरा नजर आने लगा। सन् १८७३ में बढते-बढते रूस ने खीवा पर अधिकार कर लिया। यह देख कर भारत-मत्री ने भारत के गवर्नर-जनरल लार्ड नार्थब्रुक को लिखा कि अमीर शेरअली पर अपने दरबार में अग्रेजी रेजीडेण्ट

रखने का जोर दो। नार्थब्रुक ने हस्तक्षेप की इस नीति को पसन्द न किया और इस्तीफा दे दिया। लार्ड नार्थब्रुक का कहना था कि अमीर की इच्छा के विरुद्ध रेजीडेण्ट रखने का अर्थ होगा अफगानिस्तान से युद्ध।

नार्थब्रुक की यह बात सही निकली। १८७६ में उसकी जगह लार्ड लिटन वाइसराय हुआ। लिटन ने अ हस्तक्षेप की नीति को त्याग दिया और अफगानिस्तान के मामले में दखल देने लगा। उसने सन् १८७६ में कलात के खा से क्वेटा ले लिया और अफगानिस्तान के अमीर पर अग्रेजी रेजीडेंट रखने को जोर दिया। अमीर ने अग्रेजी रेजीडेण्ट को रखना पसन्द न किया। इसी बीच रूस के दबाव पर शेर अली ने रूसी दूत से मित्रता की सधि कर ली। यह देख कर लिटन ने अपना दूत काबुल भेजना निश्चित कर लिया। अग्रेजों को सदेह करते देखकर रूस ने अपने दूत को काबुल से वापस बुला लिया। पर लिटन ने तब भी अपना दूत काबुल के लिए रवाना कर दिया। इसी पर झगडा बढ गया और मौका देखकर १८७८ में लिटन ने अफगानिस्तान के साथ युद्ध की घोषणा कर दी।

अग्रेजी सेना ने तीन तरफ से अफगानिस्तान पर आक्रमण किया। शेरअली हार कर तुर्किस्तान भाग गया और वहीं एक साल बाद उसकी मृत्यु हो गयी। शेर अली के लडके याकूबखा ने गन्दमक नामक स्थान पर अग्रेजो से सधि कर ली। इस सधि के अनुसार याकूब खा ने काबुल में अग्रेजी रेजीडेंट रखना और विदेशी नीति में अग्रेजों की सलाह लेना स्वीकार कर लिया। कुर्रम की घाटी पर अग्रेजों का अधिकार स्थापित हुआ और उन्होंने अपनी तरफ से बाहरी आक्रमण से अमीर की रक्षा करने और ६ लाख रुपया सालाना देने का वचन दिया। परन्तु कुछ ही समय बाद अफगानों ने अग्रेजी रेजीडेण्ट को मार डाला। इस पर फिर युद्ध छिड गया। याकूब कैद करके भारत भेजा गया और काबुल पर अग्रेजो का अधिकार हो गया।

याकूब खा की जगह शेरअली का एक भतीजा अब्दुर्रहमान काबुल का अमीर बनाया गया और हिरात तथा कन्दहार पर दूसरे सरदारो का अधिकार स्वीकार किया गया। इस तरह लिटन ने अफगानिस्तान में तीन स्वतत्र शासक स्थापित करके अफगानो की शक्ति छिन्न भिन्न कर दी।

लेकिन लिटन के बाद लार्ड रिपन ने अफगान सरदारो के विद्रोह से डर कर काबुल और कन्दहार से सन् १८८१ में अग्रेजी सेना को वापस बुला लिया। अग्रेजो के चले आने पर अमीर अब्दुर्रहमान ने हरात और कन्दहार के शासको को हरा कर उन पर अधिकार कर लिया। इस तरह अब्दुर्रहमान अब पूरे अफगानिस्तान का अमीर बन गया। अग्रेजो ने अफगानिस्तान के मामलो में अब अधिक हस्तक्षेप करना ठीक न समझ कर काबुल में रेजीडेण्ट रखने का विचार छोड दिया। अब्दुर्रहमान से केवल यह वचन ले लिया गया कि वह अग्रेजो के सिवाय किसी दूसरी शक्ति से राजनैतिक सबध न रखेगा।

प्रभाव जमाने की नीति अपनायी। इस कार्य के लिए लार्ड लैंसडौन के समय में सन् १८९३ में सर हेनरी मार्टिमर डूराड को अमीर के पास अफगान-भारत की सीमा निर्धारित करने को भेजा गया। डुराड का प्रयत्न सफल हुआ। सीमा के बहुत से झगडे तय हो गये और अमीर को जो सालाना रकम दी जाती थी, वह बढा दी गयी। अमीर ने अपनी तरफ से भारत की सीमा पर बसने वाली अफ्रीदी, वजीरी आदि जातियो के झगडो में हस्तक्षेप न करने का वचन दिया, और उनके इलाको पर से अपना आधिपत्य हटा लिया।

उत्तरी बरमा की विजय—उत्तरी बरमा में अग्रेजो को पूरी व्यापारिक सुविधाएँ न मिल रही थी। इससे अग्रेज वहा के राजा थीवा से अप्रसन्न थे। अग्रेजो के बजाय थीबा जर्मनी, इटली और फ्रास से सधि की बातें चला रहा था। सन् १८८५ में एक फ्रासीसी राजदूत भी मडाले आया था और वहाँ एक बैंक स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा था। ब्रिटिश सरकार ने फ्रास का यह प्रयत्न सफल न होने दिया। फ्रास का हिन्द-चीन राज्य, थीवा के राज्य से मिला हुआ था। अत अग्रेजो ने यह निश्चय किया कि उत्तरी बरमा में उस के पडोसी फ्रासीसियो का प्रभाव न जमने देने के लिए उसे अग्रेजी राज्य में मिला लेना चाहिये। इस निश्चय के अनुसार बिना किसी विशेष कारण के लार्ड डफरिन ने सन् १८८५ में थीवा पर आक्रमण बोल दिया। बरमी हार गये और उत्तरी बरमा अग्रेजी राज्य में मिला दिया गया (१८८६ ई०)। बरमा के राजा थीवा को कैद करके भारत भेज दिया गया। इस प्रकार भारत के पैसे और शक्ति से अग्रेजो ने लाठी के बल पर उत्तरी बरमा को भी हडप लिया।

सीमान्तों को सुदृढ़ करना—द्वितीय अफगान-युद्ध से क्वेटा अग्रेजो के अधिकार में आ गया था। ब्रिटिश सरकार ने अब अपने पूरे सीमान्त को सुदृढ़ करने की नीति अपनायी।

इस समय कश्मीर राज्य के आधीन गिल्गित मध्य एशिया में एक सैनिक महत्व का स्थान था। इस स्थान को लेने के हेतु सन् १८८९ में कश्मीर के राजा प्रतापसिंह को अंग्रेजो के विरुद्ध रूस से मिलने का दोषी बतला कर गद्दी से उतार दिया गया। राज्य का शासन कुछ सरदार तथा अंग्रेज अफसरो को सौंपा गया। बाद में महाराज प्रतापसिंह को फिर राज्य लौटा दिया गया, लेकिन गिल्गित में एक अंग्रेज अधिकारी स्थायी रूप से रहने लगा।

सन् १८९१ में आसाम की सीमा पर मनीपुर रियासत में गद्दी के लिए झगडा हुआ। ब्रिटिश सरकार ने मनीपुर के विद्रोही सेनापति को दबा कर वहाँ की गद्दी पर एक लडके को बिठा दिया। उसकी तरफ से बहुत दिन तक अंग्रेज अधिकारी शासन करते रहे। सन् १९०७ में मनीपुर के राजा को पूरे अधिकार दे दिये गये।

पर अधिकार कर लिया। ब्रिटिश सरकार ने तब चितराल से अंग्रेजी राज्य तक सडक बनाना और चौकिया स्थापित करना शुरू कर दिया।

चितराल के साथ अंग्रेजो के इस व्यवहार से सरहदी अफगान जातिया बिगड उठी। फलत १८९७ में सरहदी जातियो ने अंग्रेजो के विरुद्ध 'जेहाद' घोषित कर दिया। स्वात निवासियो ने अंग्रजी चौकियो पर धावा बोल दिया, महमन्द (काबुल नदी के उत्तर में रहने वाले) पेशावर तक बढ आये और अफीदियो ने खैबर के दर्रे को रोक दिया। पेशावर के दक्षिण-पश्चिम तीराह की घाटी में अफीदियो से अंग्रेजो को बहुत विकट युद्ध करना पडा। अन्त में बडी कठिनाई के बाद अंग्रेजो ने अफ्रीदियो के विद्रोह को दबा दिया (१८९८)। भविष्य में विद्रोहो को रोकने के लिए सरहद के प्रदेश में सेना रख दी गयी और सेना के आवागमन के लिए सडकें तथा रेलवे लाईन बना दी गयी। सन् १९०१ में एलगिन के उत्तराधिकारी लार्ड कर्जन ने उत्तर-पश्चिम के प्रदेशो को पजाब से अलग कर 'पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त' नाम से उनका एक अलग प्रान्त बना दिया।

रुपया और टकसालें—मुगल-काल में सोने और चादी के दोनो प्रकार के सिक्के प्रचलित थे। कम्पनी सरकार ने सन् १८३५ में समूचे अंग्रेजी भारत के लिए चादी के रुपये का सिक्का ही प्रचलित किया। यह चादी का रुपया पहले जनता अपने पास से चादी देकर सरकारी टकसालो में मनचाही मात्रा में बनवा सकती थी। चादी और रुपये के दाम तब एक ही सतह पर थे।

सन् १८७० में हमारा चादी का रुपया इगलैंड के पौंड का दशवा हिस्सा अर्थात् २ शिलिंग के बराबर माना जाता था। इसके बाद दुनिया में चादी की उपज बढ गयी जिससे सोने के सामने उसका मूल्य घट गया। परिणामत सन् १८९२ में रुपये का भाव भी गिर गया और पौंड के सामने उसका मूल्य १ शिलिंग १ पैंस

ही रह गया। रुपया सस्ता होने से भारतीय वस्तुओं वा उपज के दाम बढ़ गये। इससे व्यापारी और उद्योगधन्धे वालों तथा किसानों को फायदा हुआ। सरकार ने भी अपनी आय को पूरा करने के लिए मालगुजारी और टैक्स बढ़ा दिये। लेकिन लिटन, डफरिन, लैन्सडौन और एलगिन के समय युद्धों में बहुत-सा रुपया व्यय हो जाने से सरकार पर कर्जा बढ़ गया था। इसलिए टैक्स आदि बढ़ाने पर भी सरकार आय की कमी को पूरा न कर सकी। अतः सन् १८९३ में सरकार ने रुपये का मूल्य १ शिलिंग ४ पेंस निर्धारित किया और जनता के लिए टकसालें बन्द कर दी। टकसालें बन्द करने पर सरकार ने रुपये में अब उसके मूल्य के बराबर चादी न रखी। इस प्रकार रुपये का दाम बढ़ाकर सरकार ने अब "११ आने के सच्चे रुपये को १६ आने का झूठा रुपया बनाकर करदाता से धोखे से ४५ फी सदी अधिक कर वसूल करना शुरू किया।"

विकेन्द्रीकरण और स्थानीय स्वशासन—भारत में बहुत प्राचीन काल से 'स्थानीय स्वशासन' की प्रणाली प्रचलित थी। प्रत्येक गांव और नगर की अपनी-अपनी पंचायतें हुआ करती थी। ये पंचायतें अपने गांव व नगर की सफाई, स्वास्थ्य, शिक्षा, न्याय और रक्षा आदि का प्रबन्ध किया करती थी। ये पंचायतें एक प्रकार से—"आत्म-परिपूर्ण छोटे-छोटे राज्य जैसी थी।"

अंग्रेजी राज्य स्थापित होने पर पंचायतों के हाथ से सारे अधिकार सरकार ने अपने हाथ में ले लिये। परिणामतः पंचायतें धीरे-धीरे लुप्त होती चली गयी। सर टामस मुनरो ने ग्राम-पंचायतों को फिर से संगठित करने का प्रस्ताव रखा भी, लेकिन कम्पनी सरकार ने उसे स्वीकार न किया। प्रान्तीय सरकारों तक को बिना केन्द्रीय सरकार की आज्ञा के रुपया खर्च करने का अधिकार न था। प्रान्तीय सरकारें को हर साल बजट बनाकर केन्द्रीय सरकार को भेजना पड़ता था और वहां से स्वीकृति मिलने

पर उमी के अनुसार व्यय करना पडता था। प्रान्त के शासन में इससे बडी असुविधा पडती थी। कभी-कभी जरूरी कामो के लिए, जैसे बाढ या दुर्भिक्ष की कठिनाइयो को हल करने के लिए रुपये की मजूरी न मिलने या उस में देर होनेसे प्रान्तो को काफी दिक्कतें उठानी पडती थी।

अत जब लार्ड मेयो वाइसराय हुआ तो उसने इस दशा को सुधारने के हेतु प्रान्तो के लिए वार्षिक रकम निश्चित कर दी। इस रकम को खर्च करने के लिये प्रान्तीय सरकारों को पूरा अधिकार दे दिया गया, और साथ ही सरकारी भवनो, जेल, पुलिस, शिक्षा तथा सडकों के निर्माण आदि का कार्य भी उन्ही को सौंप दिया गया। इस सुधार से प्रान्तीय सरकार के कामो में काफी सुभीता हो गया।

लार्ड मेयो ने 'स्थानीय स्वशासन' की भी योजना बनायी जिसके अनुसार भारत सरकार ने बम्बई (१८७५) और कलकत्ता (१८७६) की नगर-सभाओं या म्युनिसिपैल्टियो को कुछ अधिकार दिये थे। पर इस ओर जिसने सबसे अधिक ध्यान दिया वह लार्ड रिपन था। लार्ड रिपन का मत था कि भारतवासियों को अपने देश के शासन प्रबध में भाग देना चाहिये। उसका यह भी कहना था कि हमें भारत की पुरानी पचायत या स्वशासन-व्यवस्था को जागृत करना चाहिये। उसने कहा—"हमने देशी स्वशासन-पद्धति को बहुत कुछ नष्ट किया है, पर तब भी उसके अवशेष देश के बहुत से भागो में विद्यमान है। मै इन्ही के आधार पर स्थानीय स्वशासन का भवन खडा करना चाहता हूँ।"

अत लार्ड रिपन ने जिला या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड स्थापित कराये, म्युनिसिपैल्टियो के अधिकार बढा दिये और जनता द्वारा सदस्यो को चुनने का प्रबन्ध किया। जिला बोर्डों को देहातो की सफाई, शिक्षा का प्रबन्ध और सडकें बनाने का काम सौंपा गया। उसने इस बात पर भी जोर दिया कि जिला तथा नगर सभाओ का अध्यक्ष गैर-सरकारी व्यक्ति होना चाहिये, पर बहुत समय तक ऐसा नही हो सका। उसका स्पष्ठ

कथन था कि जिला-बोर्डों में 'बड़े साहब' का हस्तक्षेप न होना चाहिये, पर बहुत समय तक यह भी न हो सका और ये बोर्ड सरकार के हाथ के कठपुतले ही बने रहे। गांवों की प्राचीन स्वशासन पद्धति को जागृत करने के उद्देश्य से तहसीलों में जो लोकल बोर्ड खोले गये उन्हें और भी सफलता न मिल सकी। वास्तव में अधिकांश 'बड़े साहब' लोग गांवों की पुरानी व्यवस्था को जागृत करने के पक्ष में न थे, इसलिए लार्ड रिपन का ग्रामों के आधार पर स्वशासन का भवन खड़ा करने का उद्देश्य सफल न हो सका।

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) १८५७ के विद्रोह के बाद ब्रिटिश-सरकार ने शासन-नीति में क्या-क्या सुधार किये?

(२) स्वतंत्र व्यापार की नीति से लंकाशायर को क्या लाभ हुआ?

(३) दूसरे अफगान युद्ध के कारणों और परिणामों पर प्रकाश डालिए।

(४) उत्तरी बरमा को क्यों, कब और कैसे हड़पा गया?

(५) लार्ड मेयो ने शासन में क्या सुधार किये और लार्ड रिपन ने स्वशासन के लिए क्या प्रयत्न किया?

—०—

अध्याय–१२

नव-चेतना का आरम्भ और भारतीय राष्ट्रीय महासभा की स्थापना

राजा राममोहन राय–१८वी १९वीं शती में राजनैतिक और आर्थिक ह्रास के बावजूद भारत में नव-जागृति के लक्षण भी प्रकट होने लगे थे। इस जागृति के अग्रदूत कतिपय सुधारक महापुरुष थे। ये सुधारक १९वी शती के आरम्भ से ही हमारे देश में अवतरित होने लगे, जिन्होने भारत को मोह-निद्रा से जगाने का प्रयत्न किया और परिवर्तित परिस्थितियो में हमको नया मार्ग और नया प्रकाश दिखाया। उनकी चेष्टाओ के परिणाम से भारत में नव-चेतना का स्फुरण हुआ और लोगो में अपनी गिरी हुई स्थिति से ऊपर उठने और ससार की उन्नति की दौड़ में आगे बढने के भाव फिर से जाग उठे।

इसमें सन्देह नही कि जागृति की इन भावनाओं को अंग्रेजी शिक्षा और पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान व साहित्य के अध्ययन से बहुत बल मिला और प्रेरणा प्राप्त हुई। पर इससे यह अर्थ लगाना गलत होगा कि नव-चेतना और जागृति केवल अंग्रेजी शिक्षा और पश्चिमी साहित्य के अध्ययन और प्रभाव से ही उत्पन्न हुई थी। स्मरण रहे कि १९वीं शती के प्रारम्भ में जो सुधारक व नेता पैदा हुए थे वे अंग्रेजी शिक्षा की उपज या प्रतिफल न थे।

इस समय के सबसे प्रसिद्ध नेता और महान सुधारक बंगाल के राजा राममोहन राय (१७७४–१८३३ ई०) और उनके बहुत से साथी पूर्वीय विद्याओं के ही अधिक ज्ञाता थे और अंग्रेजी भाषा व पश्चिमी विद्याओं का उन्हें उतना ज्ञान न था। अतः उनके भाव-विचारों पर अंग्रेजियत और पश्चिमी संस्कृति के बजाय भारतीय

सस्कृति की छाप ही अधिक थी। भारत के अर्वाचीन युग के प्रथम सुधारक राजा राममोहन राय ने २१ वर्ष का हो जाने के बाद ही अग्रेजी भाषा का अध्ययन आरम्भ किया था।

राजा राममोहन राय एक जागरूक सुधारक हुए। उन्होने अग्रेजी शिक्षा के प्रचार में बहुत सहायता पहुचाई। कलकत्ते के हिन्दू कॉलेज के सस्थापको में से वे भी एक थे। हिन्दू धर्म की बुराइयो को सुधारने में उन्होने बहुत काम किया और सती-प्रथा को बन्द करवाने में लार्ड बेंटिक का साथ दिया। धार्मिक मतभेदो को दूर कराने की भी उन्होने चेष्टा की। हिन्दू मुसलमान और ईसाइयो में मेल पैदा करने के लिए उन्होन तीनो धर्मों के मुख्य सिद्धान्तो को लेकर सन् १८२८ में ब्रह्म सभा या 'ब्रह्मसमाज' की स्थापना की। इस 'सभा' में सभी धर्मो के लोग प्रवेश पा सकते थे। इस में सम्मिलित होने वाले एक निर्गुण ईश्वर की उपासना करते और मूर्ति-पूजा पर विश्वास न रखते थे। लेकिन ब्रह्म-सभा कैसे कोई नया सम्प्रदाय न था और न राजा राममोहन राय ने ही हिन्दू धर्म को त्यागा था। वे वास्तव में अपने समय के महानतम हिन्दू थे, और इसलिए हिन्दू धर्म में पैदा हुई बुराइयो व सकीर्णता को दूर करने में अपनी सबसे अधिक जिम्मेदारी समझते थे। उनके सुधार-आन्दोलन का उद्देश्य ही यह था कि भारतीयो में और विशेषकर हिन्दुओ में जो सामाजिक दूषण और निरर्थक अधविश्वास

राजा राममोहन राय

उग आये हैं वे उन्मूलित हों और भारतवासी पश्चिम वालों की भांति ज्ञान विज्ञान के आधार पर जीवन और समाज के रहस्यों व प्रश्नों को जानने-समझने और हल करने की ओर प्रवृत्त हों। राममोहन राय का विश्वास था कि यदि भारतीय लोग भी नये ज्ञान विज्ञान और नई खोजों के प्रति जागरूक और सचेष्ट हो जाय तो वे संसार के सभ्य देशों के साथ उन्नति की दौड़ में कभी पीछे नही रह सकते। अतः इस विश्वास को लेकर राममोहन राय स्वयं भी हिन्दू धर्म, समाज और शिक्षा-प्रणाली आदि में जो त्रुटियां पैदा हो गयी थी उन्हें सुधारने और दूर करने का सततप्रयत्न करते रहे और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने ब्रह्म-समाज की स्थापना भी की।

राजा राममोहन राय के बाद सन् १८६५ में 'ब्रह्मसमाज' में दो दल हो गये। एक दल 'आदि ब्रह्म-समाज' कहलाया और दूसरा केवल 'ब्रह्म-समाज' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। 'आदि ब्रह्म-समाज' के प्रमुख नेता देवेन्द्रनाथ टैगोर हुए। उनके दल वाले निर्गुण ब्रह्म की उपासना करते और वेदों की मान्यता को स्वीकार करते थे। लेकिन 'ब्रह्म-समाज' वाले वेदों की मान्यता को स्वीकार न करते थे। उन पर पाश्चात्य विचारों का ही प्रभाव अधिक था और वे हिन्दू धर्म तथा समाज में तेजी से सुधार करने के पक्षपाती थे। इस दल के प्रमुख नेता

देवेन्द्रनाथ टैगोर

केशवचन्द्र हुए। नये अंग्रेजी पढ़े-लिखे नवयुवको पर उनके विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा। केशवचन्द्र के प्रचार से 'ब्रह्म-समाज' की शाखाएँ पंजाब, बम्बई और मद्रास में भी स्थापित हो गयी। उनके आन्दोलन के परिणाम से सन् १८७२ में सरकार ने नाबालिग लड़कियो के विवाह और बहुविवाह पर प्रतिबन्ध लगाया और विधवा-विवाह को मंजूरी प्रदान की।

प्रार्थना-समाज—ब्रह्म-समाज के आन्दोलन का सबसे अधिक प्रभाव महाराष्ट्र पर पड़ा और उसके सिद्धान्तो को लेकर वहा 'प्रार्थना-समाज' की स्थापना हुई (१८६७ ई०)। लेकिन केशवचन्द्र के ब्रह्म-समाज की तरह ''प्रार्थना-समाज' ने अपने को हिन्दू-धर्म की परिधि से पृथक नहीं किया, न अपने को किसी दूसरे धर्म का अनुयायी बतलाया। प्रार्थना-समाज ने पश्चिमी भारत में सामाजिक दुराइयो को दूर करने में प्राण-पण से चेष्टाएँ की। अन्तर्जातीय विवाह, खान-पान और विधवा-विवाह तथा अछूतोद्धार पर उन्होने बहुत जोर दिया और इन कार्यों को आगे बढाने के लिए अनाथालय, विधवाश्रम आदि पुण्य-संस्थाएँ स्थापित की। प्रार्थना-समाज के प्रमुख नेता और कार्यकर्त्ता जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे थे।

प्रेस और समाचार-पत्र—भारत के नव-जागरण में अंग्रेजी स्कूल और कालेजों के अलावा प्रेस और समाचार-पत्रो ने भी काफी काम किया। १९वीं सदी के आरम्भ में 'प्रेस' खुले और अंग्रेजी तथा देशी भाषाओं में पुस्तकें छपने लगी। अंग्रेजी-भाषा की पुस्तकों से लोगों को पश्चिमी विचारो का ज्ञान मिला। पुस्तको के अलावा समाचार-पत्र भी प्रकाशित हुए। पहला भारतीय समाचार-पत्र सन् १८१६ में प्रकाशित हुआ था। धीरे-धीरे समाचार-पत्रो की संख्या बढती चली गयी। इन पत्रो द्वारा लोगों को विभिन्न विचारो को जानने तथा दुनिया की हलचलो को पहिचानने का मौका मिला।

अलीगढ़ मुस्लिम कॉलेज—अंग्रेजी शिक्षा को हिन्दुओ ने काफी चाव से ग्रहण किया था, लेकिन मुसलमानो ने अंग्रेजी पढना

धार्मिक न समझ कर बहुत वर्षों तक इस ओर ध्यान न दिया। लगभग एक अर्द्ध शताब्दी तक वे अंग्रेजी का विरोध करते ही रहे। इससे नये ज्ञान को उपलब्ध करने में वे हिन्दुओं से पीछे पड़ गये। उत्तरी भारत के सर सैयद अहमद खां ने मुसलमानों की इस अव्यावहारिकता और गलती को समझ कर उन्हें अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया। सन् १८७७ में सर सैयद अहमद खां ने लार्ड लिटन के हाथों से अलीगढ़ मुस्लिम कॉलेज की स्थापना करवायी।

दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण और विवेकानन्द—सन् १८५७ के विद्रोह के बाद अंग्रेजों के दमन से भारतीयों की आत्मा दब सी गयी थी, जिस कारण लोगों का अपने ऊपर से विश्वास घट गया था। भारतीयों के इस खोये हुए विश्वास को लौटाने और उनमें फिर से आत्म-विश्वास पैदा कराने में स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द ने बहुत कार्य किया।
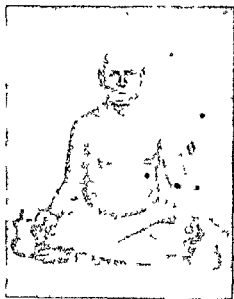
स्वामी दयानन्द

दयानन्द सरस्वती (१८२४–१८८३ ई०) गुजरात के रहने वाले और 'आर्य-समाज' के संस्थापक थे। वे अंग्रेजी पढ़े लिखे न थे। संस्कृत के वे प्रगाढ़ पंडित थे। उन्होंने भारतवासियों को धर्म के

निरर्थक अंधविश्वासों और पाखण्डों को छोड़ कर प्राचीन वैदिक आर्य-संस्कृति को अपनाने का आदेश दिया। वे एक ब्रह्म को मानते थे और मूर्तिपूजा को निरर्थक बतलाते थे। जाति-पाँति के भेद और बाल-विवाह तथा समुद्र-यात्रा के निषेध का उन्होंने जबरदस्त विरोध किया। विधवा-विवाह और स्त्री-शिक्षा का उन्होंने समर्थन किया। अ-हिन्दुओं को हिन्दू बनाने के लिए उन्होंने 'शुद्धि' पर जोर दिया। उन्होंने अपने धार्मिक विचार 'सत्यार्थ-प्रकाश' में सङ्कलित किये और अपने धार्मिक सिद्धान्तों का उन्होंने स्वयं घूम-घूम कर लोगों में प्रचार किया। पंजाब और उत्तर-प्रदेश में उनके धर्म का विशेष प्रचार हुआ।

उनके धार्मिक और सामाजिक सुधारों ने हिन्दू-समाज को नवीन स्फूर्ति और बल प्रदान किया। उन्होंने लोगों में 'स्वदेशीय-शासन' अथवा 'स्वराज्य' की भावना का प्रचार कर राजनैतिक जागृति भी उत्पन्न की। उन्होंने कहा कि 'स्वदेशीय राज्य सर्वोपरि उत्तम होता है", और विदेशी राज्य कभी भी सुखदायक नहीं हो सकता। उन्होंने प्रान्तीय भाषाओं में हिन्दी को सर्वदेशीय अथवा राष्ट्र-भाषा माना और उसी में ग्रन्थ लिखे। शिक्षा के प्रसार में भी उन्होंने तथा उन की संस्था आर्य-समाज ने काफी चेष्टा की। निसन्देह स्वामी दयानन्द सरस्वती और आर्यसमाज ने अपने प्रचार, सुधार तथा कार्यों द्वारा हिन्दू-जाति को सोये से जगा दिया और उन्हें फिर से उठने का बल, साहस तथा विश्वास प्रदान किया।

बंगाल के रामकृष्ण परमहंस (१८३४–१८८६ ई०) ने सब धर्मों में मेल स्थापित करने का स्तुत्य प्रयत्न किया। हिन्दू, मुसलमान और ईसाई आदि सभी धर्मों की एकता तथा सेवा और सुधार पर उन्होंन जोर दिया। इन कार्यों को आगे बढ़ाने के हेतु 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना हुई जो आज भी देश की सेवा कर रहा है। रामकृष्ण मिशन का ध्येय धार्मिक और सामाजिक सुधार तथा जन-मात्र की सेवा है। यह संस्था वैदिक सिद्धांतों पर आधारित है और मूर्ति-पूजा पर भी विश्वास करती है, लेकिन दूसरे धर्मों के विश्वासों को 'मिशन'

गलत नही बतलाता । रामकृष्ण का कहना था कि अल्लाह, हरि, ईसा, कृष्ण आदि सब एक ही ईश्वर के विभिन्न नाम हैं ।

रामकृष्ण के प्रसिद्ध शिष्यो में स्वामी विवेकानन्द का नाम सर्वोपरि है (१८६३–१९०२ ई०)। उनकी प्रतिभा और आध्यात्मिक शक्ति विपुल थी। उनके प्रचार से रामकृष्ण मिशन का इस देश के अलावा अमेरिका में भी प्रचार हुआ और अनेक मिशन के अनुयायी बन गए। उन्होंने घोषित किया कि यदि दुनिया रोज के युद्धो से बचना चाहती है तो उसे भारत को आध्यात्मिक गुरु मान कर उससे आध्यात्मिक शिक्षा लेनी चाहिए। अपने देशवासियो को भी उन्होंने सेवा के मार्ग द्वारा ऊपर उठने को ललकारा ताकि भारत फिर अपने गौरव पद को प्राप्त कर सके । इस प्रकार उन के प्रचार ने भारतीयो को अपनी हार मनोवृत्ति को त्यागने और उन्नति-पथ पर बढने की प्रेरणा तथा स्फूर्ति प्रदान की।
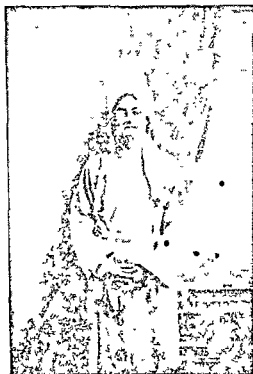
स्वामी विवेकानन्द

थियोसोफिकल सोसाइटी—इस सोसाइटी का जन्म पहले अमेरिका में हुआ। सन् १८८६ में यह सोसाइटी मदरास के निकट अदयार में स्थापित हुई। सन् १८९३ में मिसेज एनी बेसेंट भारत आकर इस सोसाइटी में सम्मिलित हुई। तभी से इसका कार्य यहां जोरों से चलना शुरू हुआ।

इस सोसाइटी ने सब धर्मों की एकता और सत्यता पर जोर दिया। इसके प्रवर्तकों का कहना था कि प्राच्य शास्त्र और ज्ञान बहुत महत्वपूर्ण हैं और भारत का उद्धार भारतीय विचारों के द्वारा ही हो सकता है। एनी बेसेंट की राय थी कि भारत का मुख्य ध्येय प्राचीन भारतीय संस्कृति और धर्म का पुनरुत्थान होना चाहिये। इस सिद्धांत को लेकर सोसाइटी ने भारत में जो सुधार-कार्य किया उससे भारतीयों में आत्मविश्वास और आत्मसम्मान की भावनाएँ जागृत हुईं और वे अपने देश के उत्थान के लिए जागरूक बन कर काम करने लगे। कुछ ही समय में सोसाइटी की शाखाएँ देश भर में स्थापित हो गईं। सोसाइटी ने सुधारों के साथ शिक्षा की ओर भी काफी ध्यान दिया। एनी बेसेंट के प्रयत्न से बनारस में सेंट्रल हिन्दू स्कूल खुला जो फिर कॉलेज हुआ और अन्त में उस ने हिन्दू यूनीवर्सिटी का रूप ग्रहण किया (१९१५ ई०)।
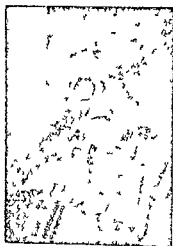
एनी बेसेंट

सोसाइटी के कार्यों से अनुप्राणित होकर जस्टिस रानाडे ने शिक्षा के प्रचार और प्रसार के लिए सन् १८८४ में दक्खन एज्युकेशन सोसाइटी को स्थापित किया। इस सोसाइटी के कार्यकर्ता

नाममात्र का पुरस्कार लेकर शिक्षा-प्रचार का कार्य करते रहे। सोसाइटी के जीवन-सदस्यों में प्रसिद्धि प्राप्त गोपाल कृष्ण गोखले (१८६६–१९१५) भी एक थे।

राष्ट्रीय महासभा या कांग्रेस–इन सुधारों तथा शिक्षा के प्रसार का प्रभाव राजनैतिक क्षेत्र में भी पड़ा। सन् १८५७ के विद्रोह से दबी हुई भारत की आत्मा फिर से जाग उठी। भारतीयों को अपने देश की पराधीनता और देशवासियों का अपमान तथा अनादर चुभने लगा। सरकार की अनुदार नीति, युद्धों के कर्जे, दमन और दुर्भिक्षों के कारण जनता में असंतोष बढ़ने लगा।

अंग्रेजी पढ़ा-लिखा समाज भी सरकार से असंतुष्ट था। सन् १८३३, फिर १८५८ और फिर १८६१ में सरकार ने बार-बार यह घोषित किया था कि बिना किसी जाति-धर्म अथवा वर्ण का विचार के सरकारी ओहदे सभी योग्य व्यक्तियों को दिये जायँगे, परन्तु कार्यरूप में ऐसा नहीं किया जा रहा था। लार्ड लिटन ने स्वयं इस बात को कहा है कि जो प्रतिज्ञाएँ की गई थीं उन्हें तोड़ा गया है।

इस नीति के कारण सरकार ने श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को आई० सी० एस० पास करने पर भी कठिनता से नौकरी दी और बाद में बहाना बनाकर उन्हें हटा दिया। इस घटना का बनर्जी पर गहरा प्रभाव पड़ा और भारतीयों के अधिकार-रक्षा के लिए सन् १८७६ में उन्होंने कलकत्ते में 'इंडियन एसोसियेसन' की स्थापना की। इस एसोसियेसन का ध्येय सारे भारत को एक सूत्र में बांधना तथा शिक्षित वर्ग को सिविल सर्विस में बैठने की सुविधाएँ दिलाना था। इस हेतु बनर्जी ने स्वयं उत्तर-प्रदेश और पंजाब की यात्रा की और आम सभाओं में भाषण देकर लोकमत जागृत किया। इस प्रकार लोकमत को जागृत करने और लोगों को अपने राजनैतिक अधिकारों के प्रति जागरूक करने में सबसे पहले ऐसोसियेसन ने आगे कदम बढ़ाया और बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त की।

लार्ड लिटन के समय में शस्त्र-कानून और वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट के विरुद्ध भी आन्दोलन चला। सन् १८८३ में इलबर्ट बिल की घटना ने भारतीयो की आँखें पूरी तरह से खोल दीं। पहले यूरोपियनों के मुकदमे भारतीय मजिस्ट्रेट और जज नहीं कर सकते थे। इस जाति-भेद को हटाने के लिए लार्ड रिपन के समय में कानूनी सदस्य इलबर्ट ने एक बिल पेश किया (१८८३) जो इलबर्ट बिल के नाम से प्रसिद्ध है। इस बिल का गोरे अंग्रेजो ने विरोध किया। अपने विरोध को व्यापक बनाने के लिए उन्होंने 'सुरक्षा सघ' (डिफेन्स एसोशियेसन) स्थापित किया और, चन्दे से रुपया भी एकत्र किया। उनके आन्दोलन से घबडा कर लार्ड रिपन ने अन्त में इलबर्ट बिल में कुछ सशोधन कर गोरे अभियुक्तों का 'जुरी' (जिसमें आधे यूरोपियन और आधे भारतीय जज हो) द्वारा मकदमा कराने का अधिकार मजूर कर लिया।

यूरोपियन व अंग्रेजो के इस विरोध से भारतीयो के सम्मान को बहुत चोट पहुँची। इसके प्रतिकार के लिए सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने तब 'भारतीय राष्ट्रीय कान्फ्रेंस' और 'राष्ट्रीय कोष' की स्थापना की (१८८३), जिसमें सारे भारत के प्रतिनिधियो ने भाग लिया।

इस बढ़ते हुए असतोष को देख कर कुछ विचारशील अंग्रेजों ने भी भारतवासियों का पक्ष लिया। इन अंग्रेज राजनीतिज्ञो ने सोचा कि यदि भारतीय जनता में इसी तरह अन्दर ही अन्दर असतोष बढ़ता चला गया तो किसी दिन वह फूट कर विस्फोट पैदा कर देगा। अत ह्यूम साहब (ये इटावा के कलक्टर रह चुके थे) ने यह निश्चय किया कि भारतीयो के लिए एक ऐसी सस्था होनी चाहिये जिसके द्वारा वे अपनी भावनाओं और कष्टों को प्रकट कर सकें। इस सबध में उसने लार्ड डफरिन से भी सलाह ली और उनकी अनुमति प्राप्त कर ली। ह्यम ने अपने समय के प्रसिद्ध भारतीयों से भी इस बारेमें राय की और श्री वेडरबर्न तथा श्री दादा भाई नौरोजी की सहायता से सन् १८८५ में 'इडियन नेशनल

काग्रेस' (भारतीय राष्ट्रीय महासभा) की स्थापना कर दी गई। इस महासभा का पहिला अधिवेशन कलकत्ता के श्री उमेशचन्द्र बनर्जी के सभापतित्व में बम्बई में हुआ। इसकी स्थापना होने पर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की 'इडियन नेशनल कान्फ्रेन्स, भी इसी में मिल गयी।

इंडियन कौंसिल ऐक्ट १८९२—राष्ट्रीय महासभा ने सरकार के शासन की जाच कराने, इडिया कौंसिल को तोडने, भारतीयो को ऊँचे पद देने, आई० सी० एस० की परीक्षा का केन्द्र भारत में भी स्थापित करने तथा प्रान्तो की व्यवस्थापक सभाओ को निर्वाचित बनाने की मागें रखी। इन मागो के फलस्वरूप सरकार ने 'सभाओ' म सुधार लाने के लिए १८९२ में 'इडिया कौंसिल ऐक्ट' पास किया।

१८६१ के इडियन कौंसिल ऐक्ट के अनुसार वायसराय की कार्यकारिणी-सभा (Executive Council) के सदस्यो की सख्या ४ से बढ़ा-कर ५ कर दी गयी थी और कानून बनाने के लिए वाइसराय को व्यवस्थापक सभा (Legislative Assembly) के गैर-सरकारी सदस्य नामजद करने का अधिकार भी दे दिया गया था। इस तरह भारतवासियो को व्यवस्थापक सभा में प्रवेश करने का अवसर मिला। पर सरकारी सदस्यो की सख्या अधिक होने से सरकार के अधिकारो में किसी प्रकार की कमी नही आई। इस ऐक्ट के अनुसार बडे-बड़े प्रान्तो को भी व्यवस्थापक सभा या कौंसिल स्थापित करने के अधिकार दिये गये थे।

अब १८९२ के इडियन कौसिल ऐक्ट के अनुसार केन्द्रीय तथा प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं की सख्या पहले से कुछ और बढा दी गयी और म्युनिसिपैल्टियो, जिला-बोर्डों और यूनिवर्सिटियों आदि को व्यवस्थापक सभाओ के लिए अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार मिला। केन्द्रीय व्यवस्थापक सभा या कौंसिल के गैर-सरकारी सदस्यों में से ४ को चुनने का अधिकार प्रातीय सभाओं के गैर-सरकारी सदस्यो को दे दिया गया। इस प्रकार चुनने के सिद्धात का

श्रीगणेश हुआ, पर बहुपक्ष फिर भी प्रान्त तथा केन्द्र में सरकारी सदस्यो का ही रहा। अब से केन्द्रीय व्यवस्थापक सभा या कौंसिल में वार्षिक बजट भी पेश होने लगा और सदस्यो को बजट पर प्रश्न पूछने और विचार प्रकट करने का अधिकार दिया गया, पर 'मत' देने का उन्हें अधिकार न था। शिक्षित समाज इन सुधारो से सतुष्ट न हुआ। कांग्रेस का कहना था कि ये सुधार ना-काफी है, और इन से कौंसिलो में जाने के लिए अपने प्रतिनिधियो को चुनने का अधिकार जनता को नही मिला है।

अत इन सुधारो को स्वीकार करते हुए राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) ने आन्दोलन को जारी रखने का निश्चय किया।

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) ब्रह्मसमाज का सस्थापक कौन था? उनके बारे का हाल बतलाइये।

(२) ब्रह्म-समाज और आदि-ब्रह्म-समाज में क्या अन्तर था? प्रार्थना-समाज कहा और क्यों स्थापित हुए?

(३) स्वामी दयानन्द, रामकृष्ण परमहस और स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय समाज की किस प्रकार सेवाएँ की?

(४) राष्ट्रीय महासभा का क्यो और कैसे जन्म हुआ?

(५) १८९२ के इडियन कौंसिल ऐक्ट को समझाइये।

— ०० —

अध्याय १३

जाग्रत भारत

ईरान की खाड़ी पर अधिकार—एशिया के देशों को लूट-खसोटने और उन पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए यूरोप के सभी देश लालायित थे। इनमें से इंगलैंड ने भारत जैसे विशाल देश को दबा कर दूसरों से बाजी मार ली थी। भारत के पैसे और सेना से इंगलैंड ने चीन और मिस्र में भी अपना प्रभाव स्थापित कर लिया था। ईरान की खाड़ी पर सत्रहवीं शती से ही अंग्रेजो ने एकाधिकार स्थापित कर रखा था। सन् १८५३ में अन्य राष्ट्रों के जहाज भी यहा से आने-जाने लगे थे। लेकिन अंग्रेज इस के तटो पर किसी दूसरे राष्ट्र का अधिकार सहन न करते थे। अतः जब १८९८ और १९०० मे फ्रास, रूस और जर्मनी ने ईरान की खाड़ी के तटों पर बन्दरगाह बनाने की कोशिश की तो अंग्रेजों ने उन्हें रोक दिया। सन् १९०३ में ब्रिटिश सरकार ने यह स्पष्ट घोषित कर दिया कि किसी दूसरे राष्ट्र द्वारा खाड़ी के तट पर किला या स्टेशन बनाना ब्रिटिश हित के विरुद्ध समझा जायगा। इस समय लार्ड कर्जन यहा का वाइसराय था। ईरान की खाड़ी की रक्षा का प्रबन्ध करने के लिए वह स्वयं वहा गया। इस प्रकार इस होड़ में भी अंग्रेजो की ही विजय हुई।

ल्हासा पर आक्रमण—हिमालय के उत्तर मे तिब्बत का राज्य है। इसकी राजधानी ल्हासा है। लार्ड कर्जन के समय में रूस का तिब्बत से संबंध बढ रहा था। कर्जन रूस के इस बढते हुए प्रभाव को सहन न कर सका। इसी पर तिब्बत से झगड़ा हुआ और कर्जन ने उसे दबाने के लिए सन् १९०४ में ब्रिटिश सेना भेजी। तिब्बत का शासक दलाई लामा भाग गया और अंग्रेजों ने ल्हासा पर अधिकार कर लिया। लामा के प्रतिनिधि ने तब अंग्रेजो से संधि कर

की। संधि के अनुसार अंग्रेजों को व्यापारिक सुविधाएँ दे दी गईं और यह भी मान लिया गया कि अंग्रेजों के अलावा तिब्बत किसी दूसरे से राजनैतिक संबंध न रखेगा।

राष्ट्रीय आन्दोलन और कर्जन की दमन-नीति—लार्ड कर्जन के आने से काफी पहले भारत में राष्ट्रीय कांग्रेस स्थापित हो चुकी थी और भारतवासी अपने अधिकारों के लिए आन्दोलन करने लगे थे। १८९२ में जो थोड़े बहुत सुधार 'कौंसिलों' में किये गये वे इसी आन्दोलन के परिणाम थे। सन् १८९६ और १९०३ के भीतर भारत में बड़े जोरों का प्लेग फैला जिसमें लगभग २० लाख आदमी चल बसे। सन् १८९८ में और फिर १९०० में दो बार उत्तरी भारत के प्रान्तों तथा गुजरात में भीषण अकाल पड़ा। इससे जनता में अंग्रेजी शासन के प्रति बहुत असंतोष पैदा हुआ। कांग्रेस ने बार-बार सरकार को यह सलाह दी कि जहां तक संभव हो देश में स्थायी बन्दोबस्त कर देना चाहिये, लगान कम कर देना चाहिए, अंग्रेज अफसरों की लम्बी-लम्बी तनख्वाहें कम करने के लिए भारतीयों को ऊँचे ओहदे देने चाहिये तथा देश के उद्योगों और शिल्पों को प्रोत्साहन देना चाहिये। परन्तु कांग्रेस की इस रट पर सरकार ने ध्यान देने से मुंह फेर लिया।

सन् १८९९ में लार्ड कर्जन यहाँ का वाइसराय बनाया गया था। उसकी राय में भारत का शासन अंग्रेजों के लिए "ईश्वरदत्त" था। अतः वह देश के नेताओं और शिक्षित वर्ग की बातें सुनने के लिए तैयार न था, और अपने को भारत की जनता का संरक्षक मानता था। वह जैसा संरक्षक था उस का प्रमाण उसकी फिजूल खर्ची से साबित हो जाता है। सन् १९०१ में विक्टोरिया के मरने पर उस का लड़का एडवर्ड सप्तम गद्दी पर बैठा। इस के उपलक्ष में लार्ड कर्जन ने सन् १९०३ में दिल्ली में एक बहुत बड़ा दरबार करके लाखों रुपया फूंक दिया। दरबार का यह तमाशा उस समय किया गया जब कि लोग १९००–१ के अकाल के कष्टों से अभी तक पीड़ित

थे। तब कांग्रेस के सभापति ने कहा था कि जितना रुपया दरबार में फूंका गया, यदि उसका आधा भी अकाल पीड़ितों के लिए खर्च किया जाता, तो लाखों मनुष्यों के प्राण बच सकते थे।

इसी तरह अपने स्वार्थ-साधन के लिए लार्ड कर्जन ने भारत के पैसे और भारत की सेना द्वारा तिब्बत आदि पर अधिकार जमाया। सन् १८५८ में यह घोषित किया जा चुका था कि भारत का पैसा भारत की रक्षा पर खर्च करने के अलावा किसी दशा में उस की सीमाओं के बाहर खर्च न किया जायगा। अतः कांग्रेस को सरकार की युद्ध-नीति से भी असंतोष था और इसका भी उसने विरोध किया। लेकिन इन विरोधों पर कर्जन ने ध्यान देने की कोई आवश्यकता न समझी। वेलेजली और लार्ड डलहौजी की तरह वह निरंकुशता के साथ शासन करने का आदी था। उसे भारतीयों का विरोध पसन्द न था। इसलिए राष्ट्रीय जागृति और विरोध की भावना को दबाने के लिए उसने दमन-नीति से काम लिया।

उच्च शिक्षा के प्रचार से लोकमत जागृत हो रहा था, इसलिए सन् १९०४ में उसने 'यूनिवर्सिटीज ऐक्ट' पास कर के यूनीवर्सिटियों पर सरकारी नियंत्रण बढ़ा दिया। कॉलेजों की फीस भी बढ़ा दी गयी।

बंगाल में इस समय राष्ट्रीयता की भावना तीव्र हो रही थी। इस भावना को बढ़ने से रोकने के लिए लार्ड कर्जन ने सन् १९०५ में बंगाल को दो भागों में विभाजित कर आसाम और पूर्वी बंगाल का अलग प्रान्त बना दिया। ऐसा करने में उसके दो मुख्य उद्देश्य थे—(१) बंगाल की संयुक्त शक्ति को नष्ट करना और (२) हिन्दुओं को दबाने के लिए मुसलमानों का बल बढ़ाना। पूर्वी बंगाल में मुस्लिम जनता अधिक है, इसलिये यह प्रकट किया गया कि बंग-भंग करने का उद्देश्य मुसलमानों के हितों की रक्षा है।

लार्ड कर्जन की इस दमन और भेद नीति से भारत में गहरा असंतोष फैला। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि बंगाल के नेताओं ने बंग-भंग को उठाने के लिए सरकार पर जोर दिया। लेकिन लार्ड

कर्जन ने कोई बात सुनने से अपने कान बन्द कर लिये। इस पर बंगाल के नेताओं ने स्वदेशी का आन्दोलन उठाया और विलायती माल का बहिष्कार करने लगे। कांग्रेस ने भी 'स्वदेशी और बहिष्कार' के आन्दोलन में सहयोग दिया। इस प्रकार सभी प्रान्तों में विलायती माल का बहिष्कार होने लगा और स्वदेशी उद्योग-धन्धों को बढ़ाने का प्रयत्न किया गया। इससे राष्ट्र के आन्दोलन में एक नयी तीव्रता और जीवन आ गया।

निःसन्देह लार्ड कर्जन की दमन-नीति से स्वदेश प्रेम और राष्ट्रीयता की भावनाओं को उत्तेजना ही प्राप्त हुई, जिसके लिए भारत उसका कृतज्ञ रहेगा। इसी समय सन् १९०५ में एशिया के छोटे से राष्ट्र जापान ने यूरोप के दैत्य रूस को बड़ी बुरी तरह से युद्ध में पछाड़ डाला। जापान की विजय का हमारे देश पर गहरा प्रभाव पड़ा। एशियाई लोग अब तक यह समझ बैठे थे कि यूरोप वाले अजय हैं, लेकिन विजयी जापान ने एशिया वालों को यह विश्वास दिला दिया कि अपनी शक्ति को संगठित करके वे भी गोरे यूरोपियनों को पछाड़ सकते हैं। इस नये विश्वास ने भारत ही नहीं अपितु चीन, ईरान और तुर्की के राष्ट्रीय आन्दोलनों में नई जान फूंक दी।

इन भावनाओं से उत्तेजित होकर भारत के कुछ नवयुवकों ने एक क्रान्तिकारी दल स्थापित किया जो दमन का जवाब 'शस्त्रों' से देना चाहता था। बंगाल और महाराष्ट्र क्रान्तिकारियों के अड्डे बने। क्रान्तिकारी दल ने गुप्त समितियां स्थापित कीं और अंग्रेजों पर बम फेंके जाने लगे। मुजफ्फरपुर में मजिस्ट्रेट पर बम फेंका गया जिसमें मजिस्ट्रेट के बजाय दो अंग्रेज महिलाओं के प्राण गये। इसी तरह और जगहों में भी अंग्रेजों पर बम पड़े और हत्याएँ हुईं।

इसी समय सरकार की दमन-नीति से महाराष्ट्र के ब्राह्मण नेता श्री बाल गंगाधर तिलक के नेतृत्व में कांग्रेस में भी एक गरम दल पैदा हो गया। तिलक और उनके दल का कहना था कि सरकार पर विश्वास करना और सुधारों के लिए उससे प्रार्थना करना

निरर्थक है। उनका विश्वास था कि स्वयं प्रयत्न करने से ही हम सुधार तथा अधिकार प्राप्त कर सकते हैं। नरम दल वाले इस नीति का विरोध करने लगे। नरम दल के नेता श्री गोपाल कृष्ण गोखले, सर फीरोज शाह मेहता और बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी थे। विरोध बढ़ने पर गरम दल वालों ने तिलक के नेतृत्व में कांग्रेस छोड़ दी। तिलक पेशवा कुल के थे। उन्होंने भारतीयों को विगत काल के गौरवपूर्ण इतिहास का स्मरण कराया और उनमें राष्ट्रीय भावना जगायी। अपने राष्ट्रीय भावों को फैलाने के लिए उन्होंने लेख लिखे और 'केसरी' नाम का पत्र प्रकाशित किया।

तिलक के राष्ट्रीय भावों से पूर्ण लेखों से सरकार भड़क उठी। वह यह भी सोचने लगी कि बम्ब फेंकने वालों में शायद तिलक और गरम दल वालों का भी हाथ है, यद्यपि उसका यह सोचना सरासर भूल थी। अतः सरकार ने गरम दल वालों को दबाने की इच्छा से सरकार-विरोधी लेख लिखने के अपराध में तिलक को ६ साल की सजा देकर मंडाले भेज दिया (१९०८)। इसी तरह बंगाल में भी कई एक गरम दली नेता पकड़ लिये गये और पंजाब से श्री लाला लाजपतराय तथा अजीतसिंह बरमा में निर्वासित कर दिये गये। लेकिन इस दमन के बावजूद क्रान्ति की लहर बढ़ती और फैलती ही चली गयी। सच ही कहा है कि दमन और अविश्वास से स्वदेश-प्रेम और राष्ट्रीयता की भावनाओं को उत्तेजना और बल ही प्राप्त होता है।

पर, कांग्रेस के आन्दोलन में सभी वर्गों ने प्रारम्भ में पूरा साथ न दिया। नई शिक्षा का विरोध करने से मुसलमानों में पूरी जागृति न आ सकी थी। अतः उनमें से बहुत कम आरम्भ में कांग्रेस में शामिल हुए। अंग्रेजों ने भी यह कोशिश की कि जहां तक हो मुसलमान कांग्रेस के आन्दोलन में न घुसें। अतः बंग-भंग के समय से सरकार हिन्दुओं और मुस्लिमों में भेद पैदा करने का जोरों से प्रयत्न करने लगी। सरकार का इशारा और सहारा पा कर पूर्जा-

पति वर्ग के कुछ सरकार-भक्त मुस्लिम नेता आगा खां आदि सन् १९०६ में लार्ड मिण्टो से मिले। उन्होंने अंग्रेज वाइसराय को मुसलमानों की राज भक्ति का विश्वास दिलाया और यह माग की कि सरकार को उन के राजनैतिक महत्व का ध्यान रखना चाहिये और कौंसिलों में जाने के लिए मुसलमानों को अपना प्रतिनिधि अपने आप चुनने का अधिकार मिलना चाहिये। सुधार की योजना बनने पर लार्ड मिण्टो ने इन बातों का ध्यान रखने का वचन दे दिया। सरकार का सहारा पाकर इन नेताओं ने अपने स्वत्वों की रक्षा के लिए अलग से सन् १९०६ में कांग्रेस के ढग पर 'मुस्लिम लीग' की स्थापना की। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस का गला दबाने का हर तरह से प्रयत्न किया।

मार्लो-मिण्टो सुधार—लार्ड कर्जन के बाद लार्ड मिण्टो वाइसराय नियुक्त हुआ था। वह जब यहा आया तो बग-भग के कारण राष्ट्रीय आन्दोलन जोर पकड चुका था। जॉन मार्लो इस समय भारत-सचिव था। उसने नरम दल को खुश रखने की नीति अपनायी ताकि गरम दल के 'स्वराज्य' की माग दबाई जा सके। इसके लिए उसने कुछ 'सुधारों' को देने की योजना बनायी। भारत की राजनैतिक हलचल को देख कर वाइसराय मिण्टो ने भी सुधारों की आवश्यकता प्रतीत की। तीन साल तक मार्लो और मिण्टो में सुधारों के बारे में बातें चलती रही। अन्त में सन् १९०९ में इग-लैंड की पार्लियामेंट ने सुधार-बिल पास कर दिया। इसके अनुसार केन्द्रीय तथा प्रान्तीय व्यवस्थापक-सभाओं की सख्या बढा दी गयी और निर्वाचित सदस्यों की सख्या पहले से अधिक कर दी गयी। सदस्यों को प्रस्ताव करने और सवाल पूछने का अधिकार दिया गया, लेकिन बजट पर विचार के अलावा 'मत' देने का अधिकार न दिया गया। केन्द्रीय और प्रान्तीय शासन-समितियों में एक-एक, दो-दो भारतीय सदस्यों को रखने का भी निश्चय किया गया।

लार्ड मिन्टो के दिये वचनानुसार मुसलमानो को अपने प्रतिनिधि अलग चुनने का अधिकार भी दे दिया गया।

इस प्रकार अधकचरे सुधार तथा साम्प्रदायिक निर्वाचन का अधिकार देकर अग्रेजी सरकार ने मुसलमान और अ-मुसलमानो के बीच एक खाई पैदा कर दी जिससे भारत के हिन्दू, मुसलमान और अन्य लोग धार्मिक मतभेदो में उलझे रह कर साथ-साथ न खडे हो सकें।

क्रान्तिकारी दल की हलचल—अत इन सुधारो से राजनैतिक अशाति दूर न हुई और क्रान्तिकारी दल हलचल मचाता ही रहा। इस राजनैतिक अशाति को रोकने के लिए मिन्टो की सरकार ने 'दमन' से काम लिया और जगह-जगह क्रान्तिकारियो की धर-पकड होने लगी। सरकार के दमन के फल से क्रान्तिकारी अजीतसिंह अपने कुछ साथियो के साथ भाग कर ईरान चले गये। जर्मन राष्ट्र के प्रबल हो जाने से इस बीच १९०७ में इगलैड ने रूस से पुरानी शत्रुता भूल कर सधि कर ली थी और ईरान में अपने प्रभाव-क्षेत्र स्थापित कर लिये थे। उत्तरी ईरान रूस का और दक्षिण-पूर्वी ईरान इगलैड का प्रभाव-क्षेत्र मान लिया गया था। अजितसिंह आदि ईरान पहुँच कर रूस और इगलैड के इस बढते हुए प्रभाव को रोकने के लिए ईरानियो को सजग करने का प्रयत्न करने लगे।

इसी समय दिल्ली का रहने वाला क्रान्तिकारी युवक हरदयाल भी भाग कर मिस्र चला गया और वहा के लोगो में स्वतन्त्रता का प्रचार करने लगा। मिस्र से फिर हरदयाल यूरोप हो कर अमेरिका में पहुँचे और वहा भारतवासियो में क्रान्ति का प्रचार करने लगे।

बंग-भंग का रद्द होना—इस बीच सन् १९१० में लार्ड मिन्टो वापस चला गया और लार्ड हार्डिज वाइसराय बनाया गया। इसी साल सम्राट एडवर्ड सप्तम की भी मृत्यु हुई और जार्ज पचम गद्दी पर बैठा। भारत में फैली राजनैतिक

अशान्ति को दूर करने के अभिप्राय से सन् १९११ में सम्राट जार्ज यहा आये और दिल्ली में बड़े समारोह के साथ उनका दरबार में अभिषेक किया गया। इस अवसर पर सम्राट ने बग-भग को रद्द करने की घोषणा की और आसाम तथा बिहार-उड़ीसा के प्रान्त बगाल से अलग कर दिये गये। इसी समय भारत की राजधानी कलकत्ते के बजाय दिल्ली कर दी गयी।

सम्राट द्वारा बग-भग मेटने से भारत को प्रसन्नता हुई, लेकिन क्रान्तिकारी दल इतने से सतुष्ट होकर चुप नही हो गया। वे तो अग्रेजी शासन को ही भारत से मेट देना चाहते थे। अत इस दल वालो ने अपना काम जारी रखा और सन् १९१२ में दिल्ली में लार्ड हार्डिंज पर बम फेंका जिससे वे बाल-बाल बचे।

दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह, कोमागातामारू—सत्रहवी शताब्दी के मध्य में अग्रेज और डच (बोअर) अफ्रिका पहुँचे और वहा उन्होंने अपने उपनिवेश बसाये। अग्रेजो ने डचो के उपनिवेश केप-कॉलोनी और नैटाल आदि पर अपना कब्जा कर लिया। धीरे धीरे १९वी सदी के अन्त में डचों को हरा कर सारे दक्षिण अफ्रिका पर अग्रेजो ने अपना अधिकार स्थापित कर दिया।

दक्षिण अफ्रिका में गोरे अग्रेजो को खेती कराने और खानें खुदवाने के लिए मजदूरो की आवश्यकता पडी। ब्रिटिश सरकार की शोषण-नीति के फल से भारत में बिना रोजगार वाले बहुत से खाली पडे थे। १८४० से अफ्रिका के गोरे यहा से ५ साल के शर्तनामे पर मजदूर ले जाने लगे। इन शर्तनामे वाले मजदूरो को 'गिरमिटिया' कहा जाता था। शर्तनामा पूरा होने के बाद भी बहुत से गिरमिटिया मजदूर वही बस गये। इनके अलावा बहुत से भारतीय व्यापारी भी वहा पहुँचे। इन लोगो ने व्यापार से धन कमा कर वहा जमीनें भी खरीद ली। भारतीयो की यह बढ़ती अफ्रिका के गोरे प्रभु सहन न कर सके। अत भारतीयो के व्यापार को सीमित करने, विशेष स्थानों में जमीनें न खरीदने और घुसने न देने के लिए कानून बना दिये गये।

इस प्रकार गोरे भारतवासियो को हर प्रकार से तग करने लगे।

सन् १८९३ में भारत से एक इगलैंड का पास युवक बैरिस्टर दक्षिण अफ्रिका पहुँचा। यह युवक मोहनदास करमचन्द गाधी थे, जिन्हें आज हम 'राष्ट्रपिता' कह कर पूजते है। गाधी गोरो के अत्याचारो को देख कर बडे दुखी हुए। भारतीयो को सगठित करने के लिए उन्हाने वहा भी 'काग्रेस' स्थापित की। उनके नेतृत्व में भारतीयो की इस काग्रेस ने 'अधिकारो' के लिए आन्दोलन शुरू कर दिया। १८९९ में अग्रेज और डचो में भीषण युद्ध छिडा। इस अवसर पर गाधी जी ने ब्रिटिश प्रजा के नाते अग्रेजो का पक्ष लिया। दक्षिण अफ्रिका की गोरो सरकार ने खुश होकर सब भारतीयो को बहुत से अधिकार देने के वचन दिये। लेकिन युद्ध समाप्त होने पर अधिकार देने के बजाय गाधी जी आदि को जेलो में ठूस दिया गया।

पर गाधी दबने वाले व्यक्ति न थे। उन्होने भारतीय अधिकारो के लिए आन्दोलन जारी रखा। सन् १९१३ में गाधी जी के नतृत्व में दक्षिण अफ्रिका के लगभग ढाई हजार प्रवासी भारतीयों ने सत्याग्रह प्रारम्भ कर दिया। इस सत्याग्रह में भारतीय स्त्रियो ने भी अपूर्व वीरता के साथ पुरुषो का साथ दिया। गोरी सरकार ने गाधी जी आदि अनेक सत्याग्रहियो को जेलो में ठूस कर कडी से कडी यातनाएँ पहुँचायी। पर सत्याग्रहियो को दबाना कठिन साबित हुआ। अन्त में दक्षिण अफ्रिका की गोरी सरकार ने भारतीयो के हित और अधिकारो पर ध्यान देने का वचन देकर गाधी जी से समझौता कर लिया (१९१४)। फलत पहले की अपेक्षा भारतीयो की दशा कुछ सुधर गयी, यद्यपि पूरी तरह से आज तक भी वहा भारतीयो को अधिकार प्राप्त नही हो सके हैं और इसलिये आज भी प्रवासी भारतीय वहा आन्दोलन चला रहे है।

दक्षिण अफ्रिका के अग्रेजो की दुर्नीति से भारत की जनता में भी असतोष बढ गया। इसी समय कोमागातामारू की भी घटना हुई

जिससे भारतीयो में फैला असतोष और भी प्रज्वलित हो उठा। कनाडा की सरकार ने एक कानून बना कर भारतीयो का अपने यहा आना रोक दिया था। इस कानून को तोडने के लिए गुरदत्त सिंह नाम के एक पजाबी ने जापानी जहाज कोमागातामारू किराये पर लिया और चार सौ सिख तथा साठ मुसलमान मजदूरों को लेकर हाङ्काङ्ग से कनाडा के लिए चल पडा। लेकिन जब यह जहाज बकोवर पहुँचा तो कनाडा सरकार ने उन्हें अपनी भूमि में उतरने से रोक दिया और धमकी दी कि यदि जहाज लौटाया न गया तो डुबा दिया जायगा। तब यह जहाज कलकत्ता वापस चला आया। इस समय विश्व-युद्ध छिडा हुआ था। ब्रिटिश सरकार ने कोमागातामारू के यात्रियो को बगाल में उतरने और बसने से रोक दिया और उन्हें ट्रेन द्वारा पजाब पहुँचाने का निश्चय किया। बहुत से सिखो ने सरकार की इस जबरदस्ती का विरोध किया जिस पर ब्रिटिश पुलिस ने गोली चला कर कुछ सिखो को वही मार कर ढेर कर दिया। विवश होकर तब बाकी सिख पजाब को लौट गये और ब्रिटिश जुल्मो का अत करने के लिए क्रान्ति को भडकाने का प्रयत्न करने लगे।

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) कर्जन की दमन-नीति का क्या परिणाम हुआ?

(२) बंग-भंग का आन्दोलन किस प्रकार चला और कैसे समाप्त हुआ?

(३) मार्लो-मिण्टो सुधार क्या थे और उनका क्या परिणाम हुआ?

(४) गाधी जी को दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह क्यो करना पडा और उसका क्या परिणाम हुआ?

(५) कोमागातामारु घटना को समझाइये।

—:oo:—

अध्याय—१४

गांधी का भारत

विश्व-युद्ध—लार्ड हार्डिग्ज के समय में विश्व प्रभुता और प्रतिस्पर्धा के लिए यूरोप में भीषण युद्ध छिड गया जो विश्व-युद्ध प्रथम के नाम से प्रसिद्ध है। इस युद्ध में रूस, फान्स और इगलेंड एक तरफ थे और दूसरी तरफ थे जर्मनी, आस्ट्रिया और इटली। कुछ समय बाद तुर्की भी जर्मनी के पक्ष में चला गया और अमेरिका ने इगलेंड आदि का पक्ष ग्रहण किया।

इस समय भारत में राजनैतिक अशान्ति भी काफी जोरो पर थी। ब्रिटिश सरकार इस स्थिति को समझती थी, इसलिए भारतीय जनता को खुश करने और शान्त रखने के लिए इगलेंड के प्रधान मत्री ने गोलमटोल शब्दो में भारत को 'स्व शासन' देने का वचन दिया। भारतीय कपडे के मिल-मालिको को खुश करने के लिए बाहर से आने वाले सूती माल पर कर बढा दिया गया। ब्रिटिश सरकार के रुख को देख कर काग्रेस का नरम दल प्रसन्न हो उठा और भारतवासियो को अग्रेजो की मदद करने के लिए प्रोत्साहित करने लगा। मोहनदास करमचद गाधी भी तब दक्षिण अफ्रिका से भारत लौट आये थे। अग्रेजो के इस सकट काल में उन्होने भी ब्रिटिश सरकार को मदद देने का निश्चय किया और जोरो से भारतवासियों को फौज में भर्ती होने की राय दी। इस प्रकार देशी नरेशो, जमीदारो, मिल मालिको, काग्रेस और गांधी जी न मिल कर इगलेंड को भारत के धन और जन से भरपूर सहायता पहुँचायी। ब्रिटिश सरकार ने भारत से भारत के खर्चे पर दो लाख भारतीय सैनिक लडने के लिए फ्रास, मेसोपोटामिया (इराक) और मिस्र आदि को भेजे। भारत के वीर सैनिक रणक्षेत्र में

पहुँच कर जर्मन और तुर्क आदि को पछाड़ने में बहुत बड़े सहायक साबित हुए।

गदर की विफल चेष्टाएँ—क्रान्तिकारी दल को अंग्रेजों के वचनों पर कोई भरोसा न था। अतः यूरोप में युद्ध छिड़ते ही अमेरिका के भारतीय गदर-दल ने क्रान्तिकारियों को भारत भेजना शुरू कर दिया। जर्मनी ने भारतीय क्रान्तिकारियों को मदद देने के लिए बर्लिन में उनका एक 'राष्ट्रीय दल' स्थापित किया (१९१४)। हरदयाल ने इस 'दल' का अमेरिका के गदर-दल से संबंध स्थापित किया। बर्लिन के 'दल' को जर्मन-सरकार हर तरह से अंग्रेजों के खिलाफ मदद पहुँचाती रही। दल के लोग भारत के युद्धबन्दियों तथा मेसोपोटामिया आदि में पहुँच कर ब्रिटिश-विरोधी प्रचार करने लगे। इस प्रचार के फल से सिंगापुर और रगून की भारतीय सेना विद्रोह पर उतर आयी, लेकिन उन्हें किसी तरह दबा दिया गया (१९१५ ई०)। भारत में भी गदर-दल वालों ने विशेष कर पंजाब की फौजों में विद्रोह फैलाने की चेष्टाएँ कीं, लेकिन असफल रहे। अमेरिका के गदर-दल के एक नेता रामचन्द्र जर्मनों की सहायता से बगाल में विप्लव मचाने की कोशिश की लेकिन यह प्रयत्न भी सफल न हो सका। पंजाब और बंगाल में तब जोरों से क्रान्तिकारी पकड़े जाने लगे। इनमें से अनेक को फांसी हुई, कुछ को कालापानी की सजा मिली और कुछ जेलों में सड़ने के लिए नजरबन्द कर दिये गये। इसी समय बंगाल के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता श्री रासबिहारी बसु भारत से भाग निकले। इस प्रकार सन् १९१४ और १९१५ के अन्दर गदर-दल ने विप्लव के लिए काफी यत्न किया, लेकिन सफल न हो सके।

इसी समय जर्मनों का एक प्रतिनिधि मंडल, जिस में तुर्की और भारतीय क्रान्तिकारी दल के सदस्य श्री महेन्द्र प्रताप और बरकतुल्ला भी शामिल थे, काबुल पहुँचा। इस दल ने अफगानों को अंग्रेजों के विरुद्ध 'जेहाद' छेड़ने के लिए उत्तेजित किया। ब्रिटिश सरकार

अपने सीमान्त पर इस खतरे को पहुँचा देख कर बहुत परेशान हुई।

गदर-दल वाले यद्यपि सफल न हो सके, लेकिन उन्होंने लोगों में स्वतंत्रता की आग न बुझने दी। उनके बलिदानों ने राष्ट्र को आगे बढने के लिए उत्तेजना और बल प्रदान किया। फलतः तिलक और एनी बेसेन्ट ने मिल कर 'होम रूल लीग' स्थापित की (१९१५ ई०)। सन् १९१६ में लखनऊ में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ और तिलक के नेतृत्व में गरम-दल और नरम-दल में फिर एकता स्थापित हो गयी। तिलक ने कांग्रेस का ध्येय 'स्वराज्य' घोषित किया। इस अवसर पर कांग्रेस ने मुस्लिम लीग की 'साम्प्रदायिक निर्वाचन' की मांग स्वीकार कर उससे भी मेल कर लिया। यह समझौता होने पर लीग ने भी अपना ध्येय औपनिवेशिक स्वराज्य घोषित किया। इस एकता से राष्ट्रीय आन्दोलन को बल मिला और एनी बेसेन्ट का 'होम-रूल आन्दोलन' जोरों से चलने लगा। सरकार ने इस आन्दोलन को रोकने के लिए एनी बेसेन्ट आदि को जेलों में ठूस दिया। सरकार के इस कृत्य से राष्ट्र में और भी उत्तेजना फैल उठी।

दूसरी तरफ महात्मा गांधी भी अंग्रेजों के अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठा रहे थे। बिहार के चम्पारन जिले में लगभग १०० वर्षों से निलहे गोरे वहा के किसानों से जबरदस्ती नील की खेती कराते थे। उनके जुल्मों की कहानी सुनकर सन् १९१७ में गांधी जी चम्पारन पहुँचे और सत्याग्रह करके सरकार को जांच-कमीशन बिठाने के लिए विवश किया। कमीशन ने निलहे गोरों के जुल्मों को सही बतलाया। फलतः निलहे गोरों को जबर-दस्ती नील की खेती कराने से रोक दिया गया। इसी तरह गांधी जी ने शर्तबन्द-कुलियों को भारत से बाहर न भेजने के लिए आन्दो-लन उठाया और ऐसा न किये जाने पर सत्याग्रह करने की धमकी दी। इस पर लार्ड हार्डिंगज के उत्तराधिकारी लार्ड चेम्सफोर्ड

(१९१६-१९२१) ने शर्तबन्द-कुलियो को भारत से बाहर भेजना बन्द करा दिया। गाधी जी की इन सफलताओ से देश को अफ्रिका से लौटे हुए अपने नये नेता पर विश्वास जम गया।

माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार और रौलेट ऐक्ट—भारत की अशात राजनैतिक स्थिति को देखकर सरकार को यह विश्वास हो गया कि केवल 'दमन' से स्थिति पर अधिकार नही किया जा सकता। अत भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को शात करने के लिए अगस्त १९१७ में भारत-मत्री माण्टेग्यू ने यह घोषित किया कि ब्रिटिश सरकार का ध्येय ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारत को उत्तरदायी शासन देना है। नवम्बर में माण्टेग्यू भारत आये और वाइसराय के साथ उन्होने देश का दौरा किया। अपनी नीति में परिवर्तन दिखाने के लिए एनी बेसेंट कैद से रिहा कर दी गयी। इगलैंड लौटने पर जुलाई सन् १९१८ में माटेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट प्रकाशित हुई जिसके आधार पर सन् १९१९ में भारत के लिए नया सुधार-कानून पास हुआ। इस कानून के प्रकाशित होने पर भारत को मालूम हो गया कि युद्ध के समय में उत्तरदायी शासन देने की जो गोलमोल बात की गयी थी वह केवल धोखा थी। नये कानून में वाइसराय और प्रान्तीय गवरनरो के राजनैतिक तथा विशेषाधिकार सुरक्षित रखे गये थे। प्रान्तीय सरकारो में चुने हुए भारतीय मत्रियो को केवल स्थानीय शासन यानी म्युनिसिपल तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्डों का प्रबन्ध, सफाई, खेती और शिक्षा आदि विषय सौंपे गये और साम्प्रदायिक निर्वाचन की पद्धति को जारी रखा गया।

अत इन सुधारो से राष्ट्र में फैला हुआ असतोष घटने के बजाय और बढ चला। ब्रिटिश सरकार की विश्व-युद्ध में विजय हो गयी थी, इसलिए उसे भी अब भारत के विरोध की चिन्ता नही थी। इसलिए अब वह फिर 'दमन' पर उतर आयी और सन् १९१९ में भयकर राउलट-ऐक्ट पास कर दिया गया। जिस समय माण्टेग्यू 'उत्तरदायी शासन' देने की बातें कर रहे थे, उसी समय सरकार

ने जज श्री राउलट की अध्यक्षता में क्रान्तिकारियो को दबाने के उपाय सुझाने के लिए एक कमेटी बनायी थी। माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट के प्रकाशित होने के समय ही राउलट-कमेटी ने भी अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की। 'सुधार' और 'दमन' की ये दो धाराएँ एक साथ फूटते देख कर भारत चौंक उठा। गाधी जी ने इस 'रिपोर्ट' को भयकर बतलाया और वाइसराय को उसे केन्द्रीय धारासभा में पास न कराने की प्रार्थना की। लेकिन देशके विरोध के बावजूद राउलट-कमेटी के आधार पर सरकार ने केन्द्रीय सभा में दो कानून पेश किये, जिनके अनुसार पुलिस के अधिकार बढा दिये गये और राज-विद्रोह के मुकदमो को जल्दी निपटाने के लिए नियम बनाये गये।

गांधी जी द्वारा सत्याग्रह की घोषणा और सरकार का दमन-- राउलट ऐक्ट के पास होते ही असतोष की जो आग अब तक भीतर ही भीतर सुलग रही थी फूट कर बाहर निकल आयी। महात्मा गाधी ने राउलट ऐक्ट को काला कानून बतला कर 'अहिंसा-त्मक सत्याग्रह' करने की घोषणा की और सारे देश को उसके विरोध में ६ अप्रैल (१९१९) को हडताल करने तथा व्रत रखने का आदेश दिया। गाधी जी के इस आदेश का सम्पूर्ण देश ने श्रद्धा और विश्वास के साथ पालन किया। दिल्ली मे हडतालियो को दबाने के लिये सरकार ने गोलिया चलायी। अमृतसर में कुछ काग्रेस के नेता गिरफ्तार कर लिये गये। इस पर जनता ने प्रदर्शन किया। सरकार ने जनता को तितर-बितर करने के लिए गोलिया चलायी। तब जनता ने प्रतिशोध में पड कर कुछ सरकारी इमारतो को जला दिया और ५ अग्रेजो को मार डाला। पजाब के कुछ और नगरो में भी ऐसी ही घटनाएँ हुईं। इधर गाधी जी बम्बई से दिल्ली-पजाब के लिए रवाना हुए, लेकिन उन्हें रास्ते में गिरफ्तार कर वापस भेज दिया गया। इससे बम्बई और अहमदावाद की जनता भी भडक उठी। पर गाधीजी ने वातावरण को काबू में रख कर बम्बई की जनता को शात कर दिया।

गाधी जी और अन्य नेताओ की पुकार पर विद्यार्थी अब स्कूल-कॉलेज छोडने लगे और राष्ट्रीय विद्यापीठो की स्थापना कर दी गई। काग्रेसियो ने व्यवस्था-सभाओ के चुनाव का भी बहिष्कार कर दिया। खद्दर का जोरो से प्रचार होने लगा और गावो में काग्रेस की शाखाएँ स्थापित हो गयी। खिलाफत की वजह से मुसलमानो ने भी पूरी तरह से असहयोग आन्दोलन में भाग लिया और देश में एक विचित्र जागृति पैदा हो गयी।

इस बीच लार्ड चेम्सफोर्ड वापस चला गया और अप्रैल १९२१ में लार्ड रीडिंग वाइसराय बन कर आया। जब वह पहुँचा काग्रेस का असहयोग आन्दोलन जोरो से चल रहा था। अपनी तरफ से सरकार भी दमन पर लगी थी। उत्तर-प्रदेश तथा बिहार में नेता तथा आन्दोलनकर्ता जेलो में ठूसे जा रहे थे। नवम्बर में इगलैंड का युवराज ड्यूक ऑफ कनाट भारत आया। काग्रेस ने युवराज के स्वागत का बहिष्कार किया और जहा-जहा वह गया लोगो ने पूरी तरह से हडताल मनाई। वाइसराय रीडिंग ने चिढ-कर तब और जोरो से असहयोगियो का दमन करना शुरू किया। दिसम्बर तक देश के सभी बडे नेता देशबन्धु दास, लाला लाजपत-राय, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, मौलाना आजाद आदि जेलो में ठूस दिये गये। इनके अलावा लगभग ३० हजार सत्याग्रही भी जेलो में भरे जा चुके थे। किन्तु इस दमन के बावजूद गाधीजी का असहयोग आन्दोलन थमने का नाम न लेता था।

सारे देश में गाधी और आन्दोलन की धूम मची हुई थी। सरकार इससे हैरान और परेशान थी। दिसम्बर १९२१ में अहम-दाबाद में काग्रेस हुई और उसने गाधी जी के अधिनायकत्व में और जोरो से अहिंसात्मक सत्याग्रह चलाने का निश्चय किया। फरवरी १९२२ में गाधी जी ने बारडोली (सूरत जिले में) में कर-बन्दी आन्दोलन चलाने का निश्चय किया। किन्तु अभी वे इस विषय में वाइसराय से पत्र-व्यवहार कर रहे थे कि ५ फरवरी

को चौरीचौरा में एक ऐसी घटना हुई जिसने गांधी जी के निश्चय को बदल दिया। गोरखपुर जिले के चौरीचौरा स्थान में सरकार के दमन से उत्तेजित जनता की भीड़ ने वहा के पुलिस थाने पर आग लगा दी और २१ सिपाहियो तथा एक थानेदार को वही आग में जला कर मार डाला। इस घटना से गाधी जी को यह प्रतीत हुआ कि देश अभी पूर्ण अहिंसा के साथ सत्याग्रह के लिए तैयार नही है। अतः उन्होने 'सत्याग्रह' को बन्द कर दिया और रचनात्मक कार्यों को करने का आदेश दिया। देश को इस निर्णय से बहुत दुख हुआ। पर दूसरी तरफ सरकार खुश हो उठी और उसने मौका देख कर राजद्रोह के अपराध में १३ मार्च को गाधी जी को गिरफ्तार कर लिया। इसके बाद उन पर मुकदमा चला और ६ साल कैद की सजा दे दी गयी।

तीसरा अफगान युद्ध—फरवरी १९१९ में अफगानिस्तान का अमीर हबीबुल्ला मार डाला गया। तब उसका भाई नसरुल्ला गद्दी पर बैठा। लेकिन कुछ दिन बाद हबीबुल्ला के छोटे लड़के अमानुल्ला ने अपने चचा को हटा कर गद्दी पर अधिकार कर लिया।

भारत में इस समय राजनैतिक अशाति देख कर अमानुल्ला ने अग्रेजो के प्रभाव से अफगानिस्तान को स्वतत्र करने का यह अच्छा अवसर समझा। अतः उसने मई के महीने खैबर पर धावा बोल दिया। इस पर अग्रेजी सरकार ने भी अफगानिस्तान से युद्ध ठान दिया और हवाई जहाजो से जलालाबाद और काबुल पर बम बरसाये। अग्रेजो से पार पाना कठिन देख कर अमानुल्ला ने लड़ाई बन्द करके सन्धि के लिए प्रार्थना की। ढाई बरस की बातचीत के बाद नवम्बर १९२१ में अफगानिस्तान और अग्रेजी सरकार में सन्धि हो गयी। इसके अनुसार विदेशी मामलो में अफगानिस्तान को पूरी छूट देकर उसे पूर्ण रूप से स्वतत्र मान लिया गया और उसे जो रुपया दिया जाता था वह अब बन्द कर दिया गया। अब से वहा के शासक 'अमीर' के बजाय 'शाह' कहलाने लगे। सन् १९२८

म अमानुल्ला ने धार्मिक अन्ध विश्वासो को हटा कर पाश्चात्य ढग पर नये सुधार करने चाहे। इस पर विद्रोह हो गया और उसे देश छोड कर भाग जाना पडा। तब बच्चा सक्का हबीबुल्ला के नाम से बादशाह बना, लेकिन वह भी मार डाला गया और अमानुल्ला का सेनापति नादिर खा नादिरशाह के नाम से वहा का बादशाह बन गया (१९२९)।

असहयोग के बाद, हिन्दू-मुस्लिम दंगे,—क्रान्तिकारी आन्दोलन का उभड़ना, पूर्ण स्वराज का ध्येय—गाधी जी के जेल जाने और सत्याग्रह स्थगित करने से असहयोग आन्दोलन शिथिल पड गया था। सन् १९२३ में श्री चितरजन दास और मोतीलाल नेहरू आदि के नेतृत्व में काग्रेस में एक 'स्वराज दल' स्थापित हुआ। इस दल ने व्यवस्था-सभाओ में जाकर भीतर से 'असहयोग' करने की नीति अपनायी। बहुत सोच विचार के बाद काग्रेस ने स्वराज-दल को कौसिलो मे जाने की स्वीकृति दे दी। १९२३ के निर्वाचन में इस दल को अच्छी सफलता मिली। किन्तु वहा जाकर वे देश को विशेष लाभ न पहुँचा सके। सन् १९२५ में दास की मृत्यु होने से इस दल का प्रभाव बहुत घट गया।

फरवरी १९२४ में बीमारी के कारण महात्मा गाधी जेल से रिहा कर दिये गये। गाधी जी ने छूटने पर राष्ट्रीय काग्रेस के कार्यकर्त्ताओं को रचनात्मक कार्य में लगे रहने, खद्दर का प्रचार करने और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य को बनाये रखने की सलाह दी। दुर्भाग्य से इस समय हिन्दू मुसलमानो में वह ऐक्य न रह गया था जो खिलाफत और असहयोग आन्दोलन के समय में दिखाई दिया था। सन् १९२४ में तुर्की जनता ने मुस्तफा कमाल पाशा के नेतृत्व मे प्रजातन्त्र राज्य स्थापित कर खलीफा को गद्दी से उतार कर निर्वासित कर दिया था। खिलाफत का अन्त हो जाने से हिन्दू-मुसलमानो में जो एकता स्थापित हो गयी थी उसका भी अन्त हो गया। फलत देश में हिन्दू-मुसलमानो में फिर सर्वत्र साम्प्रदायिक झगडे उमड

आये। सहारनपुर, दिल्ली, गुलबर्गा, नागपुर, लखनऊ, शाहजहांपुर, इलाहाबाद और जबलपुर में १९२४ में भीषण दंगे हुए। सबसे भयानक दंगा १९२४ के सितम्बर में कोहाट में हुआ जिसमें अनेक हिन्दुओं की जानें गयी और बहुत से भाग कर रावलपिंडी चले आये। इन दंगों से क्षुब्ध होकर गांधी जी ने हिन्दू-मुसलमानों के पापों को धोने के लिए १८ सितम्बर से २१ दिन का उपवास किया। उनके उपवास के फल से सब धर्म के नेताओं ने मिलकर पारस्परिक एकता के लिए दिल्ली में एक सम्मेलन बुलाया। सम्मेलन ने पारस्परिक एकता और धार्मिक सहिष्णुता पर जोर दिया। लेकिन इन प्रयत्नों के बावजूद साम्प्रदायिक दंगे पूरी तरह से थम न सके। यदा-कदा दंगे होते ही रहे और सन् १९२६ में एक उन्मादी मुसलमान ने स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या कर डाली। सन् १९३१ के मार्च में कानपुर में हिन्दू-मुसलमानों में जबरदस्त दंगा हुआ जिसे शांत करने के प्रयत्न में गणेशशंकर विद्यार्थी शहीद हुए।

असहयोग आन्दोलन के शिथिल पड़ने पर साम्प्रदायिक दंगों से राष्ट्र की एकता भंग होते देख कर क्रान्तिकारी नेताओं ने फिर से अपना आन्दोलन चलाने की कोशिश शुरू कर दी। अत सन् १९२३ में बंगाल में स्वतन्त्रता के लिए अधीर युवकों ने पुन हिंसात्मक आन्दोलन छेड़ दिया। इस पर सरकार ने विशेष आर्डिनेन्स निकाल कर धर-पकड़ शुरू कर दी। किन्तु इस दमन-नीति से और उत्तेजना फैली। सन् १९२६ में पुराने क्रान्तिकारी अजीतसिंह के भतीजे भगतसिंह ने लाहौर में एक 'नवजवान सभा' स्थापित की। उनकी देखादेखी देशभर में 'युवक-संघ' स्थापित हो गये। कुछ क्रान्तिकारियों ने दिनदहाड़े लाहौर में पुलिस कमिश्नर साडर्स को मार डाला। उनके मारने के अभियोग में भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव पकड़ लिये गये। लाहौर तथा मेरठ में कई लोगों पर सरकार के विरुद्ध षड्यन्त्र के मुकदमे चलाये गये। जेलों में व्यवहार ठीक न होने से लाहौर में राजनैतिक कैदियों ने भूख-हड़ताल शुरू

कर दी। इनमें ६४ दिन की भूख हडताल के बाद यतीन्द्रनाथ दास नाम के एक अभियुक्त की १३ सितम्बर (१९२९) को मृत्यु हो गयी। तब से जेलो में राजनैतिक बंदियो के साथ पहले से अच्छा व्यवहार किया जाने लगा। क्रान्तिकारियो की चेष्टाओ और बलिदान से राष्ट्र के आन्दोलन को नया बल और उत्साह मिला।

इस बीच सन् १९२६ में लार्ड रीडिंग विदा हो गया और उसकी जगह लार्ड अरविन वाइसराय नियुक्त हुआ। ब्रिटिश सरकार ने भारत में राजनैतिक अशाति देख कर फिर कुछ सुधारो को देने का बहाना बनाया और घोषणा की कि सर जॉन साइमन के नेतृत्व में एक कमीशन भारत भेजा जायगा जो भारत के भावी शासन विधान के बारे में अपनी राय पेश करेगा (नवम्बर १९२७) । काग्रेस ने इस घोषणा पर विरोध प्रकट किया। काग्रेस का कहना था कि अपने भविष्य के बारे में निर्णय करने का हमें ही अधिकार होना चाहिये । पर सरकार ने काग्रेस और दूसरे दलो के विरोध की पर्वाह न की। फरवरी १९२८ में साइमन-कमीशन भारत आया। इस कमीशन का सर्वत्र जोरो से विरोध किया गया और जहा-जहा वह पहुँचा वहा जनता ने 'साइमन वापस जाओ, का नारा लगा कर और हडताल मना कर उसका स्वागत किया। प्रदर्शन करने वाली जनता को, सरकार ने लाठिया चला कर रोकन की कोशिश भी की लेकिन रोक न पायी। लाहौर में प्रदर्शनकारियो के नेता लाजपतराय पर भी पुलिस लाठी से प्रहार करने मे न चूकी। लाठी के प्रहारो से घायल होने के कारण कुछ समय बाद लालाजी का देहान्त हो गया।

सरकार के दमन और अत्याचारो से ऊब कर काग्रेस के उग्र युवक-दल ने, जिसके नेता श्री एस० श्रीनिवास आयगर, प० जवाहर-लाल नेहरू और सुभाष बाबू थे, औपनिवेशिक स्वराज्य के बजाय 'पूर्ण स्वराज्य' को ध्येय बनाने पर जोर दिया। १९२८ में कलकत्ता-काग्रेस में गाधी जी के कहने पर तब यह निश्चय किया कि

यदि एक साल के अन्दर सरकार औपनिवेशिक स्वराज्य दे दे तो कांग्रेस उसमें संतुष्ट हो जायगी, नहीं तो कांग्रेस का ध्येय एकमात्र पूर्ण स्वतंत्रता ही रहेगा। अतः जब एक साल तक रुकने पर भी सरकार ने औपनिवेशिक स्वराज्य देने का वायदा न किया तो ३१ दिसम्बर १९२९ को लाहौर में युवक-नेता पं० जवाहरलाल के सभापतित्व में राष्ट्रीय कांग्रेस ने 'पूर्ण-स्वतन्त्रता, को अपना ध्येय घोषित कर दिया और समग्र जनता को उसकी प्राप्ति के लिए कांग्रेस का साथ देने का आदेश दिया।

सुभाष बाबू

सत्यागृह-आन्दोलन; गोलमेज-सम्मेलन—कांग्रेस के आदेशानुसार २६ जनवरी १९३० को देश भर में स्वाधीनता-दिवस मनाया गया। उस दिन सारे देश में सभाएँ की गयी और तिरंगे को फहरा कर जनता द्वारा यह घोषणा-पत्र पढा गया—

"हम भारतीय प्रजाजन भी अन्य राष्ट्रों की भांति अपना जन्म-सिद्ध अधिकार मानते हैं कि हम स्वतंत्र होकर रहें, अपने परिश्रम का फल हम स्वयं भोगें और हमें जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक सुविधाएँ प्राप्त हो, जिससे हमें भी विकास का पूरा मौका मिले। हम यह भी मानते हैं कि यदि कोई सरकार जनता से ये अधिकार छीन लेती है और उसे सताती है, तो प्रजा को उस सरकार को बदल देने या मिटा देने का भी अधिकार है।

"भारत की अंग्रेजी सरकार ने भारतवासियों का ही अपहरण

नहीं किया है, बल्कि उसका आधार भी गरीबों के रक्त-शोषण पर है, और उसने आर्थिक, राजनैतिक सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से भारतवर्ष का नाश कर दिया है। अतः हमारा विश्वास है कि भारतवर्ष को अंग्रेजों से सम्बन्ध विच्छेद करके पूर्ण स्वराज्य या स्वाधीनता प्राप्त कर लेनी चाहिये।"

इस प्रतिज्ञा को लेकर समग्र जनता और समूचा देश सत्याग्रह के लिए तत्पर हो गया। कांग्रेस ने तब महात्मा गांधी को सत्याग्रह-युद्ध चलाने की पूरी सत्ता सौंप दी। अहिंसा के महान सेनापति गांधी जी ने तब 'नमक-कानून' तोड़ कर सत्याग्रह छेड़ने का निश्चय किया। गांधीजी ने कहा—'नमक हमारे खाद्य-पदार्थों में एक अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। यह समुद्र के किनारे जमा करने से ही मुफ्त में मिल सकता है, दूसरी जगहों में भी मिट्टी से बनाया जा सकता है। जहां नमक का पहाड़ है वहां भी लोग खोदकर बिना दाम के निकाल सकते हैं, पर गवर्नमेंट केवल 'कर' प्राप्त करने के लिए इसके जमा करने पर प्रतिबन्ध लगाती है। ईश्वर ने जल और वायु की ही तरह नमक भी मुफ्त बांटने का प्रबन्ध किया है, मगर सरकार लेने नहीं देती।'

इस प्रकार निश्चय करके गांधी जी ने सूरत जिले में समुद्र-तट के डांडी गांव में जाकर नमक-कानून तोड़कर सत्याग्रह आरम्भ करना तय किया। १२ मार्च १९३० को वे साबरमती आश्रम (अहमदाबाद) से ७९ साथियों के साथ डांडी के लिए रवाना हो गये। ५ अप्रैल को गांधी जी वहां पहुँचे। दूसरे दिन ६ अप्रैल को ६॥ बजे सबेरे प्रार्थना के बाद गांधी जी और उनके साथियों ने समुद्र-तट पर से मुट्ठी में नमक उठाकर नमक कानून को तोड़ दिया। इसके बाद गांधी जी के आदेशानुसार देशभर में नमक कानून तोड़ा जाने लगा।

नमक-सत्याग्रह में हजारों स्त्री-पुरुषों को भाग लेता देखकर सरकार बौखला उठी और उसने जोरों से दमन

दिया। जगह-जगह सत्याग्रही पकड़े जाने लगे और उन्मत्त जनता की भीड़ पर गोलियाँ बरसायी गयी। १४ अप्रैल को प० जवाहरलाल नेहरू पकड़े गये। इसी महीने में अब्दुलगफ्फार खा के अनुयायी पठानो को पेशावर में बुरी तरह से दबाया गया। पठानो की भीड को तितर-बितर करने के लिए गढ़वाली सैनिकों की दो पलटनो को गोली दागने को कहा गया। लेकिन चन्द्रसिंह के नेतृत्व में देश-भक्त गढवाली सैनिको ने निहत्थी जनता पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया और हथियार छोड दिये। इस पर उन्हें लम्बी-लम्बी सजाएँ दी गयी। पेशावर की जनता को ब्रिटिश सरकार बडी कठिनता से अधिकार में कर सकी।

इस प्रकार देश में सामूहिक सत्याग्रह-आन्दोलन बढता ही चला गया। ५ मई को गाधी जी भी गिरफ्तार कर लिये गये। इस पर आन्दोलन ने और उग्र रूप धारण किया। गाधी जी की गिरफ्तारी के विरोध में सारे देश में हड़तालें हुईं और जनता द्वारा विराट प्रदर्शन किया गया। शोलापुर (बम्बई) में तो जनता ने एक हफ्ते तक नगर पर अपना अधिकार ही जमा लिया था। बाद में सरकार ने नगर में फौजी शासन कायम कर दिया। गाधी जीके बाद सरोजिनी देवी और फिर प० मोतीलाल नेहरू भी पकड लिये गये। जनता की इस क्रान्ति को रोकने के लिये सरकार से जितना दमन हो सका किया गया। सारे देश में सत्याग्रहियों पर लाठियां पडी, गोलियां बरसायी गयीं और मुकदमें चला कर उनमें से अनेक को जेलो में बन्द कर दिया गया। सरकार ने काग्रेस कार्य समिति और काग्रेस-सभाओं को भी गैर-कानूनी घोषित कर दिया। एक साल के अन्दर लगभग ९०,००० स्त्री, पुरुष और लड़को को जेलो में भर दिया गया था।

सरकार ने इस स्थिति को देखकर शासन-सुधारो की योजना पर विचार करने के लिए नवम्बर १९३० में इगलैंड में गोलमेज-सम्मेलन करने का निश्चय किया। इसमें ब्रिटिश भारत के प्रान्तो

और रियासतो से ७२ आदमी शामिल हुए। लेकिन भारत का सच्चा प्रतिनिधित्व करने वाली राष्ट्रीय कांग्रेस उसमें भाग न ले सकी।

गांधी-अर्विन समझौता—सरकार समझती थी कि बिना कांग्रेस के गोलमेज-सम्मेलन एक दिखावा ही समझा जायगा। अतः वह चाहती थी कि कांग्रेस से समझौता हो जाय ताकि दूसरे सम्मेलन में वह भी उसमें शामिल हो सके। इसलिए १९ जनवरी १९३१ को पहला गोलमेज-सम्मेलन समाप्त होने के ६ दिन बाद गाधी जी और कांग्रेस-कार्यसमिति के सब सदस्य बिना शर्त रिहा कर दिये गये। छूटने के बाद गाधी जी और वाइसराय अर्विन में बातें चली और ५ मार्च को दोनो में एक समझौता हो गया जो गाधी-अर्विन पैक्ट के नाम से प्रसिद्ध है। समझौते के अनुसार कांग्रेस ने सत्याग्रह स्थगित कर भारत की शासन-सुधार योजना पर विचार करने के लिए गोलमेज-सम्मेलन में भाग लेना स्वीकार किया। सरकार ने अपनी तरफ से उन विशेष कानूनो को रद्द कर देने का वचन दिया जो सत्याग्रह-आन्दोलन दबाने के लिए जारी किये गये थे। सत्याग्रही कैदियो को जो अभी तक जेलो में बन्द थे रिहा कर दिया गया।

गाधीजी ने वाइसराय पर यह भी जोर दिया कि साडर्स की हत्या के अभियोग में भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को जो फासी की सजा दी गयी है वह बदल दी जाय। पर सरकार ने इस पर विचार करने से मुह मोड लिया और २३ मार्च की रात को भगत-सिंह और उनके साथियो को फासी पर लटका दिया। सरकार के इस रुख से देश के नवयुवको में बडी उत्तेजना फैल उठी। किन्तु गाधी जीने देश के नवजवानो को धैर्य और शाति से काम लेने की सलाह दी। मार्च के अन्त में करांची में राष्ट्रीय कांग्रेस की बैठक हुई। इस कांग्रेस ने गाधी जी को द्वितीय गोलमेज-सम्मेलन के लिए अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया।

इस बीच १७ अप्रैल १९३१ को लार्ड अर्विन विदा हो गया

महात्मा गांधी

सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन में अछूतो के साथ 'निर्वाचन' के प्रश्न पर एक समझौता हुआ जो पूना-पैक्ट के नाम से प्रसिद्ध है। इस समझौते के अनुसार दस बरस के लिए 'हरिजनो' (अछूतो) को व्यवस्था सभाओ में रक्षित स्थान दिये गये और उन्होने पृथक निर्वाचन की माग को त्याग दिया। २६ सितम्बर को सरकार ने भी इस समझौते को स्वीकार कर लिया। उसी दिन शाम को तब गाधी जी ने भी उपवास समाप्त कर दिया। गाधीजी की प्रेरणा से हरिजनो की उन्नति और सेवा करने के लिए हरिजन-सेवक सघ स्थापित हुआ। जेल से इस सघ के कार्य को चलाने के लिए

होकर अपने को सत्याग्रह-युद्ध में झाक दिया। किसानो ने भी इस आन्दोलन में पूरी तरह से भाग लिया। इस बार का सत्याग्रह पूर्व के सत्याग्रह से भी तीव्र और व्यापक हुआ। यह आन्दोलन पूरे २९ महीने चला और लगभग १,२०,००० सत्याग्रही जेल में बन्द किये गये।

साम्प्रदायिक निर्णय–इस बीच काग्रेस के बल को तोडने और हिन्दू-जाति में दरार पैदा करने के लिए ब्रिटेन के प्रधान-मन्त्री ने अपना 'साम्प्रदायिक निर्णय' प्रकाशित किया। इस निर्णय के अनुसार मुसलमानो की तरह अछूतो को भी पृथक निर्वाचन का अधिकार स्वीकार किया गया था। गाधीजी ने सरकार से इस 'निर्णय' को बदल देने की प्रार्थना की। लेकिन सरकार इस प्रार्थना पर ध्यान देने के लिए तैयार न हुई। गाधीजी विलायत में ही यह कह चुके थे कि यदि अछूतो को पृथक निर्वाचन देकर हमसे अलग किया जायगा तो वे प्राण देकर भी उसका विरोध करेंगे। फलत पूर्व निश्चय के अनुसार गाधीजी ने साम्प्रदायिक निर्णय के विरोध में २० सितम्बर से आमरण उपवास शुरू कर दिया। उनके उपवास से दुखी और चिन्तित होकर प० मदनमोहन माल्वीयने काग्रेसी हिन्दू और अछूत नेताओ का पूना म एक

प० मदनमोहन माल्वीय

सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन में अछूतो के साथ 'निर्वाचन' के प्रश्न पर एक समझौता हुआ जो पूना-पैक्ट के नाम से प्रसिद्ध है। इस समझौते के अनुसार दस बरस के लिए 'हरिजनो' (अछूतो) को व्यवस्था सभाओ में रक्षित स्थान दिये गये और उन्होने पृथक निर्वाचन की माग को त्याग दिया। २६ सितम्बर को सरकार ने भी इस समझौते को स्वीकार कर लिया। उसी दिन शाम को तब गाधी जी ने भी उपवास समाप्त कर दिया। गाधीजी की प्रेरणा से हरिजनो की उन्नति और सेवा करने के लिए हरिजन सेवक सघ स्थापित हुआ। जेल से इस सघ के कार्य को चलाने के लिए सरकार ने गाधीजी को भी सुविधा प्रदान की।

८ मई १९३३ को आत्मशुद्धि के लिए गाधीजी ने फिर २१ दिन का उपवास शुरू किया। सरकार ने इस पर गाधी जी को जेल में रखना ठीक न समझकर मुक्त कर दिया। २९ मई को सफलतापूर्वक यह उपवास भी समाप्त हो गया।

व्यक्तिगत-सत्याग्रह—जुलाई १९३३ में काग्रेसी नेताओ ने सामूहिक सत्याग्रह को बन्द कर केवल व्यक्तिगत सत्याग्रह चलाने की घोषणा की। इस पर ४ अगस्त को गाधीजी पकड लिये गये और उन्हें एक साल की सजा दे दी गयी। इस बार गाधीजी को जेल से हरिजन-सेवा का कार्य चलाने की सुविधा न दी गयी। इस कारण गाधीजी ने पुन अनशन प्रारम्भ कर दिया। सरकार ने तब घबडाकर २३ अगस्त को उन्हें रिहा कर दिया। बाहर आने पर लगभग एक साल तक गाधी जी हरिजन-आन्दोलन का कार्य करते रहे। इस बीच उन्होने प्रत्येक प्रान्त का दौरा किया और उनका प्रत्येक दिन हरिजन-समस्या को सुलझाने में ही व्यतीत हुआ। उनके इस कार्य से उच्च वर्ण के हिन्दुओ और हरिजनो में जो ऊच-नीच के भेद-भाव थे वे बहुत कुछ मिट गये और परस्पर भाई-चारे का सबध स्थापित हो गया।

१८-१९ मई १९३४ को पटने में काग्रेस महासमिति की बैठक

सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन में अछूतों के साथ 'निर्वाचन' के प्रश्न पर एक समझौता हुआ जो पूना-पैक्ट के नाम से प्रसिद्ध है। इस समझौते के अनुसार दस बरस के लिए 'हरिजनों' (अछूतों) को व्यवस्था-सभाओं में रक्षित स्थान दिये गये और उन्होंने पृथक निर्वाचन की माग को त्याग दिया। २६ सितम्बर को सरकार ने भी इस समझौते को स्वीकार कर लिया। उसी दिन शाम को तब गाधी जी ने भी उपवास समाप्त कर दिया। गाधीजी की प्रेरणा से हरिजनों की उन्नति और सेवा करने के लिए हरिजन-सेवक सघ स्थापित हुआ। जेल से इस सघ के कार्य को चलाने के लिए सरकार ने गाधीजी को भी सुविधा प्रदान की।

८ मई १९३३ को आत्मशुद्धि के लिए गाधीजी ने फिर २१ दिन का उपवास शुरू किया। सरकार ने इस पर गाधी जी को जेल में रखना ठीक न समझकर मुक्त कर दिया। २९ मई को सफलतापूर्वक यह उपवास भी समाप्त हो गया।

व्यक्तिगत-सत्याग्रह—जुलाई १९३३ में काग्रेसी नेताओं ने सामूहिक सत्याग्रह को बन्द कर केवल व्यक्तिगत सत्याग्रह चलाने की घोषणा की। इस पर ४ अगस्त को गाधीजी पकड लिये गये और उन्हें एक साल की सजा दे दी गयी। इस बार गाधीजी को जेल से हरिजन-सेवा का कार्य चलाने की सुविधा न दी गयी। इस कारण गाधीजी ने पुन अनशन प्रारम्भ कर दिया। सरकार ने तब घबडाकर २३ अगस्त को उन्हें रिहा कर दिया। बाहर आने पर लगभग एक साल तक गाधी जी हरिजन-आन्दोलन का कार्य करते रहे। इस बीच उन्होंने प्रत्येक प्रान्त का दौरा किया और उनका प्रत्येक दिन हरिजन-समस्या को सुलझाने में ही व्यतीत हुआ। उनके इस कार्य से उच्च-वर्ण के हिन्दुओं और हरिजनों में जो ऊच-नीच के भेद-भाव थे वे बहुत कुछ मिट गये और परस्पर भाई-चारे का सबध स्थापित हो गया।

१८–१९ मई १९३४ को पटने में काग्रेस महासमिति की बैठक

मन्त्रिमंडलो का टूटना–काग्रेसी मन्त्रिमडल अधिक दिन तक काम न कर सके। सितम्बर सन् १९३९ में जर्मनी का ब्रिटेन और फ्रास आदि मित्रराष्ट्रो के साथ युद्ध छिड गया जो द्वितीय विश्वयुद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। ब्रिटिश सरकार ने अपने साम्राज्य की रक्षा के लिए भारतीय फौजो को मिस्र और सिगापुर भजा और गाधी जी तथा काग्रेस के विरोध के बावजूद भारत की तरफ से भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया।

गाधीजी ब्रिटिश सरकार की इस तानाशाही से चकित हो उठे। फिर भी उन्होने लार्ड लिनलिथगो से मिल कर समझौता की कोशिश करनी चाही, लेकिन उसका कोई फल न निकला। गाधी जी तब समझ गये कि काग्रेस को फिर विरोध और सत्याग्रह के मार्ग को ग्रहण करना पडेगा। अत २२ अक्तूबर १९३९ को काग्रेस-कार्य समिति ने यह निश्चय किया कि वह ब्रिटेन को युद्ध में कोई मदद नही देगी। कार्य समिति ने काग्रेसी मन्त्रिमडलो को भी आदेश दिया कि वे इस्तीफे देकर बाहर चले आवें। कार्य समिति की आज्ञानुसार मन्त्रिमडलो ने इस्तीफे दे दिये और ब्रिटिश सरकार ने प्रान्तो का शासन गवरनरो के हाथो में सौप दिया।

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) प्रथम विश्व-युद्ध के समय गदर के लिए किस तरह चेष्टाएँ की गई और उसका क्या परिणाम हुआ?

(२) राउलट ऐक्ट क्या था और उसे लागू करने का क्या परिणाम हुआ?

(३) खिलाफत आदोलन क्या था और उसका किस तरह अन्त हुआ?

(४) १९२१-२२ का असहयो न क्यो बन्द किया गया?

मन्त्रिमंडलों का टूटना—काग्रेसी मन्त्रिमडल अधिक दिन तक काम न कर सके। सितम्बर सन् १९३९ में जर्मनी का ब्रिटेन और फ्रान्स आदि मित्रराष्ट्रों के साथ युद्ध छिड गया जो द्वितीय विश्वयुद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। ब्रिटिश सरकार ने अपने साम्राज्य की रक्षा के लिए भारतीय फौजों को मिस्र और सिंगापुर भेजा और गाधी जी तथा काग्रेस के विरोध के बावजूद भारत की तरफ से भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया।

गाधीजी ब्रिटिश सरकार की इस तानाशाही से चकित हो उठे। फिर भी उन्होंने लार्ड लिनलिथगो से मिल कर समझौता की कोशिश करनी चाही, लेकिन उसका कोई फल न निकला। गाधी जी तब समझ गये कि काग्रेस को फिर विरोध और सत्याग्रह के मार्ग को ग्रहण करना पडेगा। अत २२ अक्तूबर १९३९ को काग्रेस-कार्य समिति ने यह निश्चय किया कि वह ब्रिटेन को युद्ध में कोई मदद नहीं देगी। कार्य समिति ने काग्रेसी मन्त्रिमडलों को भी आदेश दिया कि वे इस्तीफे देकर बाहर चले आवें। कार्य समिति की आज्ञानुसार मन्त्रिमडलों ने इस्तीफे दे दिये और ब्रिटिश सरकार ने प्रान्तों का शासन गवरनरों के हाथों में सौंप दिया।

अभ्यास के लिए प्रश्न

(१) प्रथम विश्व-युद्ध के समय गदर के लिए किस तरह चेष्टाएँ की गईं और उसका क्या परिणाम हुआ ?

(२) राउलट ऐक्ट क्या था और उसे लागू करने का क्या परिणाम हुआ ?

(३) खिलाफत आन्दोलन क्या था और उसका किस तरह अन्त हुआ ?

(४) १९२१-२२ का असहयोग आन्दोलन क्यों बन्द किया गया ?

(५) क्रान्तिकारी आन्दोलन के उभडने के क्या कारण थे ?

अध्याय—१५

स्वतंत्र भारत

१९४० आया। फ्रांस ने जर्मनी के सामने घुटने टेक दिये। इधर गाधीजी ने सरकार को चेतावनी दी कि यदि सरकार ने स्वतन्त्रता न दी तो वे सत्याग्रह कर सकते है। काग्रेस को भी उन्होने यह चेता दिया कि उसका ध्येय पूर्ण स्वराज्य होना चाहिये और हिंसक युद्धो से उसे अलग रहना चाहिये।

किन्तु काग्रेस ने सरकार से यह माग की कि वह भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता का वचन दे और तत्काल केन्द्र में एक अस्थायी राष्ट्रीय सरकार बनाने की घोषणा करे। यदि ये मागें स्वीकारकर ली गयी तो काग्रेस ने वचन दिया कि वह ब्रिटेन को लडाई में सक्रिय मदद पहुचायेगी।

सरकार ने काग्रेसकी इन मांगो को ठुकरा दिया। इस पर कार्य-समिति ने गाधीजी से प्रार्थना की कि अब वे ही काग्रेस का नेतृत्व करें और देशको सही रास्ता दिखावें। काग्रेस का महासेनानी बनने पर गाधीजी ने पुन सत्याग्रह छेडने का निश्चय किया। यह सत्याग्रह 'वैयक्तिक सत्याग्रह' के रूप में सयत और सीमित रखा गया। सत्याग्रह में वे ही भाग ले सकते थे जिन्हें गाधीजी मजूरी देते। सत्याग्रही को यह घोषणा करनी होती थी कि हम किसी प्रकार से युद्ध में मदद नहीं कर सकते। वे नारा लगाते थे—'न एक भाई न एक पाई।'

वैयक्तिक सत्याग्रह—११ नवम्बर १९४० को गाधीजी ने सरकार को भी वैयक्तिक सत्याग्रह के छेडे जाने की सूचना दे दी। इस सत्याग्रह का आरम्भ विनोवा भावे ने किया। विनोवा की गिरफ्तारी के बाद सारे भारत में व्यक्तिगत सत्याग्रह छिड गया, और

सत्याग्रह १ साल तक चला और लगभग २०,००० सत्याग्रही जेलों में ठूंसे गये।

जापान का बढाव और क्रिप्स का आगमन—नवम्बर १९४१ में जापान ने भी मित्रराष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध छेड दिया और पर्ल हार्बर पर धावा बोलकर अमेरिका की जलसेना को तहस-नहस कर डाला। जापान ने जर्मनी और इटली के साथ मैत्री सबंध स्थापित किया और कुछ ही समय के भीतर उसने तेजी के साथ दक्षिण-पूर्वी एशिया के बहुत बडे हिस्से पर अधिकार जमा लिया। सिंगापुर से उसने अंग्रेजो को मार भगाया। मलाया को लेकर फिर वह बरमा की ओर बढ़ा और देखते ही देखते सारे बरमा को हड़प गया। अंग्रेजो को इस हार से बहुत धक्का लगा।

इस स्थिति में इंगलैंड ने यह सोचा कि भारत के साथ मेल कर लेना चाहिये। जापान के खतरे को निकट आया देखकर इधर कांग्रेस भी समझौता के लिए उत्सुकता प्रकट करने लगी। ३० दिसम्बर १९४१ को व्यक्तिगत सत्याग्रह बन्द कर दिया गया। इंगलैंड की सरकार ने कांग्रेस के साथ समझौता कराने के लिए सर स्टैफर्ड क्रिप्स को भारत भेजा। मार्च १९४२ में वह यहा पहुँचा। क्रिप्स ने आते ही गाधीजी और कांग्रेस के नेताओं के साथ बातचीत शुरू कर दी। क्रिप्स ने भारत के बारे में जो योजना पेश की उसमें कोई सार न था। कांग्रेस चाहती थी कि केन्द्र में राष्ट्रीय सरकार बनाई जाय, किन्तु इस माग को ब्रिटिश सरकार ने स्वीकार न किया। अत जब कांग्रेस ने यह देखा कि क्रिप्स की योजना को मजूर करने से कुछ भी वास्तविक अधिकार नहीं मिलता तो उसने अन्त में योजना को मानने से इनकार कर दिया। कांग्रेस की देखा-देखी लीग ने भी यह कह कर क्रिप्स योजना को नामजूर कर दिया कि उसमें स्पष्ट रूप से पाकिस्तान को देने का वायदा नहीं किया गया है। इस प्रकार विफल होकर क्रिप्स अप्रैल में इंगलैंड वापस लौट गया।

'भारत छोड़ो' आन्दोलन–गाधीजी अब इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भारत और ससार की भलाई के लिए अंग्रेजी सरकार को भारत छोडकर चला जाना चाहिये। 'भारत छोडो' के विषय में अंग्रेजो से अपील करते हुए उन्होंने 'हरिजन' में लिखा—"मैं प्रत्येक इगलैंड निवासी से माँग करता हूँ कि वह अंग्रेजो से मेरी इस माग का समर्थन करे कि वे तमाम एशियाई, अफ्रीकी मुल्को और कम-से-कम भारत से इसी घडी चले जायें।"

गाधीजी की 'भारत छोडो' माग की आवाज जल्दी ही सारे देश में गूजने लगी। सभी लोगो के मुह से अब यही एक नारा सुनाई पडने लगा। काग्रेस ने भी गाधी जी के इस 'नारे' को अपनाया और ६ जुलाई १९४२ को वर्धा में कार्यसमिति ने एक प्रस्ताव पास कर यह घोषित किया कि 'भारत में अंग्रेजी राज्य का शीघ्र अत हो जाना चाहिये।'

८ अगस्त का प्रस्ताव–वर्धा के बाद ७ और ८ अगस्त १९४२ को बम्बई में अखिल भारतीय काग्रेस कमिटी की महत्वपूर्ण बैठक हुई। इसमें भारत के भाग्य का निर्णय करने वाला ८ अगस्त का ऐतिहासिक प्रस्ताव पास हुआ।

प्रस्ताव में कहा गया था—"भारत के हित और सयुक्त राष्ट्रो की सफलता के लिए आवश्यक है कि भारत में अंग्रेजी सरकार का फौरन अन्त हो जाय। उसके कायम रहने से देश गिरता जा रहा है और कमजोर होता जा रहा है, वह धीरे-धीरे अपनी रक्षा के लिए और विश्व-स्वातंत्र्य में सहायता देने के लिए नाकाबिल होता जा रहा है।

'अंग्रेजी शासन का इस देश में समाप्त हो जाना आवश्यक है और तात्कालिक प्रश्न है। इसी पर युद्ध का भविष्य, आजादी तथा प्रजातत्र की सफलता निर्भर है। आजाद भारत इस सफलता को निश्चित बना सकता है—क्योंकि ऐसी हालत में वह अपने सारे साधन नाजीवाद, फासिस्टवाद और साम्राज्यवाद को समाप्त करने में लगा देगा।

"इसलिए, अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी अपनी सारी शक्ति के साथ भारत से अंग्रेजी शासन के निकल जाने की मांग को दुहराती है।"

इस प्रस्ताव में यह भी घोषित किया गया कि भारत की स्वतन्त्रता के लिये महात्मा गांधी जी के नेतृत्व में अहिंसात्मक जन-संघर्ष छेड़ा जायगा। इस संघर्ष के संबंध में भारतीय जनता को क्या करना है यह भी प्रस्ताव के अंत में बतला दिया गया।

"कमिटी भारत की जनता से अपील करती है कि वे आनेवाले खतरों और मुसीबतों का सामना हिम्मत और बहादुरी से करें और गांधीजी के नेतृत्व में रहकर उनके आदेशों को भारत की आजादी के सिपाहियों की तरह पूरा करें। उन्हें याद रखना होगा कि इस आन्दोलन का आधार अहिंसा ही है।"

महात्मा गांधी का वीर घोष—८ अगस्त को प्रस्ताव पास होने के बाद गांधी जी ने दृढ़ निष्ठा और स्वाभिमान के साथ यह वीर घोष किया—

"मेरी जिन्दगी की यह आखिरी लड़ाई है। देर करना अहितकर होगा। उससे हम सब का अपमान होगा। हमारी लड़ाई शुरू होने वाली है।........हर हिन्दुस्तानी अपने को स्वतन्त्र समझे। वह आजादी प्राप्त करने अथवा उसके लिए प्रयत्न करने में मिट जाने के लिए तैयार रहे। ..आजादी की मांग में समझौता नहीं हो सकता। आजादी सबसे पहले, उसके बाद और कुछ। कायर मत बनो क्योंकि कायरों को जीवित रहने का अधिकार नहीं है। आजादी ही तुम्हारा मंत्र होना चाहिये, उसी का तुम जाप करो।"

८ अगस्त का यह प्रस्ताव अंग्रेजी सरकार के लिए भारतीय जनता की तरफ से भारत छोड़ कर चले जाने की खुली चुनौती थी। भारत की जनता ने अपनी स्वतन्त्रता की इस प्रस्ताव द्वारा खुलकर घोषणा कर दी थी और अब किसी भी हालत में वह ब्रिटिश सरकार के प्रभुत्व को सहन करने के लिए तैयार न थी।

गिरफ्तारियां और दमन–इस प्रकार कांग्रेस द्वारा खुले विद्रोह की नोटिस पाकर लिनलिथगो की सरकार तुरन्त दमन पर आ उतरी। ९ अगस्त की प्रात वेला में सरकार ने महात्मा गाधी और कार्यसमिति के लगभग सारे सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया। १० अगस्त को सभी कांग्रेस कमेटियों को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया। मुस्लिम लीग, हिन्दू-महासभा और कम्युनिस्ट पार्टी ने भी कांग्रेस के आन्दोलन में रोड़ा अटकाया। किन्तु आजादी के लिए उन्मत्त हुई जनता के बढाव को रोकना किसी के लिए भी सरल काम न था।

९ अगस्त को सारे देश में तमाम कांग्रेसी नेता और कार्यकर्ता पकड़कर जेलो में ठूस दिये गये। गाधीजी और अन्य नेताओं के पकड़े जाने से भारतीय जनता उन्मत्त हो उठी और देश में चारों तरफ क्रान्ति की ज्वाला धधकने लगी। सरकार ने इस आग को बुझाने में कोई प्रयत्न बाकी न छोड़ा। देश भर में जगह-जगह पुलिस और फौज ने जनता को कुचलने के लिए लाठिया और गोलिया बरसाईं। लेकिन क्रान्ति की आग फैलती और बढ़ती ही चली गयी। बलिया (उत्तर-प्रदेश), बिहार और बगाल के कुछ भाग तथा सतारा में विद्रोही जनता ने कुछ समय के लिए ब्रिटिश सरकार को उखाड कर अपना प्रजातन्त्र ही कायम कर लिया था। इन स्थानों तथा मध्यप्रान्त के आष्टी और चिमूर गाव की जनता को दबाने के लिए सरकार ने बडी नृशसता से काम लिया। सरकार के इस दमन की कहानी सुनकर आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इस दमन-काल में अनेक व्यक्ति फौज और पुलिस की गोली के शिकार हुए और अनेकों स्त्रियों को अपनी लज्जा छिपाने के लिए आत्महत्या करनी पड़ी।

अगस्त से अक्तूबर-नवम्बर तक आन्दोलन जोरों से चला। इसके बाद सरकार के भीषण दमन के कारण खुला विद्रोह शिथिल पड़ गया। सरकार के भीषण दमन से क्षुब्ध होकर महात्मा

गाधीजी ने उसके विरोध में १० फरवरी से २१ दिन का अनशन व्रत लिया। इस व्रत के समाचार से भारत ही नहीं, बल्कि सारा संसार व्याकुल हो उठा। देश-विदेश की जनता ने इस अवसर पर ब्रिटिश सरकार से गाधीजी को रिहा कर देने की जोरदार प्रार्थना की। पर सरकार ने कोई ध्यान न दिया। ईश्वर की कृपा से ३ मार्च १९४३ को सफलतापूर्वक गांधीजी का अनशन व्रत समाप्त हो गया।

१९४४ में लार्ड लिनलिथिगो चला गया और उसकी जगह लार्ड वावेल वाइसराय होकर आया। फरवरी १९४४ में महात्मा गांधी जी की धर्मपत्नी कस्तूरबा की बन्दी अवस्था म मृत्यु हो गयी जिससे गाधीजी को काफी आघात पहुँचा। ६ मई १९४४ को बीमारी के कारण सरकार ने बिना किसी शर्त के गाधीजी को रिहा कर दिया।

कस्तूर बा

मई १९४५ में जर्मनी हार गया। सरकार ने अब फिर कांग्रेस और लीग से समझौता करने का इरादा प्रकट किया। जून में सरकार ने कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्यो को रिहा कर दिया। जून-जुलाई मे वावेल ने शिमला में राजनैतिक गुत्थी को सुलझाने के लिए एक सम्मेलन बुलाया। कांग्रेस और लीग ने इस में भाग लिया। किन्तु लीग के सभापति जिन्ना की हठधर्मी से समझौते का यह प्रयत्न भी सफल न हो सका।

इस बीच इगलैंड में आम चुनाव हुआ। चुनाव में चर्चिल का अनुदारवादी दल हार गया और उसकी जगह विजयी मजदूर-दल का नेता एटली ब्रिटेन का प्रधान मंत्री बना। एटली की सरकार के निर्देशानुसार सितम्बर में लार्ड वावेल ने एलान किया कि भारत

में जल्दी ही चुनाव कराये जायग। इसके अनुसार १९४५–१९४६ में निर्वाचन हुआ। उत्तर प्रदेश बिहार, बम्बई, मद्रास, उड़ीसा, सीमाप्रान्त, मध्यप्रान्त तथा आसाम में कांग्रेस विजयी हुई। केवल सिंध और बंगाल में लीग का बहुमत हुआ। चुनाव के बाद अप्रैल १९४६ में सिंध और बंगाल म लीग का मन्त्रिमंडल बना, पंजाब म यूनियनिस्ट, सिख तथा कांग्रेसियो का सयुक्त मन्त्रिमंडल बना और शेष प्रान्तो में अकेले कांग्रेस ने अपने मन्त्रिमंडल बनाये।

लेकिन पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रश्न हल न होने से देश में राजनैतिक अशांति और बेचैनी बनी ही रही। इस स्थिति का अध्ययन करने के लिए जनवरी-फरवरी में ब्रिटिश पार्लियामेंट का एक शिष्ट-मंडल भारत भेजा गया। यह मंडल देश के सभी बड़े नेताओं से मिला। कांग्रेस के नेताओं ने उनसे यही प्रश्न किया कि ब्रिटेन बातें ही बहुत बनाता है, करता कुछ भी नहीं। ४ सप्ताह भारत में रहकर शिष्ट-मंडल वापस चला गया और उसने भारत को स्वतन्त्रता प्रदान करने पर जोर दिया।

भारत में बढ़ती हुई अशांति को देख कर १९ फरवरी १९४६ को ब्रिटिश पार्लियामेंट ने यह एलान किया कि सरकार मन्त्रिमंडल के तीन सदस्यो का एक शिष्ट मंडल भारत भेजेगी जो भारतीय नेताओं से मिलकर राजनैतिक गतिरोध को हल करने का मार्ग ढूंढ निकालेगा। १५ मार्च को प्रधान मन्त्री एटली ने यह स्पष्ट घोषित किया कि भारत अपने भविष्य का विधान बनाने के लिए पूरी तरह से स्वतन्त्र होगा लेकिन वे आशा करते हैं कि भारत स्वेच्छा से ब्रिटिश कामनवेल्थ म रहना पसन्द करेगा। २४ मार्च को यह शिष्ट-मंडल भारत पहुँचा। गांधीजी तथा कांग्रेसी और लीगी नेताओं से काफी विचार विनिमय के बाद मन्त्रि दल ने १६ मई को भारत के सबंध म अपनी योजना प्रकाशित कर दी। इस योजना में दो खंडों में पाकिस्तान की लीगी कल्पना को—अव्यावहारिक बतलाया

गया, तथा विधान निर्मातृ-सभा के निर्माण और केन्द्र में अन्तरकालीन सर्वदलीय सरकार बनाने की बात कही गयी थी।

अगस्त १९४६ में सभी प्रान्तो में विधान-सभा के चुनाव हो गये। लीग ने चुनाव में भाग तो लिया, लेकिन विधान-सभा में बैठने से इनकार कर दिया। इसके बाद केन्द्र में सर्वदलीय मन्त्रि-मडल बनाने का सवाल आया। लीग ने मन्त्रिमडल में रहने से भी इनकार कर दिया और विरोध में १६ अगस्त से सीधी कारखाई करने की घोषणा की। इस सीधी कारखाई के नामपर लीग ने कलकत्ते और बम्बई में छुरेबाजी और गुडागिरी प्रारम्भ कर दी। फलत कलकत्ते में ऐसा भीषण कत्ले-आम हुआ जैसा भारत में कभी न हुआ था।

लीग के इस भीषण विरोध के बावजूद २ सितम्बर १९४६ को प० जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल आदि काग्रेसी नेताओं ने केन्द्र में अन्तरकालीन सरकार बना ली। लीग ने अपना रोष प्रकट करने के लिए जगह-जगह साम्प्रदायिक दगे शुरू कर दिये। अक्तूबर में कलकत्ते की तरह ढाका, नोआखाली, चटगाव आदि में भी लीग ने कत्लेआम का दृश्य उपस्थित कर दिया। इसी महीने में लीग अन्तरकालीन सरकार में भी सम्मिलित हो गयी, पर काग्रेसी मन्त्रियों से उसने कोई सहयोग न किया और न विधान-सभा में ही भाग लेना स्वीकार किया। इसलिए ९ दिसम्बर १९४६ को जब दिल्ली में विधान-सभा की बैठक शुरू हुई तो लीगी सदस्य उसमें शामिल न हुए।

शान्ति-दूत गाधीजी नोआखाली में—लीग के एक प्रमुख नेता सर फीरोजखा नून ने कहा था कि वे ऐसी हालत पैदा कर देंगे जैसी चगेज और हलाकू खा ने भी नहीं की थी। कलकत्ते के बाद अक्तूबर में नोआखाली और त्रिपुरा जिलों में मुस्लिम लीगियों ने सचमुच वैसा ही करके दिखा भी दिया। नोआखाली और त्रिपुरा जिलों के अनेक गावो में लीगियो द्वारा हिन्दुओं को

बुरी तरह मारा और लूटा गया। हिन्दुओं की स्त्रियों का अपहरण, बलात्कार और धर्म-परिवर्तन भी किया गया। लगभग डेढ़ लाख हिन्दू इन दगों के शिकार हुए।

महात्मा गाधी नोआखाली की दर्दनाक कहानी को सुनकर विचलित हो उठे। प्रेम और अहिंसा के उस शाति-दूत ने तब नोआखाली जाकर शाति-स्थापना करने का निश्चय किया। अक्तूबर के अन्त में महात्माजी दिल्ली से चलकर कलकत्ता पहुँचे और वहा से ६ नवम्बर १९४६ को नोआखाली चले गये।

मुस्लिम लीगियो के कत्लेआम की कहानिया सुनकर बिहार के हिन्दू पागल हो उठे। उनके दिलो में प्रतिशोध की ज्वाला भडक उठी और उन्होने लीगियो की तरह मुसलमानो को मारना-काटना और लूटना शुरू कर दिया। हिन्दुओ का यह प्रतिशोध भी कम भयकर न था। गाधीजी को बिहार के हिन्दुओ का यह आचरण बहुत खेदजनक लगा और अन्त में उन्होंने नोआखाली से यह ऐलान किया कि यदि बिहार में दगा न रुका तो वे आमरण अनशन करेंगे। इस एलान का जादू का सा असर हुआ और बिहार के हिन्दुओ ने दगो को बन्द कर दिया।

नवम्बर १९४६ से फरवरी १९४७ तक महात्मा गाधी नोआखाली के गावो में शाति का प्रचार करते हुए घूमते रहे। इस भाति शाति-दूत के अद्भुत प्रचार से साम्प्रदायिक दगे बन्द हो गये और हिन्दू तथा मुसलमानो में पुन मेल और विश्वास के भाव पैदा हो गये। गाधीजी के प्रेमपूर्ण प्रचार से प्रभावित होकर मुसलमान स्वय हिन्दुओ के लूटे माल को ढूढ-ढूढ कर वापस करने लगे। वहा के एक मुस्लिम नेता मोहम्मद आसफ भूपा ने कहा था—"मुसलमानो का फर्ज है कि वे महात्मा गाधी के शाति और सुलह के प्रयत्न को सफल बनावें।" इस प्रकार नोआखाली में शाति स्थापित करने के बाद मार्च के महीने में गाधी जी बिहार चले आये और वहा भी शाति-स्थापना के लिए रात दिन काम करते रहे। इसी समय पजाब में

भी दगे शुरू हो गये और खुल्कर छुरेबाजी, लूट और अपहरण की घटनाएँ होने लगी।

२१ फरवरी और ३ जून की घोषणाएँ—लीगियो के बढते हुए दगो और अड़गेबाजी की नीति से यह स्पष्ट हो गया कि लीग और काग्रेस में मेल होना कठिन है और लीगी भारत को खडित किये बिना चैन न लेंगे।

इसी बीच २० फरवरी १९४७ को एटली की सरकार ने यह घोषणा की कि जून १९४८ से पहले ब्रिटेन भारत से अपनी सत्ता हटा लेगा। लेकिन इस घोषणा के बाद भी लीग और काग्रेस में कोई आपसी समझौता न हो सका।

मार्च १९४७ में लार्ड वावेल वापस चले गये और लार्ड माउण्टबैटन वाइसराय होकर भारत आये। माउण्टबैटन ने पहुचते ही यह घोषित कर दिया कि वे आखिरी वाइसराय के रूप में यहा आये है और भारत को सत्ता सौप कर चले जायगे। इस पर अपना मत प्रकट करते हुए गाधी जी ने कहा था—'इसमें सन्देह नही कि अग्रेज यहा से जा रहे है। इसलिए हिन्दू और मुसलमानो को मेल से रहना चाहिये, अन्यथा गृह-युद्ध अनिवार्य है जिससे सारा देश टुकड़-टुकड हो जायगा।" पर शांति-दूत की इस सलाह को सुनने के लिए लोग कतई तैयार न थे।

प० जवाहरलाल नेहरू

लीग की इस मनोवृत्ति को समझ कर ही प० जवाहरलाल नेहरू ने १६ अप्रैल को एक वक्तव्य में यह कहा था कि "कुछ लोग हमारे साथ मिल कर चलना नहीं चाहते   अब समय आ गया है जब कि हमें निश्चय करना है कि क्या हम अखड भारत चाहते है या खडित।"

लुई माउण्टबेटन ने भी इस राजनैतिक गतिरोध का हल निकालने के लिए भारत के राजनैतिक दलो से विचार-विमर्श किया। इसके बाद मई के अन्त में व सलाह लेने के लिए इगलैंड गये और वहा से लौटने पर ३ जून को ब्रिटेन की सरकार की तरफ से उन्होने एक नयी घोषणा की।

इस घोषणा द्वारा यह कहा गया कि ब्रिटेन १५ अगस्त को भारत से अपनी सत्ता हटा लेगा और भारत का विभाजन करके पाकिस्तान नाम के राज्य की स्थापना होगी, पर बगाल, आसाम तथा पजाब का हिन्दू बहुमत का क्षत्र पाकिस्तान में न जाकर भारत में रहेगा। इस प्रकार इन प्रान्तो का बटवारा भी स्वीकार किया गया।

कांग्रेस, लीग और सिखो के नेताओ ने इस सुझाव को स्वीकार कर लिया। फलत गाधीजी की अनिच्छा के बावजूद भारत दो टुकडो में बाट दिया गया।

स्वतत्र भारत—२८ जुलाई १९४७ को ब्रिटिश पार्लियामट ने भारत-स्वातन्त्र्य बिल पास किया, और १५ अगस्त को ब्रिटेन के आखिरी वाइसराय ने भारत और पाकिस्तान को सत्ता सौप दी। इस प्रकार १५० वर्षों के बाद भारत से ब्रिटिश राज्य समाप्त हो गया। माउण्टबेटन के बाद तब चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य गवरनर-जनरल नियुक्त हुए और अपने देश में अपना राज्य स्थापित हो गया।

दगे और गाधीजीका उपवास—कांग्रेस ने सोचा था कि बटवारा हो जाने के बाद लीगी अपना द्वेषभाव छोड देंगे और

हिन्दू-मुसलमानों के बीच जो दंगे हो रहे हैं वे बन्द हो जायगे। लेकिन यह आशा निर्मूल साबित हुई। विभाजन के बाद भी पश्चिमी पंजाब और सीमाप्रान्त में भीषण दंगे होते रहे। इन दंगों के परिणाम से सितम्बर १९४७ में कलकत्ते में भी दंगे शुरू हो गये। गांधीजी तब कलकत्ते में ही थे। इन दंगों से दुःखी होकर गांधीजी ने आमरण उपवास करने का एलान कर दिया। इस पर दंगे रुक गये और ७२ घंटे के बाद गांधीजी ने भी उपवास को समाप्त कर दिया।

पर पश्चिमी पाकिस्तान में दंगे होते ही रहे और हजारों की संख्या में हिन्दू तथा सिखों को भागकर शरणार्थियों के रूप में भारत चला आना पड़ा। इन दंगों के परिणाम से भारत के विभिन्न प्रान्तों में भी दंगे शुरू हो गये और यहां से भी बहुत से मुसलमानों को पाकिस्तान चला जाना पड़ा। उत्तर प्रदेश के पश्चिमी हिस्सों तथा दिल्ली में काफी भीषण दंगे हुए। गांधीजीने हिन्दू और सिखों से अपील की कि वे इस पागलपन को समाप्त करें और देश में शान्ति लावें। लेकिन जब दिल्ली में दंगे न थमे तो १३ जनवरी १९४८ से गांधीजी ने पुनः आमरण उपवास शुरू कर दिया। उन्होंने कहा—"शांति ही मुझे जीवित रखे सकती है। मैं हिन्दू, मुसलमान, सिख सभी में पूर्ण मैत्री चाहता हूँ। आज उस मैत्री का पूर्ण अभाव है। ऐसी स्थिति कोई भी देशभक्त सहन नहीं कर सकता।" इस पर हिन्दू, सिख तथा महासभा आदि के नेताओं ने मिल कर गांधीजी को विश्वास दिलाया कि वे साम्प्रदायिक एकता स्थापित करेंगे और परस्पर प्रेम से रहेंगे।

गांधीजी की हत्या—इस आश्वासन को पाकर गांधीजी ने १८ जनवरी को उपवास समाप्त कर दिया। इस पर सारे जगत ने बहुत हर्ष मनाया। किन्तु यह हर्ष क्षणिक साबित हुआ। साम्प्रदायिक विद्वेष से पागल बने नाथूराम गोडसे नामक एक हिन्दू युवक ने ३० जनवरी की शाम को बिड़ला-भवन से प्रार्थना-सभा में जाते समय गांधीजी पर गोलियाँ दाग कर उनके प्राण हर लिये!

"राम, राम" कहते हुए गांधीजी गिर पड़े। एकाएक सारे भारत और जगत में यह खबर फैल गयी कि "बापू नहीं रहे।" भारत में इस खबर से हाहाकार मच उठा। बाहरी दुनिया भी इस दारुण सवाद से कराह उठी।

अमेरिका के एक किसान ने जब गांधीजी की हत्या की खबर सुनी तो वह कह उठा—"मैं देखता हूँ कि मसीहा के समान ही उनकी भी हत्या कर दी गयी।"

महात्मा गांधी के निधन और साम्प्रदायिक दगों से हमारे देश को बहुत क्षति पहुँची है। दगों के परिणाम से भारत सरकार को शरणार्थियों के बसाने में बहुत-सी कठिनाइया उठानी पड़ी और अभी तक उठानी पड रही है। पाकिस्तान की हिन्दू और सिख विरोधी नीति से आज भी हजारों की सख्या में गैर मुस्लिम पाकिस्तान छोड़कर भारत चले आ रहे हैं। अत भारत में शरणार्थियों की सख्या बढती ही जा रही है और भारत सरकार को काफी सकट से गुजरना पड रहा है।

सरदार वल्लभ भाई पटेल

देशी राज्यों का एकीकरण—फिर भी भारत सरकार दृढता से आगे कदम बढा रही है। १५ अगस्त के बाद भारत सरकार के सामने एक सबसे बडी समस्या ५०० से अधिक विभिन्न देशी राज्यों के सगठन और एकीकरण